सप्तम दशकोत्तर हिन्दी महाकाव्यों
का
काव्यशास्त्रीय अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि हेतु
प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

अनुसंधाता :
हीरालाल शोध-छात्र (हिन्दी)
अतर्रा प्रो० ग्रे० कालेज, अतर्रा (बाँदा)
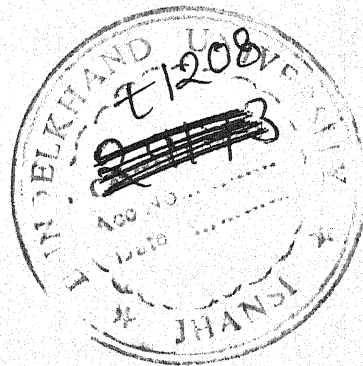
निर्देशक :
डा० विश्वम्भर सिंह भदौरिया
प्राचार्य
अतर्रा पो० ग्रे० कालेज, अतर्रा (बाँदा)

भूमिका

काव्य प्रभेदों में महाकाव्य का उल्लेखनीय स्थान है क्योंकि इसमें साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा युग चेतना, राष्ट्रीय संस्कृति और जातीय आदर्शों की अभिव्यक्ति अधिक सफलता एवं समग्रता से सम्भव है। महाकाव्य में किसी व्यक्ति विशेष, समस्या विशेष अथवा किसी युग की प्रवृत्ति विशेष का अध्ययन न होकर, उसमें युगीन मानवीय जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठा, सम्पूर्ण युग प्रेरक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति, विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय, सामाजिक चेतना के गतिशील स्तरों का रूपांकन एवं सम्पूर्ण राष्ट्र का स्वर निनादित होता है। जातीय जीवन की विविध भावनाओं एवं आदर्शों को आत्मसात् करने वाला महाकाव्य उतना ही महत्वपूर्ण होगा, जितना उसमें उपर्युक्त गुणों का विनियोजन हुआ होगा।

हिन्दी महाकाव्य परम्परा का समारम्भ आदि कालीन महाकाव्य 'पृथ्वीराज - रासो' से हुआ है और वह आज तक निरन्तर अभिवृद्धि की ओर उन्मुख रही है। यद्यपि उसे समकालीन राजनीतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियाँ कभी झकझोरती रहीं और कभी महाकाव्यों के प्रणयन के लिए वरदान सिद्ध होती रहीं। 'पृथ्वीराज रासो' से लेकर सन् 1969 तक प्रकाशित महाकाव्यों का शास्त्रीय अध्ययन अनेक आचार्यों और अनुसंधानकर्ताओं ने विशद् रूप से किया है, किन्तु इसके अनन्तर प्रणीत होने वाले महाकाव्यों का स्वतंत्र रूप से उनके स्वरूप, शिल्पविधान, सांस्कृतिक, दार्शनिक, मनोविज्ञान सम्बन्धी, चरित्र-चित्रण, प्रकृतिचित्रण आदि किसी भी तत्व पर विवेचन नहीं हुआ। इसीलिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में सन् 1970 से 1982 तक की अवधि में प्रकाशित लगभग सम्पूर्ण महाकाव्यों के शास्त्रीय अध्ययन का विनम्र प्रयास किया गया है। अध्येय महाकाव्यों का विवरण निम्नांकित है —

महाकाव्य	प्रणेता	प्रकाशनवर्ष
भगवान राम	श्री मनबोधन लाल श्रीवास्तव	1970
जानकीजीवन	श्री राजाराम शुक्ल	1971
उत्तरायण	श्री डा० रामकुमार वर्मा	1972
अरुणरामायण	श्री रामावतार अरुण 'पोद्दार'	1973
सत्यकाम	श्री सुमित्रा नन्दन पंत	1975
निषादराज	डा० रत्नचन्द्र शर्मा	1976

महाकाव्य	प्रणेता	प्रकाशनवर्ष
रामदूत	कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह	1977
सीतासमाधि	श्रीमती राजेश्वरी अग्रवाल	1978
अश्वत्थामा	डा0 रत्नचन्द्र शर्मा	1981
सत्यमेव जयते	पं0रविशंकर मिश्र	1981
कृष्णाम्बरी	श्री रामावतार पोद्दार'अरुण'	1982

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध सात अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय में शोध प्रबन्ध की पृष्ठभूमि के रूप में महाकाव्य के स्वरूप एवं भारतीय काव्यशास्त्र के तत्वों की चर्चा की गयी है। महाकाव्य के स्वरूप-विवेचन में भारतीय संस्कृत आचार्यों -भामह दण्डी, अग्निपुराणकार, रुद्रट, भोजराज, हेमचन्द्र, हिन्दी आचार्यों -- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, बाबू गुलाबराय, रामदहिन मिश्र, आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी, डा0 नगेन्द्र, डा0 गोविन्दराम शर्मा, डा0 शम्भूनाथ सिंह, डा0 श्याम नन्दन किशोर, डा0 कृष्णदत्त पालीवाल, आदि एवं पाश्चात्य विद्वानों अरस्तू, होरेस, एबर क्राम्बी आदि विद्वानों के मतों को प्रस्तुत करके सबका समन्वय प्रस्तुत किया गया है। काव्य शास्त्रीय तत्वों में रसादि छः सम्प्रदायों के साथ दोष, गुण,शब्द-शक्तियों इत्यादि का विवेचन विन्यस्त है।

द्वितीय अध्याय के प्रथम भाग में सप्तम दशक से पूर्व के हिन्दी महाकाव्य-स्थिति एवं युगबोध का अध्ययन किया गया है जिसमें आदिकाल, मध्यकाल एवं आधुनिककाल की राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक एवं साहित्यिक परिस्थितियों का अध्ययन करते हुए, तत्कालीन महाकाव्यों का विवेचन प्रस्तुत किया गया है। मध्यकाल को भक्ति - काल एवं रीतिकाल तथा आधुनिककाल को भारतेन्दु युग, द्विवेदीयुग, छायावादयुग, प्रगतिवादयुग और प्रयोगवाद युग में विभक्त करके सबकी अलग-अलग परिस्थितियों का चित्रण हुआ है। द्वितीय भाग में आलोच्य महाकाव्यों की पृष्ठभूमि एवं उनका परिचय दिया गया है। श्री रामचन्द्र एवं जगज्जननी जानकी से सम्बन्धित महाकाव्य - भगवानराम, जानकीजीवन, अरुणरामायण, उत्तरायण, सीतासमाधि, रामदूत, एवं निषादराज हैं। कविवर 'पंत' द्वारा प्रणीत 'सत्यकाम' में छान्दोग्य उपनिषद की कथा आधुनिक पीठिका में स्थापित करके समकालीन समस्याओं को निरूपित किया गया है। कृष्ण से

सम्बन्धित दो महाकाव्य हैं —'अश्वत्थामा' एवं 'कृष्णाम्बरी।' दोनों में महाभारत की कथा को आधार बनाया गया है किन्तु कृष्णाम्बरी में जहाँ कृष्ण के सम्पूर्ण जीवन का चित्रण है वहीं 'अश्वत्थामा' में महाभारत युद्ध के कुछ अंश का ही। पं0 रविशंकर मिश्र के 'सत्यमेव जयते' में भारत की स्वतंत्रता से सम्बन्धित सन् 1857 से 1947 तक की घटनाओं की विशद् चर्चा हुई है। तृतीय भाग में आलोच्य महाकाव्यों के सांस्कृतिक विवेचन के अन्तर्गत संस्कृति के प्रमुख तत्वों — आध्यात्मिकता, अवतारवाद, नीतिबोध कर्मसिद्धान्त, पुनर्जन्म और परलोक, वर्णाश्रम व्यवस्था, संस्कार, साधनामार्ग एवं सौन्दर्य बोध आदि का वर्णन कथास्थल-निर्देश के साथ सम्पन्न हुआ है। आध्यात्मिकता के अन्तर्गत जीव ब्रह्म, ईश्वर, माया, जगत् तथा अवतारवाद में -- रामावतार, कृष्णावतार, तथा गाँधी-अवतार की चर्चा हुई है। नीतिबोध में - राजनीति, धर्मनीति, वर्णाश्रम व्यवस्था में - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्णों तथा संस्कारों में — गर्भाधानादि 16 संस्कारों का वर्णन हुआ है। कर्म सिद्धान्त - पुनर्जन्म, परलोक एवं भाग्य आदि के साथ साधना मार्ग के अन्तर्गत ज्ञान, भक्ति आदि साधनों का वर्णन है। सौन्दर्यबोध मे प्राकृतिक रमणीयता एवं नायक नायिका का सौन्दर्य वर्णन समाहित है।

तृतीय अध्याय में अध्येय महाकाव्यों की कथावस्तु का विन्यास हुआ है। साथ ही उसके स्रोत, मौलिकता एवं कार्यावस्थाओं, सन्धियों और अर्थप्रकृतियों की भी चर्चा की गयी है। राम के सम्पूर्ण जीवन से सम्बन्धित महाकाव्यों (भगवान राम, अरुण-रामायण, सीतासमाधि,) में श्री राम एवं जगज्जननी जानकी के जन्म से लेकर रामराज्य एवं अश्वमेध यज्ञ तक की कथावस्तु का विनियोजन हुआ है। जानकी जीवन में सीता - निर्वासन, लवकुश जन्म और अश्वमेध यज्ञ की कथा का उल्लेख किया गया है। 'निषादराज' में श्रीराम के श्रृंगवेरपुर पहुँचने से भरत के नंदिग्राम निवास एवं रामदूत में सम्पूर्ण सीतान्वेषण कथानक का विनियोजन हुआ है जिसमें हनुमान का नायकत्व प्रतिलक्षित होता है। 'सत्यकाम' में जाबाल के गौतम ऋषि से दीक्षा ग्रहण करने के साथ, हंस, मद्गु, अग्निदेव, वृषभ, आदि से भी दीक्षा ग्रहण करने की कथा आयी है। 'कृष्णाम्बरी' में कृष्ण के जन्म से महाभारतयुद्ध की समाप्ति तक का प्रसंग है जबकि अश्वत्थामा में महाभारत युद्ध के एक अंश को प्रस्तुत किया गया है। इसमें जो द्रोण के भीषण युद्ध वर्णन से अश्वत्थामा के ब्रह्मसरोवर तट में तप करने तक का प्रसंग है। 'सत्यमेव जयते' में सन् 1857 से

1947 तक की स्वतंत्रता प्राप्ति से सम्बन्धित प्रमुख घटनाओं का अंकन हुआ है। राम से सम्बन्धित महाकाव्यों में वाल्मीकि रामायण की कथा को आधार बनाया गया है। कुछ महाकाव्यों में सम्पूर्ण राम कथा को तथा कुछ महाकाव्यों में रामकथा के किसी विशेष अंश को ग्रहण किया गया है। 'सत्यकाम' की कथा का स्रोत छान्दोग्य उपनिषद है। कृष्ण से सम्बन्धित महाकाव्यों (अश्वत्थामा एवं कृष्णाम्बरी) की कथा महाभारत से ली गयी है। सत्यमेव जयते' का कथानक ऐतिहासिक है। मौलिकता की दृष्टि से 'सत्यमेव जयते' एवं 'उत्तरायण' महाकाव्य पूर्णरूपेण मौलिक कहे जा सकते हैं। शेष महाकाव्यों के कुछ प्रसंगों में ही कवियों की मौलिकता दृष्टिगोचर होती है। कथावस्तु की नाटकीयता यथा पाँच अवस्थाओं, सन्धियों एवं अर्थप्रकृतियों का भी निरूपण किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में भावपक्ष के अन्तर्गत रसों की व्यंजना हुई है। आलोच्य महाकाव्यों में श्रृंगार, करूण, वीर, रौद्र, भयानक, वात्सल्य, वीभत्स, आदि रसों का अच्छा विन्यास हुआ है जबकि हास्य एवं अद्भुत रस का वर्णन कुछ कम अच्छा है। नायक के सम्पूर्ण जीवन का चित्र उपस्थित करने वाले महाकाव्यों (भगवानराम, अरूणरामायण, जानकीजीवन, कृष्णाम्बरी, सीतासमाधि) में सम्पूर्ण रसों एवं शेष महाकाव्यों में कुछ रसों का अभाव सा दृष्टिगोचर होता है। जैसे वीर रस प्रधान महाकाव्यों —'अश्वत्थामा, 'रामदूत' 'सत्यमेव जयते' में वात्सल्य एवं श्रृंगार रस का अभाव सा है। सत्यकाम में वीर रस की बहुत कम चर्चा हुई है। कलापक्ष के अन्तर्गत महाकाव्यों में प्रयुक्त भाषा अलंकार, गुण, रीति, छन्द, शब्द शक्तियों एवं दोषों का वर्णन हुआ है। 'सत्यकाम' में संस्कृतनिष्ठ और सन्धि समासयुक्त भाषा का उपयोग होने से यह महाकाव्य थोड़ा सा क्लिष्ट प्रतीत होता है। 'सत्यमेव जयते' में अंग्रेजी, उर्दू आदि विदेशी शब्दों का बाहुल्य है किन्तु विषय वस्तु को देखते हुए यह अस्वाभाविक नहीं प्रतीत होता। शेष महाकाव्यों में तत्सम शब्दों से युक्त खड़ी बोली का प्रयोग हुआ है। प्राचीन एवं नवीन सभी महत्व - पूर्ण अलंकार प्रयुक्त हुए हैं। अश्वत्थामा, रामदूत, सत्यमेव जयते, भगवानराम, कृष्णाम्बरी जानकी जीवन में ओजगुण की प्रधानता है। शेष में माधुर्य एवं प्रसाद गुण प्राप्त होते हैं। शेष में माधुर्य एवं प्रसादगुण प्राप्त होते हैं। विशेषकर वैदर्भी एवं पांचाली रीतियों का उपयोग हुआ है। अश्वत्थामा, रामदूत, सत्यमेव जयते, में यदाकदा गौणी रीति के भी दर्शन होते हैं। छन्दों में वर्णिक एवं मात्रिक दोनों प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुए हैं। छन्दों

की दृष्टि से भगवानराम, जानकीजीवन, निषादराज, अश्वत्थामा, रामदूत प्रमुखकाव्य हैं। सत्यकाम में अतुकांत छन्द और सत्यमेव जयते में मिश्रित छन्दों का प्रयोग हुआ है जबकि कृष्णाम्बरी, छन्दमुक्त महाकाव्य है। अभिधा शक्ति सम्पूर्ण महाकाव्यों में विद्यमान है जबकि इन महाकाव्यों में लक्षणा एवं व्यंजना शब्द शक्ति के दर्शन प्रसंगवश होते हैं। महाकाव्यों में दोषों का अभाव सा दृष्टिगोचर होता है।

पंचम अध्याय में आलोच्य महाकाव्यों के पात्रों का चरित्र चित्रण किया गया है। आलोच्य महाकाव्यों के प्रमुख पुरुष एवं स्त्री पात्रों — राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, दशरथ, विभीषण, जनक, हनुमान, सुग्रीव, रावण, गुह, तुलसीदास, जाबाल, गौतम कृष्ण, अर्जुन, भीम, द्रोण, कंस, दुर्योधन, धृतराष्ट्र, अश्वत्थामा, गाँधी, ह्यूम, सुभाष चन्द्र बोस, तिलक, भगतसिंह, आजाद, जिन्ना, सीता, कैकेयी, कौशल्या, सरमा, जाबाला, राधा, यशोदा, गांधारी, सरोजनी नायडू, एनीबिसेण्ट आदि का चरित्र चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

छठें अध्याय में महाकाव्यों में चित्रित प्रकृति का विवेचन किया गया है। प्रारम्भ में षड्ऋतु वर्णन के साथ प्रातः ऊषा, मध्यान्ह, सन्ध्या, अर्द्धरात्रि, का वर्णन हुआ है। अध्येय महाकाव्यों में प्रकृति की सुरम्य छटा एवं उसके भयंकर रूप दोनों के द दर्शन होते हैं तथा आलम्बन, उद्दीपन, मानवीकरण, आध्यात्मिक, उपदेशात्मक, सहचरी, दूती, आलंकारिक, संवेदनात्मक एवं वातावरण निर्माण के रूप में प्रकृति-चित्रण हुआ है।

सप्तम अध्याय में आलोच्य महाकाव्यों के उदात्त संदेश एवं उनके योगदान की चर्चा की गयी है। इनमें वसुधैव कुटुम्बकम् के संदेश के साथ सदाचार त्याग, परोपकार दया, निष्ठा आदि के परिपालन की प्रेरणा प्रदान की गयी है। सम्पूर्ण महाकाव्यों में पिता, पुत्र, भाई, बहन, पत्नी, पति, नेता एवं जन साधारण के कर्तव्य निश्चित किये गये हैं, जिनसे सुष्ठु सौम्य समाज की संरचना हो सकती है। ये महाकाव्य अनाचार के पतन के साथ सदाचार की विजय दिखाकर मानव को श्रेय कर्मों की ओर प्रेरित करते हैं। 'उत्तरायण' में हिन्दू धर्म में फैली कुछ भ्रान्तियों को दूर करने का प्रयास किया गया है। 'सत्यमेव जयते' में देशप्रेम की भावना का सागर सा दृष्टिगोचर होता है। इस तरह से आलोच्य महाकाव्यों का भारतीय वाङ्मय तथा उसके प्रत्येक वर्ग के लिए बहुत बड़ा योगदान हो सकता है।

इस प्रकार से शोधप्रबन्ध में आलेच्य महाकाव्यों को काव्य शास्त्रीय तत्वों की कसौटी में कसा गया है जिससे उनमें कथात्मक लोक विश्रुति, सांस्कृतिक निष्ठा, का परिपालन प्रतिलक्षित होता है। शैल्पिक संगठन में भाषा सौष्ठव, छन्द वैविध्य, शैलीगत गरिमा, अलंकारों का प्रयोग एवं वर्णन वैचित्र्य जितना सशक्त है उतना ही उनका भाव पक्ष(रसादि वर्णन) भी। नायक की परिकल्पना, चारित्रिक विनियोजन, प्रकृति-चित्रण, युग-प्रेरक प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति, जीवन मूल्यों की प्रतिष्ठा का काव्य संकल्प, सामाजिक चेतना के गतिशील स्तरों के रूपांकन की अदम्य क्षमता आदि दृष्टियों से आलोच्य महा-काव्य समृद्ध हैं।

अन्त में मैं उन सभी रचनाकारों का हृदय से आभार प्रकट करता हूँ जिनके अनेकानेक प्रकाशित, अप्रकाशित ग्रन्थों, पत्रिकाओं-पत्रों आदि की सहायता इस शोधप्रबन्ध लेखन में ली गयी है। डा0 विश्वम्भर सिंह भदौरिया का अथ से लेकर इति तक निर्देशन सम्प्राप्त हुआ है जिसके लिए लेखक अपनी श्रद्धा अर्पित करता है, साथ ही डा0 मुंशी राम शर्मा, - वैदिक शोध संस्थान कानपुर, डा0 द्वारका प्रसाद मित्तल, डा0 विश्वम्भर दयाल अवस्थी, डा0 वेद प्रकाश द्विवेदी, डा0 ओंकार प्रसाद त्रिपाठी, डा0 हरीश चन्द्र निगम, - हिन्दी विभाग, अतर्रा कालेज, एवं अपने विभाग के डा0 आर0एल0 त्रिपाठी, डा0 आर0ए0 चौरसिया, डा0 वी0एल0 वर्मा, तथा ए0पी0 तिवारी आदि लब्ध प्रतिष्ठ विद्वानों को मैं सश्रद्ध नमन करता हूँ जिन्होंने अपनी बहुमूल्य सम्मति देकर मेरा मार्ग दर्शन किया।

निवेदक

(हीरालाल)
भूगोल-विभाग
अतर्रा कालेज, अतर्रा (बांदा)

विषयानुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

महाकाव्यों का स्वरूप विश्लेषण एवं उनके काव्य शास्त्र के अनुसार तत्व

(क) 1- भारतीय काव्य शास्त्र के अनुसार महाकाव्य की मान्यताएँ।

2- पाश्चात्य काव्य शास्त्र के अनुसार महाकाव्य की मान्यताएँ।

3- समन्वय।

(ख) भारतीय काव्य शास्त्र के तत्व एवं पाश्चात्य काव्य शास्त्रीय तत्वों से समन्वय

महाकाव्यों का स्वरूप सर्वदा परिवर्तनशील रहा है। अतः उसकी एक निश्चित, सर्वमान्य, सर्वकालीन परिभाषा प्रस्तुत करना बहुत ही दुस्साध्य कार्य है; तभी एडमंड बुर्क ने कहा है कि महाकाव्य की ऐसी परिभाषा प्रस्तुत करना असम्भव है जिसमें उसके सभी तत्व समाहित हो जायें।[1]

महाकाव्य की रचना एक सांस्कृतिक कार्य है। अतः जैसे संस्कृति अखण्ड एवं अपरिवर्तनीय होते हुए भी विकास की ओर गतिमान रहती है, वैसे इसकी भी प्रवृत्तियाँ तथा परम्परायें आदि विकासोन्मुख रहती हैं। महाकाव्य व्यष्टि जीवन की अभिव्यक्ति न होकर समष्टि जीवन का चित्र उपस्थित करता है, जिसमें सामाजिक जीवन की सामयिक परिस्थितियों और विश्व जीवन की प्रचलित प्रवृत्तियों का प्रतिबिम्ब उभर कर स्वतः सामने उपस्थित हो जाता है। दिनकर ने लिखा है —" विश्व के महाकाव्य मनुष्यता की प्रगति के मार्ग में मील के पत्थरों के समान होते हैं। वे व्यजित करते हैं कि मनुष्य किस युग में कहाँ तक प्रगति कर सका है।"[2] अतः स्पष्ट है कि महाकाव्य प्रगतिशील रचनाओं की तरह किसी रूढ़ परिभाषान्तरगत समाहित नहीं हो सकता, फिर भी उसके तात्विक विवेचन एवं विकासक्रम को जानने के लिए वैज्ञानिक विश्लेषण आवश्यक है, जिसकी प्रथम सोपान परिभाषा ही है एवं इसके अभाव में रचना का स्वरूप बोध असम्भव है, परन्तु पूर्वकाल से ही महाकाव्य को एक निश्चित् कसौटी में कसने का प्रयास होता रहा है। इसे प्रमुखतम भारतीय और पाश्चात्य आचार्यों के अनुसार निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है —

1- I have no great opinion of a definition the celeborated remedy for the cure of disorder (uncertainty and confusion).

Edmond Burk-Introduction of Sublime and beautiful P.4

2- रामधारी सिंह दिनकर, अर्धनारीश्वर, पृ0 46

भारतीय आचार्यों केअनुसार महाकाव्य

भारतीय मनीषियों में दो प्रकार के आचार्यों ने अपने-अपने मत प्रस्तुत किये हैं —
(1)भारतीय संस्कृत आचार्यों के मत।
(2)भारतीय हिन्दी आचार्यों के मत।

(1)संस्कृत आचार्यों के मत :-

महाकाव्य की श्रृंखला में संस्कृत मनीषियों ने समय-समय पर उसे अनुबंधित करने का सुप्रयत्न कर सुव्यवस्थित रूप प्रदान किया। उनके द्वारा निर्धारित अनुबन्ध तत्कालीन महाकाव्यों को देखते हुए समीचीन ही थे। 'भामह'कृत काव्यालंकार' में सबसे पहले महाकाव्य के लक्षणों पर प्रकाश डाला गया। कुछ विद्वान् 'अग्निपुराण' को सबसे प्राचीन बताते हैं, किन्तु इस ग्रन्थ का समय निश्चित् नहीं है एवं अधिकांश विद्वान् एक मत हैं कि यह ग्रन्थ भामह तथा दण्डी के बाद प्रणीत किया गया। इस प्रकार क्रमशः भामह, दण्डी, अग्निपुराणकार, रूद्रट, भोजराज, हेमचन्द्र आदि अनेक आचार्यों ने अपने अपने मत प्रस्तुत किये हैं जो निम्नलिखित हैं —

(1) भामह :-

इन्होंने अपने ग्रन्थ 'काव्यालंकार' में महाकाव्य की ऐसी परिभाषा दी है जो परवर्ती आचार्यों की परिभाषा की तरह संकीर्ण तथा रूढिपरक नहीं है। इनके अनुसार महाकाव्य सर्गबद्ध रचना होती है। यह महान चरित्रों से युक्त महत् आकार का, ग्राम्य शब्द रहित, अलंकारों से समृद्ध तथा शिष्ट भाषा से युक्त होता है। कथानक में नाटक की सारी संधियाँ एवं अवस्थाएँ सदाश्रित तथा सुगठित होती है। उसमें राजदरबार, दूत, आक्रमण, युद्ध आदि के वर्णन के अतिरिक्त नायक के अभ्युदय का वर्णन हुआ हो। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चार वर्गों को स्थान प्रदान किया गया हो किन्तु प्रधानता अर्थ को ही दी गयी हो। महाकाव्य में किसी अन्य व्यक्ति के उत्कर्ष को प्रदर्शित करने की कांक्षा से नायक का वध नहीं दिखाया जाना चाहिए।[1]

1- काव्यालंकार, भामह, परि0 1/19-23

दण्डी :--

'काव्यादर्श' प्रणेता दण्डी ने अपने इस ग्रन्थ में भामह द्वारा प्रतिपादित महाकाव्य के सम्पूर्ण लक्षणों को ग्रहण अवश्य किया किन्तु वे ऐसे स्थूल नियमों केबीच पिरो दिये गये कि गौड़ तत्व प्रधान लगने लगे तथा प्रधान तत्व महत्वहीन से हो गये। इनके अनुसार महाकाव्य सर्गबद्ध रचना होती है। आरम्भ में आशीर्वादात्मक, वस्तु निर्देशात्मक तथा नमस्कार आदि का विधान हो। कथानक, ऐतिहासिक, सदाश्रित वृत्त पर आधारित अथवा लोक प्रख्यात हो। अर्थ, धर्म, काम तथा मोक्ष आदि में से किसी एक की प्रतिष्ठा की गयी हो। नायक उदात्त एवं चतुर हो। यहाँ पर उन्होंने महान चरित्र के स्थान पर चतुरोदात्त नायक कहकर महाकाव्य में उद्देश्य के महत्व को कम कर दिया है। महाकाव्य में नगर, पर्वत, सागर, चन्द्रोदय, उद्यान, जलविहार, मधुपान, रत्योत्सव, विप्रलम्भ, विवाह, मंत्रणा, प्रयाण, नायक अभ्युदय, अलंकृति संक्षिप्तता, रसभाव की निरंतरता, संधियों से गठित कथा, संतुलित सर्ग विधान आदि का प्राविधान हो। सर्गान्त में ~~छन्~~ छन्द परिवर्तन आवश्यक है।[1]

अग्निपुराण :--

भामह एवं दण्डी के पश्चात् अग्निपुराणकार को इस श्रृंखला में लिया जा सकता है। अग्निपुराण का रचनाकाल विवादास्पद है। इसके अन्तर्गत प्रस्तुत किये गये लक्षणों के आधार पर महाकाव्य सर्गों में विभक्त होना चाहिए। सर्ग संक्षिप्त हों तथा सर्गान्त में छन्द परिवर्तन हुआ हो। अति जगती, शक्करी, अतिशक्करी, त्रिष्टुप, पुष्पिताग्रा आदि का सर्गों में मेल हो। सज्जनों का अनादर न दिखाया गया हो। नगर पर्वत ऋतु सूर्य, चन्द्र, आश्रम, पादप, उद्यान, जलक्रीड़ा मधुपान आदि के वर्णन हों। उत्सव, दूतीवचन, के साथ कुलटाओं के आश्चर्ययुक्त चरित्रों का वर्णन किया गया हो। नायक का वृत्तान्त जीवन के पुरुषार्थ चतुष्टय को लेकर वर्णित किया गया हो।[2]

1- काव्यादर्श, दण्डी, परि0 1/14-20

2- अग्निपुराण, 33/24-34

रुद्रट :—

इन्होंने अपने ग्रन्थ काव्यालंकार सूत्र में काव्य भेदों का निरूपण करते हुए महाकाव्य की परिभाषा दी है, जिसके आधार पर निम्नलिखित तथ्य उभरते हैं।[1]

(1) महाकाव्य में उत्पाद्य अथवा अनुत्पाद्य किसी भी ~~किं~~ कोटि की पद्यबद्ध कथा होतीहै।

(2) इसकी कथा में प्रसंगानुसार मूलाधिकारिक कथा को आगे बढ़ाने के लिए अन्य अवान्तर कथायें भी नियोजित की जाती हैं।

(3) अनुत्पाद्य कथा का आधार इतिहास पुराणादि का प्रख्यात वृत्त होता है तथा उत्पाद्य कथा कवि कल्पित होती है।

(4) महाकाव्य का नायक द्विज कुलोत्पन्न, सर्वगुण सम्पन्न, विजगीषु प्रजा अनुरागी स्व-मित्रों के लिए अपने साथ सिद्ध में लगने वाला परम शक्तिवान् नीतिज्ञ सर्वशास्त्र पारंगत व्यवहार कुशल महापुरुष होना चाहिए।

(5) प्रतिनायक के वंशादि का भी वर्णन हो।

(6) प्रतिनायक की पराजय और नायक की विजय प्रदर्शित की गयी हो।

(7) धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का वर्णन हो।

(8) सभी रसों का समावेश हो।

(9) सेना के शिविरों, युवकों की क्रीड़ाओं का यथातथ्य वर्णन एवं सन्ध्या, अन्धकार, चन्द्रोदय, रजनी, समाज, संगीत एवं प्रसंगानुसार श्रृंगार का भी वर्णन हो।

(10) महाकाव्य में मानव जीवन की ऐसी घटनाओं का वर्णन नहीं होता जो अस्वाभाविक लगें।

(11) कथानक में अनुकूल प्रकरण, काव्यसंस्थानों के साथ सन्धियों की भी विनियोजन हो।

(12) सर्गों का विधान अनिवार्य है।

हेमचन्द्र :—

इन्होंने अपने ग्रन्थ 'काव्यानुशासन' में सूत्रशैली में अपनी परिभाषा[2] प्रस्तुत की है। इनके अनुसार दी गयी परिभाषा में दण्डी द्वारा दी गयी परिभाषा के प्रति

1- काव्यालंकार, रुद्रट, 16/2-19

2- पद्यं प्रायः संस्कृतप्राकृतापभ्रंशग्राम्य भाषानिबद्धभिन्नान्त्यवृत्त सर्गाश्वाससंध्यस्कन्धकबन्धं सत्सन्धिशब्दार्थवैचित्र्योपेतं महाकाव्यम्। (हेमचन्द्र-काव्यानुशासन, आठवाँ अध्याय)

लगाव सा दिखायी देता है।

इनके आधार पर संस्कृत के अतिरिक्त, प्राकृत अपभ्रंश तथा अन्य देशी भाषाओं में भी महाकाव्य की रचना हो सकती है। ये छन्द की धारा को महत्व देते हैं सर्गान्त में छन्द परिवर्तन को नहीं। इन्होंने कथावस्तु में पंच संधियों के साथ तीन बातें और रखीं –

(1) शब्द वैचित्र्य
(2) अर्थ वैचित्र्य
(3) उभय वैचित्र्य

विश्वनाथ :—

विश्वनाथने अपने पूर्ववर्ती सम्पूर्ण लक्षण कारों के मतों तथा लक्षण ग्रन्थों की परम्परा को भी ध्यान में रखते हुए महाकाव्य के लक्षणों का विस्तार किया।[1] इनके अनुसार निम्नलिखित तथ्य महाकाव्य के लिए आवश्यक हैं।

(1) महाकाव्य सर्गबद्ध हो।
(2) नायक देवता अथवा सद्वंश का क्षत्रिय या एक वंश में उत्पन्न कई राजा हो सकते हैं। नायक में धीरोदात्तादि गुण आवश्यक हैं।
(3) श्रृंगार वीर शान्त रसों में से कोई एक अंगी रस हो एवं अन्य रस सहायक रसों के रूप में प्रयुक्त हुये हों।
(4) नाटक की सभी संधियाँ कार्यावस्थाओं से गठित कथावस्तु ऐतिहासिक एवं सदाश्रित हो।
(5) अर्थ धर्म काम मोक्ष में से किसी एक फल की प्रतिष्ठा की गयी हो।
(6) आरम्भ में मंगलाचरण, नमस्क्रियात्मक, अथवा वस्तुनिर्देशात्मक हो तथा उसमें कहीं कहीं पर सज्जनों की प्रशंसा और खलों की निंदा होनी चाहिए।
(7) सम्पूर्ण महाकाव्य एक ही छन्द में रचा गया हो, परन्तु सर्गान्त में छन्द परिवर्तन हो।
(8) सर्ग आठ या आठ से अधिक हों, किन्तु न अधिक विशालकाय हो और न अधिक अल्पकाय हों।

1- साहित्य दर्पण, आचार्य विश्वनाथ, षष्ठपरिच्छेद, 315-328

(9) सर्गान्त में भावी घटनाएँ भासित होना चाहिए।

(10) प्रकृति वर्णन में संध्या, सूर्योदय, रजनी, प्रदोष, दिवसान्त, प्रातः दोपहर, मृगया, पर्वत, वन, सागर, आदि तथा सम्भोग-विप्रयोग, स्वर्ग, रण-प्रयाण, मन्त्रणा, पुत्रोत्पत्ति आदि की यथास्थान योजना होनी चाहिए।

(11) महाकाव्य का नामकरण नायक अथवा कथा के आधार पर होना चाहिए।

इस प्रकार से भारतीय संस्कृत आचार्यों द्वारा प्रस्तुत किये गये महाकाव्य के लक्षणों में बहुत कम अन्तर मिलता है। भामह, दण्डी, अग्निपुराण, तथा विश्वनाथ ने सर्गबद्धता को स्वीकार किया जबकि रुद्रट मौन रहे और हेमचन्द्र ने सर्गबद्धता की चर्चा शब्द वैचित्र्य के अन्तर्गत की। कथानक की पंचसन्धियों में फिर सभी एक मत हैं। सभी आचार्य महाकाव्य के संतुलित आकार को स्वीकार करते हैं, केवल भामह यह मानते हैं कि महाकाव्य का आकार विशाल होना चाहिए। छन्द बन्धन को सभी ने स्वीकार किया है। हेमचन्द्र छन्द विशेष को महत्व देते हैं किन्तु विश्वनाथ के अनुसार सर्ग में एक छन्द तथा सर्गान्त में छन्द परिवर्तन होना चाहिए। सभी ने महाकाव्य का आरम्भ आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक अथवा वस्तु निर्देशात्मक होना बताया है। प्रकृति वर्णन अवान्तर कथाओं तथा लोकरंजकता आदि सभी की चर्चा हो। सभी के अनुसार कथा का चयन लोक-प्रख्यात, उदात्त वृत होना चाहिए तथा उसमें जीवन शक्ति का महत्व दिया गया हो।

भारतीय हिन्दी आचार्यों के मत

महाकाव्य विषयकमत हिन्दी आचार्यों तथा हिन्दी शोध प्रबन्धकारों ने भी व्यक्त किये हैं। इनमें से कुछ पाश्चात्य विद्वानों के मतों से प्रभावित हैं कुछ संस्कृत विद्वानों से। अतः हिन्दी आचार्यों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है —

(1) संस्कृत आचार्यों से प्रभावित हिन्दी आचार्य।

(2) पाश्चात्य आचार्यों से प्रभावित हिन्दी आचार्य।

(3) हिन्दी शोधप्रबन्धकार।

(1) संस्कृत आचार्यों से प्रभावित हिन्दी आचार्य :-

संस्कृत आचार्यों ने प्रमुख रूप से संस्कृत महाकाव्यों के लक्षणों पर प्रकाश डाला था जिनका अनुसरण हिन्दी के कुछ आचार्यों ने किया। इनमें से आचार्य रामचन्द्र शुक्ल विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, बाबू गुलाबराय, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी तथा रामदहिन मिश्र

प्रमुख हैं। पाश्चात्य विद्वानों का इन पर बहुत कम प्रभाव पड़ा है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल :-

शुक्ल जी श्रेष्ठ प्रबन्धकाव्य को ही महाकाव्य स्वीकार करते हैं। क्योंकि 'जायसी ग्रन्थावली' की भूमिका में 'पद्मावत' को प्रबन्धकाव्य की अभिधा से सम्बोधित किया है। इन्होंने लिखा है कि ' प्रबन्धकाव्य मानव जीवन का पूर्ण दृश्य होता है। उसमें घटनाओं की सम्बद्ध श्रृंखला के और स्वाभाविक क्रम के ठीक-ठीक निर्वाह के साथ हृदय को स्पर्श करने वाले नाना भावों का रसात्मक अनुभव कराने वाले प्रसंगों का समावेश होना चाहिए। इतिवृत्त मात्र के निर्वाह से रसानुभव नहीं कराया जा सकता। उसके लिए घटना-चक्र के अन्तर्गत ऐसी वस्तुओं और व्यापारों का प्रतिबिम्बवत चित्रण होना चाहिए जो श्रोता के हृदय में रसात्मक तरंगें उठाने में समर्थ हो।[1]

खण्डकाव्य और प्रबन्धकाव्य दोनों का प्रबन्धकाव्य में स्थान है। दोनों में कथात्मक अन्विति एवं सम्बन्ध का निर्वाह आवश्यक है फिर ये एक निश्चित विभेदक रेखा के द्वारा सुस्पष्ट हैं। खण्डकाव्य में खण्ड जीवन की झलक प्रतिलक्षित होती है और महा-काव्य में अखण्ड जीवन चित्र को इन्होंने मानव जीवन के पूर्ण दृश्य[2] की संज्ञा से अभिहित किया है।'

शुक्ल जी के अनुसार कथानक का सहज गति से विस्तार होना चाहिए और अपनी रमणीयता के कारण हृदय को स्पर्श करने वाली शक्ति अनिवार्य रूप से निहित होना चाहिए। इसी से आचार्य जी ने 'रसात्मकता' को विशिष्ट स्थान देते हुए उसे प्रबन्ध की आत्मा स्वीकार किया है। ये महाकाव्य के तीन अनिवार्य तथ्य मानते हैं —

(1) मानव जीवन का अखण्ड चित्रण हो।

(2) कथान्विति के साथ सहज गत्यात्मक गुण हो।

(3) हृदय को स्पर्श करने में समर्थ रस व्यंजना हो।

1- जायसी ग्रन्थावली, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृ0 69

2- वही, पृ0 70

आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र :–

इनका मत है कि 'महाकाव्य की कथा प्रख्यात ही होनी चाहिए, कल्पित नहीं। प्रख्यात वृत्त की योजना का कारण यही है कि रस संचार या साधारणीकरण की क्रिया में सहायता प्राप्त हो। जिस चरित्र-नायक की कथा ली जाय उसके साथ तादात्म्य स्थापित होने में कोई बाधा उपस्थित न हो।[1] इन्होंने प्रख्यात कथावस्तु तादात्म्य के सहज गुण से युक्त नायक एवं प्रभान्विति को प्रमुख स्थान प्रदान किया। इनके आधार पर महाकाव्य में निम्नलिखित बातें होनी चाहिए —

(1) सानुबन्ध कथा।

(2) वस्तु वर्णन

(3) भाव व्यंजना

(4) सम्वाद।[2]

गुलाबराय :—

बाबू गुलाबराय ने संस्कृत आचार्यों द्वारा प्रतिपादित महाकाव्य विषयक मतों को ही प्रधानता देकर उन्हें विषयपरक माना है। नायक ऐतिहासिक अथवा काल्पनिक दोनों हो सकते हैं, किन्तु उसका धीरोदात्त होना अनिवार्य है। इन्होंने लिखा है — "संक्षेप में हम कह सकते हैं कि महाकाव्य वह विषय प्रधान काव्य है, जिसमेंकि बड़े आकार में जाति में प्रतिष्ठित लोक प्रिय नायक के उदात्त कार्यों द्वारा जातीय भावनाओं आदर्शों और आकांक्षाओं का उद्घाटन किया जाता है।[3] यदि नायक इतिहास प्रसिद्ध है तो तादात्म्य सहज ही स्थापित होता है तथा नायक के लोकप्रिय होने के कारण लोकरंजन का भी समावेश हो जाता है और काव्यमें भावना व्यापार या साधारणीकरण की सम्भावना अधिक हो जाती है।[4] उदात्त की कल्पना का अभाव भारतीय वाङ्मय में नहीं है। उदात्त की सम्पूर्ण धारणा को अभिव्यक्त करने के लिए भारतीय शब्द विराट् अधिक समर्थ है।[5]

1-~~जायसीग्रन्थावली~~, आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, वाङ्मयविमर्श, पृ0 22

2- वही, पृ0 22

3- वही, पृ0 30

4- काव्य के रूप, बाबू गुलाबराय, पृ0 59

5-सिद्धान्त और अध्ययन, बाबू गुलाबराय, पृ0 204

रामदहिन मिश्र :—

मिश्र जी भी संस्कृत आचार्यों के अनुगामी हैं। इनके अनुसार देवता सद्वंशोद्भव नृपति या किसी प्रसिद्ध व्यक्ति का वृत्तांत लेकर अनेक सर्गों मेंजो कार्य लिखा जाता है, वह महाकाव्य है। इन वृत्तान्तों का आधार इतिहास आदि होते हैं। कोई एक रस प्रधान होता है अन्य रस गौण।[1] उसमें अनेक प्रकार का प्राकृतिक वर्णन होना चाहिए तथा छन्दों का विधान भी। इस प्रकार इन्होंने विश्वनाथ के द्वारा प्रतिपादित लक्षणों की पुनरावृत कीहै।

पश्चात्य आचार्यों से प्रभावित हिन्दी आचार्य

इन्होंने विभिन्न देशों के विद्वानों द्वारा प्रतिपादित महाकाव्य के लक्षणों का समन्वय प्रस्तुत किया है। इनकी दृष्टि शाश्वत तथ्यों की ओर मूलरूप से रही है। प्रतिनिधि आचार्य डा० भगीरथ मिश्र , आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी और आचार्य नगेन्द्र जी के नाम अग्रगण्य हैं।

डा०भगीरथ मिश्र :—

मिश्र जी ने भारतीय एवं अनेकों देश विदेश के विद्वानों के महाकाव्य संबंधी लक्षणों का अध्ययन प्रस्तुत करते हुए महाकाव्य के चार अनिवार्य तत्वों की ओर संकेत किया है।[2] व्याख्यापरक दृष्टि से ये महाकाव्य के चार भेद स्वीकार करते हैं[3]—

(1)कथाप्रधान महाकाव्य

(2)चरित्रप्रधान महाकाव्य।

(3)भावप्रधान महाकाव्य।

(4)अलंकृत प्रधान महाकाव्य।

1- काव्यदर्पण, रामदहिन मिश्र पृ0 249

2- काव्यशास्त्र, डा0भगीरथ मिश्र, पृ0 65

3- वही, पृ0 66

आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी :--

इनकी दृष्टि में वही महान काव्य है जिसमें जीवन का मधुर तथा विराट् रूप उभरा हो। यह महाकाव्य को महान संस्कृति की उपलब्धि मानते हैं। 'महाकाव्य की रचना जातीय संस्कृति के किसी महाप्रवाह सभ्यता ~~की रचना~~ के उद्भव, संगम, प्रलय, किसी महच्चरित्र के विराट उत्कर्ष अथवा आत्मतत्व के किसी चिर अनुभूत रहस्य को प्रदर्शित करने के लिए की जाती है।[1] महाकाव्य में महामानव के महत्कार्य ही विराट् रूप लेकर प्रकट होते हैं।[2] इस प्रकार इनके द्वारा प्रतिपादित लक्षणों में तीन तत्व अनिवार्य प्रतीत होते हैं --

(1)रचना प्रबन्धात्मक या सर्गबद्ध हो।

(2)शैली का गाम्भीर्य।

(3)वर्णित विषय की व्यापकता एवं महत्व।

आचार्य नगेन्द्र :--

सर्वाधिक रूप में ये 'वर्णित विषय की व्यापकता' पर बल देते हैं। अन्य विद्वानों की तरह अनावश्यक बातों कोलक्षणों के अन्दर स्थान प्रदान नहीं करते। इन्होंने महाकाव्य को आन्तरिक और वाह्य दोनों रूपों में अवलोकन किया। इनका कथन है कि 'महाकाव्य के उन्हीं तत्वों को लेकर चलूँगा जोदेश काल सापेक्ष्य नहीं हैं, जिनके अभाव में किसी भी देश अथवा युग की रचना बन सकती है और जिनके सद्भाव में परम्परागत शास्त्रीय लक्षणों की बाधा होने पर भी किसी कृति को महाकाव्य के गौरव से वंचित नहीं किया जा सकता। ये मूल तत्व हैं[3] --

(1)उदात्त कथानक।

(2)उदात्त चरित्र

(3)उदात्त कार्य का उद्देश्य

(4)उदात्त भाव

(5)उदात्त शैली।

1- हिन्दी साहित्य बीसवी शताब्दी, आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी, पृ044

2-आधुनिक साहित्य, आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी, पृ0 53

3- कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ, आचार्य नगेन्द्र, पृ015

हिन्दी शोधप्रबन्धकारों के मत

महाकाव्यों को लक्षणों से आबद्ध करने का प्रयास अनेक शोध प्रबन्धकारों ने किया है जिनमें से अत्यन्त थोड़े आचार्यों की चर्चा यहाँ पर की गयी है —

डा० गोविन्दराम शर्मा :—

'हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य' शोधप्रबन्ध में इन्होंने पौरस्त्य पाश्चात्य विद्वानों के महाकाव्य सम्बन्धी लक्षणों पर दृष्टिपात करे कुछ नये तुले शब्दों में परिभाषा इस प्रकार की है —

"महाकाव्य एक ऐसी छन्दोबद्ध प्रकथनात्मक रचना होती है, जिसमें विषय की व्यापकता और नायक की महानता के साथ-साथ कथावस्तु की एक सूत्रता, छलकता हुआ रस प्रवाह, वर्णन विशदता, उदात्त भाषा शैली, जीवन का यथासाध्य सर्वांगीण चित्रण और जातीय भावनाओं तथा संस्कृति की सुन्दर अभिव्यक्ति हो।"[1] इस तरह श्री शर्मा जी ने निम्नलिखित तथ्यों को मान्यता दी है —

(1) महाकाव्य छन्दोबद्ध रचना होती है।
(2) रसात्मकता।
(3) नायक की महत्ता
(4) उदात्त भाषा शैली।
(5) जीवन का सर्वांगीण चित्रण एवं तत्कालीन संस्कृति की अभिव्यक्ति।

डा० शम्भूनाथ सिंह :—

इन्होंने अपनी परिभाषा में निम्नलिखित तत्वों को आवश्यक माना है[2] —

(1) महदुद्देश्य, महत्प्रेरणा और महती काव्यप्रतिभा।
(2) गुरुत्व, गाम्भीर्य और महत्त्व।
(3) महत्कार्य और युग जीवन का समग्र चित्र।

1- हिन्दी के आधुनिक महाकाव्यः डा० गोविन्द शर्मा, पृ० 43
2- हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, डा० शम्भूनाथ सिंह, पृ० 108-120

(4) सुसंघटित जीवन्त कथानक।

(5) महत्त्वपूर्ण नायक।

(6) गरिमामयी उदात्त शैली।

(7) तीव्र प्रभावान्वित और गम्भीर रस-व्यंजना।

(8) अनवरुद्ध जीवनी शक्ति और सशक्त प्राणवत्ता।

डा0 श्यामनन्दन किशोर :--

इन्होंने डा0 शम्भूनाथ सिंह की परिभाषा पर दृष्टिपात करके अपना मत इस प्रकार दिया है --" महाकाव्य मर्मस्पर्शी घटनाओं पर आधारित एक महान कवि की ऐसी छन्दोबद्ध कृति है जिसमें मानव जीवन की किसी ज्वलन्त समस्या का व्यापक प्रतिपादन किसी महान उद्देश्य की पूर्ति या जातीय संस्कृति के महाप्रवाह की उद्भावना उदात्त वर्णन शैली, व्यंजक भाषा, पूर्ण रसात्मकता और उच्चकोटि के शिल्प विधान द्वारा किया जाता है एवं जिसका नायक किसी भी जाति या वंश का [illegible] होकर भी अनेक गुणों से कवि के आदर्शों को मूर्तिमान करने वला होता है।'[1]

डा0 कृष्ण दत्त पालीवाल :--

इन्होंने 'मध्ययुगीन हिन्दी महाकाव्यों में नायक' शोधप्रबन्ध में भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों की धारणाओं का सर्वेक्षण करने के पश्चात् महाकाव्य के सामान्य स्वरूप विधायक तत्व इस प्रकार निर्धारित किये हैं --[2]

(1) उदात्त नायक।

(2) रसात्मकता

(3) उद्देश्य की ज्योति

(4) अभिव्यंजना में शक्ति।

इनके शब्दों में --" अतः हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि महाकाव्य उस रचना को कहेंगे जिसमें मानव के महनीय कार्यों एवं आदर्शों को व्यापक परिधि से

1- डा0 श्यामनन्दन किशोर, आधुनिक महाकाव्य का शिल्पविधान, पृ0 60

2- डा0 कृष्णदत्त पालीवाल, मध्ययुगीन हिन्दी महाकाव्यों में नायक, पृ0 62

युक्त सुगठित कथानक में कलात्मक उत्कर्ष के साथ प्रतिष्ठित किया जाता है। कवि उसमें युग धर्म तथा युग नेता को ऐसा व्यक्तित्व प्रदान करता है कि जातीय गौरव की रक्षा के साथ वे मानवता का पथ प्रशस्त कर सकें। मानवता के प्रगति-पथ में महाकाव्य मील के पत्थरों के समान होते हैं। वे व्यंजित करते हैं कि मानव किस युग में कहाँ तक विकास कर सका है।"[1]

इस प्रकार से हिन्दी विद्वानों ने समष्टि रूप से यह स्वीकार किया है कि कथानक गठित एवं व्यापक हो, महत्वपूर्ण नायक हो, सम्पूर्ण प्रबन्ध रसमय हो, महान उद्देश्य, समर्थ अभिव्यंजना शिल्प का विधान हो।

पाश्चात्य विद्वानों के मत

पाश्चात्य साहित्य में महाकाव्य (इपिक) के युगानुरूप लक्षण प्रस्तुत किये गये हैं जिन्हें तीन भागों में विभक्त किया जासकता है —(1) प्राचीन (2) अर्वाचीन (3) आधुनिक काल।

प्राचीन विद्वानों में अरस्तू (ई0पू0 चौथी शताब्दी) का नाम अग्रगण्य है जिन्होंने सर्वप्रथम महाकाव्यीय लक्षणों पर प्रकाश डाला। इन्होंने त्रासदी (ट्रेजडी) एवं महाकाव्य की तुलना करते हुये इनके अन्तर को व्यक्त किया है —

"जहाँ तक शब्दों के माध्यम से महान चरित्रों और उनके कार्यों के अनुकरण का सम्बन्ध है, दोनों में समानता पाई जाती है, किन्तु कुछ बातों में महाकाव्य त्रासदी से पृथक होता है। महाकाव्य में आदि से लेकर अन्त तक एक ही छन्द का प्रयोग होता है। वह प्रकथनात्मक होता है और उसके कार्य व्यापार में समय की कोई सीमा नहीं रहती, जबकि त्रासदी का कार्य व्यापार लगभग 24 घण्टे तक ही सीमित होता है।"[2]

1- डा0कृष्णदत्त पालीवाल, मध्ययुगीन हिन्दी महाकाव्यों में नायक, पृ063

2- Epic poetry agrees so far with tragic as it is imitation of great characters and actions by means of words, but in this it differs, that it makes use of only one kind of meter throught, and that it is narrative. It also differs in length, for tragedy endeavaurs, as far as possible to confine its actions within the limit of a single revolution of the sun or nearly so but the time of epic action is indefinite.

Domeatrius - Aristotle's Poetics P.13

डा0गोविन्द राम शर्मा, हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य, पृ0 32 से अवतरित

'काव्यशास्त्र' अभिधात्मक ग्रन्थ के बाइसवे, तेइसवें और चौबीसवें अध्याय में अरस्तू ने महाकाव्य की चर्चा की है। ये उसी कलाकृति को महाकाव्य (ईपिक) की अभिधा प्रदान करते हैं जो निम्नलिखित गुणों से विभूषित हो —

(1)घटना योजना ट्रेजडी के समान हो तथा कथा अनुकरणात्मक हो। छै पदों वाले विशिष्ट छन्द के प्रयोग के साथ कोई एक कार्य पूर्णता के साथ वर्णित हो।

(2)त्रासदी के कथानक की तरह उसमें औचित्य हो तथा जीवन की कोई एक महान घटना को स्थान मिला हो।[1]

(3)कथानक का विन्यास अन्वितियों से सुसंगठित हो एवं उसमें आदि मध्य और अंत क्रमवत प्रस्फुटित हो।

(4)प्रमुख कथा का पोषण करने वाली अवान्तर कथाएँ भी अवश्य होनी चाहिए।

(5)कथानक ऐतिहासिक हो किन्तु वह पूर्णरूपेण इतिहास ही न बन जाये इसका ध्यान रखना चाहिए। उसमें रमणीय कल्पना का परिपाक होना चाहिए।

(6)उच्चकोटि के या उदात्त पात्रों को ही स्थान दिया जाना चाहिए।

(7)उदात्त चरित्र वाला नायक हो किन्तु पूर्णरूपेण निर्दोष न हो।[2]

(8)समग्र जीवन गाथा पर महाकाव्य लिखा जा सकता है।दूसरी ओर एक युग की घटनाओं को एकत्र कर महाकाव्य प्रणीत हो सकता है।[4]

1- प्रो0 भगीरथ मिश्र - समीक्षालोक -अरस्तू, पृ0 226

2-'महाकाव्य तथा त्रासदी में यह समानता है कि उसमें उच्चकोटि के पात्रों की पद्य-बद्ध अनुकृति रहती है।'(डा0नगेन्द्र- अरस्तू का काव्यशास्त्र पृ08)

3- First perfectly blameless character is deemed unfit to be a tragic hero . . . .

S.H.Bucher- Aristotles theory of poetry and fine Arts, P.308

4-महाकाव्य में एक विशिष्ट क्षमता होती है, अपनी सीमाओं की विस्तार करने की।

(डा0 नगेन्द्र - अरस्तू का काव्यशास्त्र पृ0 63)

(9) समग्र जीवन का चित्र हो क्योंकि जीवन के व्यापकत्व के कारण उसमें गरिमा का समावेश होगा।

(10) जिस प्रकार कथानक उदात्त हो उसी प्रकार शैली भी उदात्त होना अनिवार्य है।[1]

अरस्तू के पश्चात् इसी युग में (सं0 1400--1600) अनेक आचार्यों ने महाकाव्य के स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया। वैसे अधिकांश के मत अरस्तू से मिलते हैं, किन्तु इन्होंने सुधारवादी दृष्टिकोण को ग्रहण किया है। इनमें से प्रमुख है - लांजाइन्स, मिण्टूर्नो, बीड़ा, त्रिसिनो, कैस्टलवीट्रो, वेब, टैसो, पुटेन हेम आदि।

अर्वाचीन (17 वीं0 18वीं शती) विचारकों ने भी महाकाव्य के स्वरूप एवं प्रकृति पर अपने विचार प्रस्तुत किये जिनमें प्रमुख रूप से ड्राइडन, हाब्स, टेवेनेण्ट, ह्यूम गिवन एडिसन आदि के नाम अग्रगण्य हैं।

आधुनिक काल (19वीं 20वीं शती) में महाकाव्य सम्बन्धी लक्षणकारों में सी0एम0बावरा, एबर क्राम्बी, वाल्टेयर, डिक्सन, केर आदि प्रमुख हैं।

1- With respect to that species of poetry which imitates by narration and it's hexameter verse, it is obvrious that the fable aught to be dramatically constructed like that of Tragedy that it should have far its subject one entire and perfect action having a beginning, a middle and an end, so that forming like an animal complete whole in a way, afford its proper pleasure. widely differing in its contruction from history which necessarily treats not of one action but of one person or to many during that time, events, the relation of which to each other is merely casual.

Edited by T.A. Maxan - Aristotles Theory of Poetry and Fine Arts , P.41 - 47.

उपर्युक्त तीनों कालों के प्रमुख विद्वानों के अनुसार बताए गये लक्षणों की विवेचना करने पर बहुत अधिक विस्तार हो जाता है अतः इनमें से कुछ के ही उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं -

लांजाइन्स :-

अपनी पुस्तक 'आन दी सबलाइम' में काव्य के उदात्त तत्वों का उद्घोषण किया। काव्य की उदात्तता का प्रभाव मानव जीवन पर व्यापक रूप से पड़ता है और उत्कृष्टता काव्य (महाकाव्य) का प्राण है। यह निष्कर्ष रूप मेंइस प्रकार है --

(1) महाकाव्य में नायक भव्यतर एवं उसके कार्य-व्यापारों का मुक्त चित्रण हो।

(2) भव्य विचार उसके प्राण तत्व के अन्तर्गत सम्मिलित किये जाते हैं। वस्तु विन्यास की भव्यता के लिए ऐन्द्रिक ऐक्य का होना अनिवार्य है। भावों की गम्भीरता युगीन मांग एवं संघर्षों की चहल-पहल उसमें स्पष्ट परिलक्षित हो।

(3) जिस प्रकार विषय भव्य हो उसी प्रकार उसकी रक्षा के लिए शैली का भव्य होना आवश्यक है।[2]

(4) जैसे पूर्णरूप से शान्त बहने वाले नद का प्रवाह बड़ा उत्कृष्ट दिखायी देता है उसी तरह विस्तृत घटनाओं से फलक परिपूर्ण हो।[2]

(5) तत्कालीन युग की सम्पूर्ण गरिमा महाकाव्य में स्पष्ट रूप से प्रस्फुटित होना चाहिए। अलौकिक एवं अतिप्राकृतिक घटनाओं का भी वर्णन किया जा सकता है।

1- भगीरथ मिश्र, समीक्षित - समीक्षालोक, पृ0 243

2- Like the noiseless lapse of a mighty river is never the less sublime.

Longinus-on the sublime P.82

3- डा0 नगेन्द्र , काव्य में उदात्त तत्व, पृ0 3

हॉरेस :—

अरस्तू के काव्य सिद्धान्तों का अध्ययन करने के पश्चात् अपनी 'आर्स पाइटिका' नामक कृति में काव्य तथा नाटक के प्रमुख तत्वों को निर्देशित किया जो महाकाव्य के लिए अनिवार्य से हैं। इन्होंने महाकाव्य पर अरस्तू की तरह अलग से प्रकाश नहीं डाला।[1] इनके विचार संक्षेप में निम्नवत हैं —

(1) अरस्तू के अनुकरण को अन्धानुकरण नहीं माना बल्कि एक सृजनात्मक शक्ति के रूप में स्वीकार किया है। कथावस्तु प्राचीन हो सकती है किन्तु उसका परिवेश नवीन होना चाहिए।

(2) इन्होंने आदर्श वस्तु द्वारा अप्रत्यक्ष रूप से मधुर शिक्षा देकर चरित्र को उत्तम बनाना ही काव्य का उद्देश्य स्वीकार किया है। क्योंकि काव्य मानव जाति की जो भी सेवाएँ करता है वे सभी धार्मिक एवं सामाजिक प्रवृत्ति की होती है।

(3) काव्य में ऐन्द्रिय ऐक्य अरस्तू की तरह ही स्वीकार किया, इसी से काव्य में रचना संगति का समर्थन किया।[2]

(4) विषयवस्तु तथा छन्द का अविच्छेद सम्बन्ध माना और युद्धात्मक वृत्तान्तों में अरस्तू की तरह छै पदों वाले हेक्सामीटर छन्द का प्रयोग ही उचित बताया।[3]

(5) रचना ऐक्य से सम्पूर्ण कृति की उपयुक्तता, उसके विभिन्न अवयवों का पारस्परिक सम्बन्ध तथा कृति में औचित्य का होना आवश्यक है। इसे ही होरेस ने 'साहित्यौचित्य' का नाम दिया। उनका यह औचित्य सिद्धान्त चरित्र तथा कथावस्तु पर विशेष लागू होताहै।[4]

(6) महाकाव्य समुद्र की तरह गम्भीर होना चाहिए।

(7) जीवन्त घटनाओं के साथ प्राणवान नायक ही उसे महत्वपूर्ण बनाता है। अतः उसमें नायक का सम्पूर्ण जीवन चित्रित होना चाहिए।[5]

मिण्टूर्नो :—

ये अरस्तू के बहुत बड़े समर्थक थे। इन्होंने कार्य की एकता तथा अनुकरण की भव्यता पर बल दिया। महाकाव्य के भारी-भरकम आकार के विरोधी हैं और एक ही

1- भगीरथ मिश्र, समीक्षालोक, पृ0 263

2- वही, पृ0 263 3— वही, पृ0 263 4— वही, पृ0 265

5- वही, पृ0 268

वर्ष की घटनाओं को स्थान देना उचित बताते हैं। इनका कथन है किमहाकाव्य में उदात्त कार्य उदात्त शैली में वर्णित हो तथा नायक महान गुणों युक्त निर्दोष व्यक्ति हो।[1]

मिण्टरनिटो :—

इन्होंने कथानक में निरंतरता पर विशेष बल दिया। इनके अनुसार नायक बहुत पवित्र एवं उत्तम चरित्र वाला होना चाहिए। किन्तु उसमें थोड़ी बहुत सामान्य गलतियाँ भी हो सकती हैं।[2] इन्होंने कहा प्राचीन कथानक चरित्र, प्रकार तथा भाव महाकाव्य के लिए उपयुक्त हैं।

टैसो :—

इनकी परिभाषा पर दृष्टिपात करने पर निम्नलिखित तथ्य सामने आते हैं।[2]

(1) महाकाव्य में लयात्मकता तथा स्वभाव की एकता हो।

(2) विषय न अत्यन्त जर्जरित प्राचीन हो और न अति नवीन।

(3) आकार की विशालता का विरोध करते हुए इन्होंने कहा कि आकार की विशालता से कोई कृति महाकाव्य नहीं हो जाती, उसमें उसके गुण भी होने चाहिए।

(4) नायक गुणों की राशि हो तथा वह जीवन पर्यन्त निर्दोष हो।

लवस्सु

फ्रांसीसी विद्वान लवस्सु ने महाकाव्य के मात्र तीन तत्व आवश्यक माने -

(1) प्राचीन कथानक महान घटना पर आधारित हो जिसमें जीवन के व्यापक सत्य का प्रकटीकरण हो।[4]

1- "Minturno, however, would restrict the convas of the epic poet, permitting him only the events of a single year."

Dixon - English Epic and Heroic Poetry P.3

2- The hero must be a pious and moral, if not necessarily faultless character.

George Saintsburry - The History of criticism Part II P.90.

3- Ibid P.90

4- The main style of narrative poetry, he returns to epic or heroic poetry and discussed it on the old lines of flat characters, manners, passions of affections. . . . .

Saintsburry, The History of criticism Part II P.54

(2)कथा के अन्तर्गत ही महान नायक समाहित हो क्योंकि चरित्र महाकाव्य में महान उद्देश्य को पूर्णरूप से प्रकट कर सकता है।

(3)छन्दबद्धता तथा रूपात्मकता के साथ अनिवार्य शिक्षा भी महाकाव्य में आवश्यक है।

केम्स :— महाकाव्य की विषय सामग्री के लिए प्राचीन घटनाओं को उचित बताया है। ये 'सहजता' को विशेष महत्व प्रदान करते हैं।[1]

इनके अलावा 15 वीं 16वीं शताब्दी में लुकन महोदय ने केम्स का अनुकरण किया और कहा कि प्राचीन घटनाओं के विस्तृत वर्णन को ही महाकाव्य की अभिधा प्रदान की जा सकती है। उसमें चरित्र काल्पनिक न होकर ऐतिहासिक हो तथा जन -- साधारण को सर्वदा अपनी तरफ आकर्षित करता रहे। केम्स लुकन के अतिरिक्त जिराल्डी वीड्डा, पुटेनहेम आदि ने भी महाकाव्य के स्वरूप पर विचार किया। वीडा तथा सिसिनी अरस्तू के ही समर्थक हैं। जिराल्डी नायक के सम्पूर्ण जीवन चर्या को महाकाव्य कहते हैं जबकि वेस्टल वेट्रोने इसका विरोध किया और बताया कि किसी एक व्यक्ति के जीवन वृत्त को ही महाकाव्य में स्थान न देकर समस्त राष्ट्र के कार्य व्यापारों का वर्णन होना चाहिए। इनका दृढ विचार है कि मानव के कार्य भी पृथ्वी से स्वर्ग तक फैल सकते हैं। अतः दिव्य देवताओं के चरित्र को नायक पर अवतरित करना उचित नहीं।[2]

17वीं 18वीं शताब्दी में ड्राइडन, हाब्स, टेवेनेण्ट, ह्यूम, गिबन एडीसन आदि ने महाकाव्य के स्वरूप आदि के विषय में अपने विचार व्यक्त किये। ड्राइडन एवं सिडनी लांजाइन्स के समर्थक हैं एवं उदात्त का ही काव्य का सर्वस्व मानते हुए कहा कि "महाकाव्य में जीवन के सौन्दर्य का व्यापक उद्घाटन होना चाहिए तथा उसमें मानव - प्रकृति का मानस चित्र उभरकर सामने आना चाहिए।[3]

1- Kames is in agreement, "Familarity" he tells us, "ought morespecially to be avoided in an epic poem the peculiar character of which is dignity and elevation; modern manners make no figure in-such person."
Dixon - English Epic and Heroic Poetry P.2

2- Dixon - English Epic and Heroic Poetry P.4 - 8 .

3- Poetry is just and lively image of human nature, representing its passions and humours and the changes of fortune to which it is subject for delight and instruction of mankind.
Dryden - Essay on Dramatic Poisy- P. 30

डब्लू0पी0केर :—

इनके आधार पर महाकाव्य अत्यन्त गम्भीर, उदात्त तथा स्थिर रचना होती है।[1] इसकी विषयवस्तु में प्रेम, इतिहास, सुखन्दुख, समस्याएँ आदि अनेकों बातों का होना अनिवार्य है।[2] चरित्र की कल्पना अत्यन्त व्यापक एवं स्थिर रूप से की जाती है अतः वर्णन में विविधता आना स्वाभाविक है। कुछ महाकाव्यों में नाटकीय गुणों के अभाव के कारण नवीन घटनाओं एवं दृश्यों के रहते हुए भी नायक महत्वपूर्ण नहीं जान पड़ता फिर भी कथानक में विचित्र गरिमा के होने से वे महाकाव्य कहलाते हैं। इस प्रकार इनकी परिभाषा में दो बाते प्रमुख रूप से दिखायी देती हैं --

(1) महाकाव्य में चरित्र अत्यन्त व्यापक एवं पूर्ण हो।

(2) महाकाव्य के कथानक में एक विचित्र गरिमा हो।[3]

एबर क्राम्बी :---

इन्होंने लिखा है कि कोई भी प्रबन्ध यदि केवल वृहदाकार रूप में है तो वह महाकाव्य नहीं कहला सकता।[4] रचना चाहे अत्यन्त लघु हो या विशाल, उसमें महाकाव्योचित गरिमा, प्राणवान घटनाएँ नितांत आवश्यक हैं तथा उसमें कवि की कल्पना और विचारधारा का उदात्त रूप दिखायी पड़ना चाहिए।[5]

1- Epic is the most solemn, stately and frigid of all kinds of composition.

Dryden - Essay on Dramatic poisy P.30

2- Epic poetry is one of the complex and comprehensive kinds of literature in which most of other kinds may be included romance, history, comedy, tragical, comical, historical pastora and are terms not sufficiently various to denote the variety of the illiad and the odessy.

Dryden - Essay on Dramatic Poisy P.30

3- W.P. Ker, 'Epic Romance,' P.17

4- Laselles Abercrombie - the Epic, P-41 - 42

5- Ibid P.19

सामग्री के चयन मात्र से कोई भी कृति महान नहीं हो सकती। उसमें तभी महानता परिलक्षित होगी जब समग्र जीवन का चित्रण हुआ हो।[1] इनका कथन है कि कथा सामग्री या तो सत्य हो या लोक प्रख्यात। मात्र कवि की कोरी कल्पना से उसका निर्माण उचित नहीं।[2]

सी०एम०बावरा :—

श्री बावरा के आधार पर साधारणतया महाकाव्य में कथात्मक काव्यरूप होता है जिसमें चरित्रों की गत्यात्मक जीवनगाथा होती है। इसका आकार वृहद होता है। भयावह प्रसंग तथा युद्धादि का भी प्रदर्शन होना चाहिए। क्योंकि इनके द्वारा विशेष आनन्द प्राप्त होता है। घटनाएँ तथा पात्र पाठक के हृदय में मानव गरिमा, मानव की उपलब्धियों तथा भव्यता की ओर विश्वास दृढ़ करते हैं।[3] इस प्रकार इनकी परिभाषा में निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं —

(1) महाकाव्य वृहद वर्णनात्मक प्रबन्ध हो।

(2) महत्वपूर्ण एवं गम्भीर घटनाओं का वर्णन हो।

(3) पात्रों के महत्वपूर्ण एवं ~~क्रिय~~ क्रियाशील जीवनपक्ष का उद्घाटन हुआ हो।

(4) उसमें रंजनात्मक तत्व भी हो।

1- When epic poetry is called great, it is not only on account of the range of its matter, though that is important, for we could not call poetry great which did not face the whole m fact of man's life in this world....."

Abercrombic, 'The Idia of Great Poetry P.147

2- "The prime material of the epic poet, than, must be real and not invented .... the reality of the central subject is of course, to be understood broadly. It means that the story must be founded deep in the general experience of man".

L.Abercrombie, The Epic P.55

3- "An Epic poem is by common consent a narrative of same length and deals with events which have a certain grandure and importance and came from life of action, especially of violent action such as war, it gives a especial pleasure become its events and person enhans our belief in the worth of human achievement and in the dignity and nobility of man."

C.M.Bowra, From Vergil to Milton P.9

डिक्सन :—

इन्होंने अपनी कृति 'इंगलिश एपिक एण्ड हिरोइक पोयट्री' में महाकाव्य के स्वरूप पर विचार करते हुए बताया कि यह एक युग विशेष की देन होती है जिसमें उस युग की सम्पूर्ण छाप पड़ी होतीहै। महाकाव्य का नायक एक राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करता है। उसकी पराजय राष्ट्रके गौरव को कम करता है।[1] ये महाकाव्य को नाटक की तरह मानते हुये उसमें कार्य तथा चरित्र दोनों को महत्वपूर्ण बताते हैं।[2] घटना सरल हो अथवा जटिल चाहे वह इलियट की तरह एक स्थान पर घटित हो अथवा ओडसी की भांति उसका नायक विश्व भर में भटकता फिरे, एक नायक हो अथवा कई, सौभाग्यशाली हो अथवा दुर्भाग्यशाली, एचलिस की तरह भयंकर क्रोधी हो अथवा एनिमास की तरह पवित्र आत्मा वाले, सामन्य व्यक्ति हो या राजा वह स्वर्ग का हो अथवा नर्क का इससे विशेष अन्तर नहीं पड़ता।[3]

1- "For in such a poem the enterest is rather national than individual the hero represents a cause which trumph with his truth, where honour would suffer from his defeat."

Dixon - English Epics and Heroic Poetry P.13

2- Epic like Drama "is dependent upon action and character, upon the story and persons, these two upon either of which it might be important to lay the major stress, are the pillars of epic."

Dixon - English Epics and Heroic Poetry P.21

3- Let the action be simple or complex, let it lie in one single - place as in the odessy, let there be one single hero or a great may, happy or unfortunate furious as Achilles or pious asAseneas, Let them be kings or generals..!."

Ibid P.9

इस प्रकार सभी पाश्चात्य आचार्यों द्वारा प्रतिपादित महाकाव्यों के लक्षणों पर दृष्टिपात करने पर निम्नलिखित तथ्य प्राप्त होते हैं :—

(1) विषय व्यापक एवं सुन्दरतम हो।

(2) कथानक सुगठित हो।

(3) नायक महत्वपूर्ण एवं उदात्त चरित्र वाला हो।

(4) सभी पात्रों का चयन महाकाव्योचित हो।

(5) उद्देश्य विराट एवं सत्यों से युक्त हो।

(6) भाव गरिमामय हो।

(7) उपयुक्त छन्द विधान हो।

(8) भव्य शैली का प्रयोग हो।

भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वानों के मतों का समन्वय

मैक्नेल डिक्सन ने कहा है —" महाकाव्य सब देशों में एक जैसा है। वह चाहे पूर्व का हो अथवा पश्चिम का, उत्तर का हो अथवा दक्षिण का, उसकी आत्मा और प्रकृति सर्वत्र एक जैसी होती है। सच्चा महाकाव्य वह चाहे कहीं भी निर्मित हो, एक प्रकथनात्मक काव्य होता है, उसकी रचना सुसंगठित होती है। उसका सम्बन्ध महान चरित्रों और महाकार्यों से रहता है, उसकी शैली उसके विषय की गरिमा के अनुकूल होती है। उसमें चरित्रों और उनके कार्य कलाप को आदर्श रूप देने का प्रयास होता है। तथा उपाख्यानों एवं वर्णन विस्तार से उसके कथानक की रचना तथा समृद्धि होती है।" [1]

1- Yet heroic poetry is one, wheather of east or west, the north or south, its blood and temper are the same, and the true epic wherever created, will be a narrative poem organic in structure, dealing with great actions and great characters, in a style commensurate with the lordliness of it's theme, which tends to idealise these characters and actions and to sustain embllish it's subject by means of episode and amplifications.

M.Dixon - English Epic and Heroic Poetry P.24

पूर्व विवेचित भारतीय एवं पाश्चात्य लक्षणकारों के महाकाव्यीय लक्षणों एवं उपर्युक्त मत को देखते हुए स्पष्ट है कि महाकाव्य के सम्पूर्ण तथ्य सर्वत्र एक जैसे एवं युगानुरूप हैं। अल्प परिवर्तन अवश्य हुआ है किन्तु मतान्तर बहुत कम है, फिर भी हम कुछ तत्वों को लेकर भारतीय एवं ~~मत~~ पाश्चात्य मतों की समीक्षा इस प्रकार कर सकते हैं —

(1) महाकाव्य विषयक भारतीय एवं पाश्चात्य दृष्टिकोण :—

भारतीय संस्कृत विद्वान् भामह, दण्डी, रूद्रट, हेमचन्द्र तथा विश्वनाथ आदि की दृष्टि कालिदास, माघ, भारवि आदि महाकवियों द्वारा विरचित महाकाव्यों पर निश्चित रूप से दृष्टि रही होगी। विश्वनाथ के अलावा सभी विद्वान् एक व्यक्ति को नायकत्व प्रदान करते हैं। जबकि विश्वनाथ 'रघुवंश महाकाव्यम्' को ध्यान में रखते हुए किसी एक वंश में उत्पन्न कई राजाओं का नायकत्व स्वीकार करते हैं।

इसी प्रकार पाश्चात्य विद्वान भी होमर, ओडसी, इलियट को ध्यान में रखा। अरस्तू ने होमर तथा ओडसी के कई उदाहरण प्रस्तुत किये। मध्ययुग में यहाँ महाकाव्यों के कई तत्वों में परिवर्तन एवं परिवर्धन हुए फलस्वरूप यहाँ के लक्षणकारों ने लक्षणों में भी परिवर्तन तथा परिवर्धन किया। इसीलिए केर, डिक्सन प्रभृति विद्वानों ने क्रान्तिकारी परिवर्तन किये तथा इस युग में कथानक, नायक, उद्देश्य शैली आदि पर बिल्कुल नवीन दृष्टि से विचार किया किन्तु यह नवीनता पहले से अलग अस्तित्व न रखकर उसी का परिवर्धन मात्र है।

इस प्रकार भारतीय एवं पाश्चात्य आचार्य महाकाव्य के बाहरी एवं आन्तरिक अर्थात् उसके शरीर एवं आत्मा का विवेचन समयानुकूल प्रस्तुत करते रहे हैं। किसी ने उसके शरीर को लिया, किसी ने आत्मा को और किसी ने दोनों को ग्रहण कर लक्षण प्रस्तुत किये। हिन्दी आचार्य लगभग समन्वयवादी रहे। इन्होंने जितना संस्कृत आचार्यों द्वारा प्रतिपादित लक्षणों को महत्व प्रदान किया उतना ही पाश्चात्य लक्षणों को भी। आचार्य विश्वनाथ प्रसाद डा० भगीरथ मिश्र, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, गुलाबराय, आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी तथा डा० नगेन्द्र आदि विद्वानों नेअपने समन्वय वादी दृष्टिकोण को प्रस्तुत किया। कुछ हिन्दी शोधकर्ताओं ने भी उपर्युक्त आचार्यों के लक्षणों का अध्ययन करते हुए अपने विकासोन्मुखी

दृष्टिकोण प्रस्तुत किये। इस प्रकार भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों तरह के विद्वानों का महाकाव्य सम्बन्धी दृष्टिकोण साधारणतः एक जैसा है।

कथानक :--

भारतीय एवं पाश्चात्य दोनों प्रकार के विद्वानों के अनुसार महाकाव्य का कथानक जनप्रिय, लोकविश्रुत ऐतिहासिक एवं प्रख्यात होना चाहिए। भारतीय आचार्यों ने नाटक की तरह कथावस्तु में पंचसंधियों, पंचकार्यावस्थाओं को स्थान दिया, जबकि इसी बात को पाश्चात्य विद्वानों ने ऐन्द्रिक ऐक्य(आरगनेटिक यूनिट) के द्वारा प्रस्तुत करते हैं। दोनों प्रकार के आचार्यों ने जीवन के व्यापक सत्यों को कथानक के अन्तर्गत समाहित करने का प्रयास किया है। सभी संतुलित घटनाओं की योजना पर बल देते हैं। फिर भी समय के आधार पर भिन्नता अवश्य प्रतीत होती है। पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार महाकाव्य का समय कतिपय कुछ दिनों तक ही सीमित होता है। उदाहरण के लिए इलियड एवं ओडसी वृहत्काय महाकाव्य। इसके विपरीत रामायण एवं महाभारत जैसे महाकाव्यों में अनेक वर्षों की घटनाओं का उल्लेख हुआ है।

पाश्चात्य आचार्यों ने महाकाव्य में देवता, भूत, प्रेत आदि अलौकिक तत्वों का समावेश अनिवार्य माना है। पर भारतीय विद्वानों ने अलौकिक तत्वों का प्रयोग अनावश्यक समझा। फिर भी इन तत्वों का समावेश करना यहाँ पर वर्जित नहीं है। पाश्चात्य महाकाव्यों में दैवी शक्तियों का प्रदर्शन प्रत्यक्ष रूप से होता है जबकि पौरस्त्य में परोक्ष रूप से। जैसे इलियड और ओडसी में देवता मानव चरित्रोंके कार्य व्यापार में प्रत्यक्षतः हस्तक्षेप करते हैंजबकि भारतीय रामायण एवं महाभारत में देवता स्वर्ग से ही पुष्पवृष्टि एवं आँसू बहाकर नायक के सुख दुख में सम्मिलित होते रहे हैं।

नायक :--

नायक के सम्बन्ध में भारतीय एवं पाश्चात्य आचार्यों में वैषम्य कम साम्य अधिक है। दोनों के अनुसार नायक कोई लब्धप्रतिष्ठ महान चरित्र वाला ही होता है और वह जातीय भावनाओं तथा आदर्शों का प्रतिनिधित्व करने की क्षमता रखता है। भारतीय विद्वानों में दण्डी-- विजगीषु, रूद्रट-- चतुरोदात्त नायक' तथा विश्वनाथ -- धीरोदात्त गुणों की चर्चा करते हैं, दूसरी ओर पाश्चात्य विद्वान् टैसो तथा जिराल्डी ने पूर्ण गुणी

(परफैक्ट वर्चुअस) नायक की बात की है। अरस्तू पूर्णतः निर्दोष व्यक्ति को नायक के रूप में स्वीकार नहीं करते। उनका कथन है कि मनुष्य से कभी न कभी, कोई न कोई गल्ती अवश्य हो जाती है। अतः ऐसे नायक को स्थान देना जिससे कभी भी कोई त्रुटि न हुई हो, अनुचित है। नायक में उदात्त गुणों के होते हुए भी उसे निर्दोष नहीं होना चाहिए। किन्तु आगे चलकर इसका विरोध हुआ और आधुनिक समय में तो नायक की मृत्यु भी दिखायी जाने लगी एवं उसी को उद्देश्य की सिद्धि माना गया। पाश्चात्य परम्परा के अनुसार भारतीय अत्याधुनिक महाकाव्य 'लोकायतन' में नायक को लोप दिखाया गया है। इस बात पर सभी आचार्य एक मत हैं कि नायक लोक कल्याण में प्रवृत्त, उदात्त गुणों से युक्त, परम्पराओं एवं आदर्शों का रक्षक होना चाहिए।

रस :--

भारतीय महाकाव्यों में श्रृंगार, वीर एवं शान्त रसों में से किसी एक रस को प्रधानता दी गयी है तथा अन्य रसों को अंगी रस के रूप में स्वीकार किया गया है। दण्डी ने 'रस भाव निरंतर' को महत्व दिया जबकि अलंकारवादी आचार्य भामह ने अलंकार को काव्य की आत्मा स्वीकारते हुए रस की महत्ता का उद्घोषण किया। इस तरह भारतीय सभी आचार्य रस की महत्ता को स्थान देते हैं।

पाश्चात्य आचार्य कुछ इनके मतों से भिन्न हैं। वे महाकाव्य में केवल वीर रस को स्थान देते हैं और शायद इसी कारण महाकाव्य का नामकरण भी वीरकाव्य (एपिक) किया। यहाँ के साहित्य शास्त्र में रस का प्रत्यक्ष वर्णन तो उपलब्ध नहीं होता किन्तु उदात्त, हास्य आदि भावों पर विश्वास किया जाता है। इस भाव वैविध्य को ही भारतीय आचार्यों ने भावात्मक अनुभूति का प्रभेद माना है। इस प्रकार दोनों दृष्टियों से भेद होते हुए मूल एक ही प्रतीत होता है तथा स्पष्ट होता है कि सभी आचार्य रस की अनिवार्यता को स्वीकार करते हैं।

छन्द :--

भारतीयआचार्यों ने एक सर्ग में एक ही प्रकार के छन्दों को स्वीकार किया है और सर्गान्त में छन्द परिवर्तन भी बताया है जबकि पाश्चात्य विद्वान आदि से लेकर

अरस्तू :-- अन्त तक एक ही प्रकार के छन्द को महत्व देते हैं। इन्होंने छै पदों वाले एक विशिष्ट छन्द को महाकाव्य के लिए उचित माना है। जहाँ तक अलंकार और उदात्त भाषा शैली का विषय है दोनों विद्वान् समान रूप से महत्वपूर्ण बतलाते हैं।

उद्देश्य :—

भारतीय आचार्य पुरुषार्थ चतुष्टय, जिसमें जीवन की समग्र अखण्डता का भाव विद्यमान हो, महाकाव्य का उद्देश्य स्वीकारते हैं। पाश्चात्य विद्वान विरेचन अथवा मुक्त अभिव्यक्ति के द्वारा मानव के उदात्तीकरण तथा विशदीकरण को स्थान देते हैं। इन्होंने समग्र जातीय दृष्टि को महत्व दिया। दोनों उस रचना को महाकाव्य की संज्ञा देते हैं जिसमें भिन्न संस्कृतियों में विराट धाराओं का संगम हो। डा० नगेन्द्र एवं विश्वनाथ भारतीय एवं पाश्चात्य महाकाव्य के उद्देश्य को समुचित रूप से अध्ययन करते हुए महाकाव्य के उद्देश्य का नाम उदात्त उद्देश्य' रखा जिसके अन्तर्गत ऐसी शक्ति विद्यमान रहती है जिससे युग के चिरन्तन शक्ति भाव अनुभूतियाँ कालान्तर तक मानव की प्रेरणादायिनी बनी रहें और जीवन की महत् उपलब्धियों को रक्षित रखने की अपूर्व क्षमता विद्यमान हो। यही दोनों प्रकार के आचार्यों के उद्देश्य सम्बन्धी विचार हैं।

अभिव्यंजना शिल्प :—

भारतीय एवं पाश्चात्य इस तथ्य पर लगभग एक मत हैं। भामह ने ग्राम्य शब्दों का बहिष्कार किया जबकि अरस्तू भी ऐसी भाषा को उचित बताते हैं जिसमें पूर्ण परिपक्वता हो तथा नदी के अक्षुण्ण प्रवाह की तरह गतिमान हो। दोनों का विचार है कि जो भी महाकवि होगा, उसका भाषा में सहज अधिकार होगा। इस प्रकार महाकाव्यात्मक गरिमा के विषय में दोनों एक मत हैं। आधुनिक हिन्दी आलोचक शैली की उदात्तता पर बल देते हैं। अतः सभी एक मत हैं कि अभिव्यंजना शिल्प में महान गरिमा का होना नितान्त आवश्यक है।

उपर्युक्त सभी तथ्यों के अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि दोनों भारतीय एवं पाश्चात्य आचार्यमहाकाव्य में व्यापक परिधि वाली सुगठित कथावस्तु एवं उत्तम गुणों वाला उदात्त नायक हो। साथ ही सम्पूर्ण महाकाव्य रस से ओतप्रोत हो, उद्देश्य की ज्योति देदीप्यमान हो तथा अभिव्यंजना में शक्ति हो।

अतः हम उसको महाकाव्य की अभिधा से विभूषित करेंगे जिसमें मानव के महानतम कार्यों एवं आदर्शों से युक्त सुगठित, सभी कार्यावस्थाओं से परिपूर्णरसात्मक कथानक उदात्त शैली में अंकित किया गया हो। उदात्त नायक जो अपने युग का प्रतिनिधित्व करता हो साथ ही जातीय गौरव को संरक्षण प्रदान करते हुये मानवता का मार्गद्रष्टा बनकर सामने आये। उसमें उदात्त उद्देश्य की पूर्ति हो तथा सहज गतिमान भाषा प्रयुक्त हो। इस तरह वह दर्पण की तरह अपने युग का प्रतिबिम्ब समुपस्थित करता हो।

(ब) भारतीय काव्य-शास्त्र के तत्व

काव्य-सम्प्रदाय

शब्द एवं अर्थ आपस में अभिन्न होते हुए, काव्य के शरीर रूप में विद्यमान हैं अर्थ के बिना शब्द का कोई महत्व नहीं और शब्द रहित अर्थ, मानव मस्तिष्क ग्रहण करने मेंअसमर्थ है। इसी से कालिदास ने शब्द और अर्थ की एकता पार्वती परमेश्वर की एकता से[1] एवं तुलसी दास ने जल एवं उसकी लहर से[2] उपमानित किया है।

किसी भी शरीर का अस्तित्व आत्माविरवत असम्भव है। अतः अतीत से ही विद्वानों के समक्ष काव्य की आत्मा का विवेचन प्रधान विषय बना रहा है। ऐसी कौन सी वस्तु है जिसके विद्यमान होने पर काव्य का काव्यत्व परिलक्षित होता है? या कौन सा तत्व काव्य के अंगों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है? इसी प्रश्न के उत्तर में अनेकों काव्य — सम्प्रदायों का जन्म हुआ। कुछ आचार्य काव्य की आत्मा स्वरूप अलंकार को कुछ गुण, कुछ ध्वनिएवं कुछ रस को स्वीकार करते हैं। इस प्रकार अलग अलग मत होने से विभिन्न प्रकार के सम्प्रदाय भी विकसित हुए। इन सम्प्रदायों केउदय होने का कारण 'अलंकार सर्वस्व'के टीकाकार ने बहुत ही उपयुक्त बतलाया है। उनके अनुसार विशिष्ट शब्द एवं अर्थ मिलकर ही काव्य का रूप धारण करते हैं। शब्द और अर्थ की यह विशिष्टता धर्म व्यापार एवं व्यंग्य तीन प्रकार से ही सम्भव हो सकती है। धर्म दो तरह के होते हैं —

(1) नित्य

(2) अनित्य

अनित्य धर्म को अलंकार तथा नित्य धर्म को गुण या रीति के नाम से अवगत किया जाता है। काव्य के अन्तर्गत अनित्य धर्म की अपेक्षा नित्य धर्म को अधिक अपेक्षित समझा जाता है। इस तरह से धर्ममूलक वैशिष्ट्य प्रतिपादन करने वाले दो सम्प्रदाय परिलक्षित होते हैं :—

1- वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ॥ (महाकवि कालिदास, रघुवंश। /1)

2- गिरा अरथ जलवीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न।
बन्दउ सीताराम पदजिन्हहि परमप्रिय खिन्न॥ (गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड, 34)

(1) अलंकार सम्प्रदाय।

(2) गुण या रीति सम्प्रदाय।

इसी प्रकार व्यापार मूलक वैशिष्ट्य भी दो विभागों में विभक्त किया गया है —

(1) वक्रोक्ति।

(2) भोजकत्व।

वक्रोक्ति के द्वारा काव्य में चमत्कार मानने वाले आचार्य कुन्तक का मत 'वक्रोक्ति सम्प्रदाय' के नाम से जाना गया। भोजकत्व व्यापार की कल्पना भट्टनायक ने रस निरूपण के समय किया, जबकि आचार्य भरत रस मत के अन्तर्गत ही रसभुक्त मानना समुचित समझा और इसे अलग न मानकर रस सम्प्रदाय का अंग माना। आचार्य आनन्दवर्धन ध्वनि काव्य को उत्तम मानते हुए व्यंग्य से शब्दार्थ में वैशिष्ट्य मानते हैं। ध्वन्यालोक के प्रारम्भ में तीन मतों का उल्लेख किया जो इनसे प्राचीन हैं —

(1) अभाववादी।

(2) भक्तिवादी।

(3) अनिर्वचनीयतावादी।

ये ध्वनि की स्वतंत्र सत्ता स्वीकार नहीं करते। इनमें से कुछ गुण एवं अलंकार आदि को काव्य का प्राण स्वीकार कर ध्वनि को स्थान नहीं देते और कुछ इसे अलंकार के अन्दर ही अन्तर्भुक्त मानते हैं। भक्तिवादी सम्मति के अनुसार ध्वनि भक्ति (लक्षणा) के द्वारा गम्य है अतः उसके लिए एक नया काव्य प्रकार मानना समुचित नहीं। अनिर्वचनीयवादी मत के आधार पर ध्वनि काव्य में अनिर्वचनीय तत्व है, वह मात्र बुद्धि का गम्य है अतः उसके लिए शब्दों द्वारा विश्लेषण असम्भव है। अलंकार सर्वस्व के टीकाकार जयरथ ने अपनी 'विमर्शिनी' में ध्वनि विरोधी बारह सिद्धान्त बताए।[1] इन्होंने इन सिद्धान्तों को आनन्दवर्धन द्वारा निर्दिष्ट तीन सम्प्रदाय के अन्दर अन्तर्भुक्त कर दिया। आनन्दवर्धन इन तीनों मतों का खण्डन करके ध्वनि की स्वतंत्र सत्ता स्थापित की है।[2]

1-तात्पर्यं शक्तिरभिधा लक्षणानुमती द्विधा। अर्थापत्तिः क्वचित्तन्त्रं समासोक्त्याद्यलंकृतिः।
रसस्य कार्यता भोगो व्यापारान्तर बाधनम्। द्वादशेत्थं ध्वनेरस्य स्थिता विप्रतिपत्तयः॥
(जयरथ, विमर्शिनी' पृ09)

2-'इष्टविशिष्टौ शब्दार्थौ काव्यम्। तयोश्च वैशिष्ट्यं धर्ममुखेन, व्यापारमुखेन, व्यंग्यमुखेन, वेति त्रयः पक्षाः/आद्येऽप्यलंकारतो गुणतो वेति द्वैविध्यम्। द्वितीयेऽपि भणितिवैचित्र्येण, भोगकृत्वेन वेति द्वैविध्यम्। इति पंचसु पक्षेष्वाद्यः उद्भटादिभिरंगीकृतः, द्वितीयो वामनेन तृतीयो —

'समुद्रबन्ध' ने सम्प्रदाय एवं सिद्धान्त को अलग-अलग निर्णीत नहीं किया, जिससे अनेकों स्थानों में अनेकों सम्प्रदायों की चर्चा मिलती है जो कि समुचित नहीं। काणे साहब ने अपने ग्रन्थ 'हिस्ट्री आफ अलंकार शास्त्र' में लिखा है कि सम्प्रदाय की संज्ञा वही सिद्धान्त पा सकता है जिसकी कोई परम्परा हो अर्थात् वह किसी एक आचार्य का मत होकर सीमित न रहे बल्कि आगामी आचार्यों द्वारा विश्लेषित एवं विकसित किया जाये। उसके मानने वाले अनेकों विद्वानों की सत्ता बराबर बनी रहे। इस कसौटी पर कसने से वक्रोक्ति एवं औचित्य मात्र सिद्धान्त से दिखायी देते हैं, उन्हें सम्प्रदाय मानना किंचित् मात्र उचित नहीं जान पड़ता[1] किन्तु फिर भी प्रमुख सम्प्रदायों के नाम एवं उनके आचार्य निम्नप्रकार हैं ---

सम्प्रदाय	आचार्य
(1) रस	भरतमुनि, विश्वनाथ
(2) अलंकार	भामह, दण्डी, उद्भट
(3) रीति	दण्डी, वामन
(4) ध्वनि	आनन्दवर्धन, अभिनव गुप्त
(5) वक्रोक्ति	कुन्तक, एवं कुन्तल
(6) औचित्य	क्षेमेन्द्र

रस सम्प्रदाय

भारतीय साहित्य शास्त्र की अनुपम उपलब्धि रस है। रस के आद्य प्रवर्तक कौन थे? इसका ठीक ठीक पता नहीं चलता। रस का प्रयोग सर्वप्रथम वेदों में हुआ तथा साहित्य के विकास के साथ इसके अर्थ में भी परिवर्तनहोते गये हैं । इसका लब्ध अर्थ है---

---

--- वक्रोक्तिजीवितकारेण, चतुर्थो भट्टनायकेन, पंचम आनन्दवर्धनेन।
(समुद्रबन्ध, अलंकार सर्वस्वटीका)

1- हिन्दी साहित्य प्रथम खण्ड, प्रकाशक भारतीय हिन्दी परिषद प्रयाग, पृ0 323

आस्वाद, किन्तु इसके अतिरिक्त इसका एक अन्य अर्थ भी है जिसे द्रव्यत्व या तरल पदार्थ कहते हैं। इस प्रकार की व्युत्पत्ति दो प्रकार से सम्भव हो सकती है।

(1) रस्यते आस्वाद्यते इति रसः।

(2) सरते इति रस :।

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में इसका प्रयोग मुख्यतः चार अर्थों में हुआ है।[1]

(क) पदार्थों का रस -- अम्ल, तिक्त, कषाय आदि।

(ख) आयुर्वैदिक रस – इसका अर्थ रसायन या औषधि से है।

(ग) साहित्य के नवरस – श्रृंगार, वीर हास्य आदि।

(घ) भक्तिरस या मोक्ष।

भरत के नाट्यशास्त्र की रचना के पूर्व रस शब्द के विभिन्न अर्थों का विकास हो गया था। वेदों में रस का प्रयोग वनस्पतियों के द्रव्य के लिए हुआ तत्पश्चात् वह सोमरस, आनन्द ~~तत्त~~ चमत्कार तथा तन्मयता का वाचक बना। उपनिषदों में यह अत्यन्त सूक्ष्म अर्थ ग्रहण कर ब्रह्मानन्द एवं आत्मानन्द का वाहक बना। रामायण सूत्र ग्रन्थों से होता हुआ कामसूत्र में रतिभाव का बोधक बन सका।

भरत का नाट्यशास्त्र रस का सबसे प्राचीन ग्रन्थ माना जाता है। इसके अनन्तर भामह, दण्डी, उद्भट, वामन, रूद्रट रूद्रभट्ट, आनन्दवर्धन, कुंतक, महिमभट्ट, क्षेमेन्द्र, मम्मट, शारदातनय, भानुदत्त, रूपगोस्वामी, पण्डितराज जगन्नाथ, आदि विद्वानों ने निरन्तर आगे बढ़ाया और इस प्रकार से रस सिद्धान्त की परम्परा आचार्य भरत से प्रारम्भ होकर पंडितराज जगन्नाथ तक पहुँचकर समृद्ध हो गयी।

रस की परिभाषा एवं स्वरूप

किसी वस्तु का आस्वादन करने पर जो आनन्द मिलता है, उसे रस कहते हैं। सर्व प्रथम भरत के रससूत्र में रस को परिभाषित करने का प्रयास किया गया।[2]

1- धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक, 'रस शब्द का अर्थ विकास' डा0नगेन्द्र (हिन्दी अनुशीलन) पृ042।

2-विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।—नाट्यशास्त्र, 6, पृ0 274 डा0रघुवंश

यद्यपि इनके सूत्र में रस निष्पत्ति को बताया गया है किन्तु उससे रस स्वरूप पर भी प्रकाश पड़ता है। इनके अनुसार जिस प्रकार अनेकों व्यंजनों तथा औषधि आदि के संयोग से रस की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार अनेक भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।[1] जैसे गुड़ आदि द्रव्यों और व्यंजनों तथा औषधि आदि से षाडक(पानक रस) आदि के रस उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार अनेक भावो के उपगत होने से स्थायी भाव रसत्व को प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार नाना भाँति के व्यंजनों से संस्कृत अन्न को खाकर रसास्वादन करते हुये सुमना पुरुष सुख को प्राप्त होता है। उसी प्रकार अनेक प्रकार के भावों और अभिनयों द्वारा व्यक्त किये गये वाचिक, आंगिक तथा सात्विक अभिनयों से युक्त स्थायी भाव का सहृदय प्रेक्षक आस्वाद करते हैं और आनन्द प्राप्त करते हैं। सुमनस अर्थात् सहृदय इस नाम से कहे जाते हैं। अतः नाट्य से उद्भूत, इसको नाट्यरस कहते हैं।

दूसरी ओर महत्वपूर्ण परिभाषा आचार्य मम्मट की है। इनके अनुसार लौकिक व्यवहार में रति आदि चित्तवृत्ति विशेष के जो कारण, कार्य और सहकारी कारण होते हैं वे ही काव्य और नाटक में वर्णित होकर रति आदि स्थायीभावों के विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी भाव कहे जाते हैं तथा उन विभावादि के द्वारा व्यक्त किया गया स्थायीभाव रस कहा जाता है।[2]

रस की तीसरी परिभाषा, जो अत्यधिक लोकप्रिय है, आचार्य विश्वनाथ की है। इनके अनुसार जब विभाव अनुभाव और संचारीभावों के द्वारा सहृदयों के हृदय में वासनारूप से स्थित स्थायी भाव पूर्ण परिपक्वावस्था को प्राप्त कर जाता है तो उसे रस कहा जाता है।[3]

1- यथाहि नाना व्यंजनौषधिद्रव्यसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः (भवति) तथा नाना भावोपगमाद्रस-निष्पत्तिः। यथा हि गुडादिभिर्द्रव्यैर्व्यंजनैरौषधिभिश्च षाडवादयो रसाः निर्वर्त्यन्ते तथा नाना भावोपगता अपि स्थायिनो भावा रसत्वमाप्नुवन्तीति, अत्राह— रस इति कः पदार्थः? उच्यते आस्वाद्यत्वात्। कथमास्वाद्यते रसः?
यथाहि नानाव्यंजनसंस्कृतमन्नं भुंजाना रसानास्वादयन्ति सुमनसः पुरुषा हर्षादींश्चाधिगच्छन्ति तथा नानाभावाभिनयव्यंजितान् वाङ्गसत्वोपेतान स्थायिभावानास्वादयन्ति सुमनसः प्रेक्षकाः हर्षादींश्चाधिगच्छन्ति।—नाट्यशास्त्र अ06 पृ031/4, 31/6 हिन्दी अनुवाद-डा0रघुवंश।
2- मम्मट-काव्यप्रकाश, 4/27-28, 3—विश्वनाथ-साहित्यदर्पण, 3/1।

आचार्य विश्वनाथ ने रस को काव्य की आत्मा माना। शास्त्रों में भी रस को अधिक महत्व दिया गया है। वाग्विदग्धता या उक्तिवैचित्र्य की प्रधानता रहने पर भी रस ही काव्य का जीवन है —"वैग्धदग्ध्य प्रधानेपि रस एवात्र जीवितम्" । रस शब्द का अर्थ है आस्वाद्य अर्थात् जिसका आस्वादन किया जाय वही रस है। रस धातु का अर्थ आस्वादन करना होता है। यहाँ आस्वादन का अर्थ चखना न होकर चखकर आनन्द लेना है। रस में भावों का आस्वादन होता है। अतः भावों के आस्वादन को ही रस कहते हैं— "रस्यते इति रसः।' आचार्य विश्वनाथ ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों — अभिनवगुप्त एवं मम्मट की रस सम्बन्धी मान्यताओं को लेते हुए इसके स्वरूप को इस प्रकार परिभाषित किया है कि [1] 'सत्वगुण के सुन्दर स्वच्छ प्रकाश होने से रस का साक्षात्कार तब होता है जब अन्तःकरण में रजोगुण एवं तमोगुण का दमन कर दिया जाता है। रस का स्वरूप अखण्ड, अद्वितीय स्वयं प्रकाश स्वरूप आनन्दमय तथा चिन्मय होता है। इसके साक्षात्कार के समय अन्य विषय का भान तक नहीं होता। अतः इसे ब्रह्मास्वाद की संज्ञा दी जा सकती है।

वास्तव में जो वस्तु जितनी सरल होती है उसकी व्याख्या उतनी नहीं। जैसा कि रस में है। भरत का सूत्र – 'विभावानुभाव व्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः।' जितना सरल दृष्टिगत होता है वैसा नहीं है क्योंकि इसमें गृहीत 'संयोगात्' एवं 'निष्पत्तिः' पद अत्यन्त विवादास्पद स्थल बने हुये हैं। उपर्युक्त सूत्र के मूल आविष्कारक ने रस की तुलना छह विभिन्न पदार्थों के योग से निर्मित अपानक से की है एवं 'रस्यते आस्वाद्यते इति रसः' अर्थात् आस्वादित होने के कारण ही उसने इस तत्व को यह अभिधा दी है। नाट्य शास्त्र के उपर्युक्त विवेचन के बाद एक दीर्घ अन्तराल मौन सा निकल गया। दशवीं शताब्दी के अन्त में प्रसंगवश आचार्य अभिनव गुप्त की कुशाग्र बुद्धि ने इसका विश्लेषण किया और कतिपय पूर्ववर्ती आचार्यों के इस सूत्र से सम्बन्धित विचारों की चार कोटियाँ प्रस्तुत कीं, जिनमें चौथी स्वयं उनके द्वारा प्रतिपादित थी। इन्हें उत्पत्तिवाद, अनुमितिवाद, भोगवाद एवं अभिव्यक्तिवाद के नाम से जाना गया जिनमें संयोग शब्द का अर्थ क्रमशः कार्य

1- विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, 3/2-3

कारण भाव, गम्य-गमक भाव, भोज्य भोजकभाव, एवं व्यंग्य व्यंजक भाव लिया गया तथा निष्पत्ति का अर्थ उत्पत्ति, अनुमिति, भुक्ति एवं अभिव्यक्ति से लिया गया। इन चारों मतों की शास्त्रीय पृष्ठभूमि क्रमशः मीमांसा, न्याय, सांख्य एवं वेदान्त दर्शन थे तथा इनके प्रवर्तक क्रमशः भट्टलोल्लट, भट्टशंकुक, भट्टनायक एवं आचार्य अभिनव थे।

अभिनव गुप्त, मम्मट जैसे पूर्ववर्ती आचार्यों की परिभाषाएँ देखते हुए विश्वनाथ ने रस के स्वरूप को बताने का प्रयास किया। इनकी परिभाषा अत्यन्त लोकप्रिय रही थी। इनके अतिरिक्त और कई विद्वानों ने इस क्षेत्र में प्रयास किया, किन्तु उपर्युक्त चारों वादों के समझे बिना रसावस्था का स्वरूप अस्पष्ट ही रहेगा। अतः इस स्थान की अभिधा 'रस निष्पत्ति' दी जा सकती है जिसको अति संक्षिप में निम्नलिखित सारिणी द्वारा व्यक्त किया जा सकता है[1] --

आचार्य	दार्शनिकमत	वाद	रसकीस्थिति	संयोग का अर्थ	निष्पत्ति का अर्थ
भट्टलोल्लट	मीमांसक	उत्पत्ति	रस मूल रूप से अनुकार्यों में होता है एवं नटादि अनुकर्ताओं में आरोप होता है। गौणरूप से सामाजिक में अनुकरण के चमत्कार से उत्पन्न होता है	कार्य कारण भाव	उत्पत्ति
श्री शंकुक	नैयायिक	अनुमितिवाद	नट अनुभवादि द्वारा अनुकार्यों में अनुमेय गौणरूप से सामाजिकों में अनुकरण के चमत्कार से उत्पन्न होता है। इन्होंने नट और अनुकार्य का चित्र तुरंग न्याय से तादात्म्य माना है।	गम्य-गम्यक भाव	अनुमिति

1- गोविन्द त्रिगुणायत, शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त, पृ0 19।

आचार्य	दार्शनिकमत	वाद	रसकीस्थिति	संयोग का अर्थ	निष्पत्तिका अर्थ
भट्टनायक	सांख्यवादी	भुक्तिवाद	इसमें अभिधा भावकत्व द्वारा आलम्बनादि साधारणीकृत होकर सामाजिक के आस्वादन में कारण बनते हैं।	भोज्य-भोजक भाव	भुक्तिआस्वाद
अभिनव	वेदान्त	अभिव्यक्ति	जिस प्रकार से मिट्टी में गंध (अव्यक्त) की अभिव्यक्ति जल संयोग से होती है उसीतरह सहृदयों के हृदय में संस्काररूप से स्थित स्थायीभाव व्यंजनावृत्ति द्वारा उपस्थित विभावादि के योग से रस रूप में अभिव्यक्त होते हैं।	व्यंग्यव्यंजक भाव	अभिव्यक्ति

इस प्रकार रस उस दशा को कहते हैं जब विभावा अनुभाव एवं संचारीभावों के द्वारा सहृदयों के हृदय में परम्परागत स्थित स्थाईभाव परिपक्व होकर उद्बुद्ध होते हैं, जिससे रजोगुण एवं तमोगुण का ~~ग्रहण~~ नहीं जाता है एवं सहृदय को अपने तक का भान नहीं होता।

रस संख्या :—

भरत ने प्रमुख रूप से आठ रस माने हैं —[1]

(1) श्रृंगार, (2) हास्य (3) करुण (4) रौद्र (5) वीर (7) भयानक (7) वीभत्स (8) उद्भुत।

1- भरत, नाट्यशास्त्र, 6/15

कुछ आचार्यों ने शान्तरस को भी माना है,[1] किन्तु भरत तथा धनंजय ने नाटक में शान्तरस को अस्वीकारा है।[2] रूद्रट ने 'प्रेयान' नामक दशवाँ रस भी माना है।[3] भोज का रस-विवेचन रस सिद्धान्त के विकास में किसी भी अन्य रस की सत्ता को स्वीकार न कर मात्र श्रृंगार को ही रस की संज्ञा देता है। भक्ति रस का संकेत दण्डी ने किया था। यह प्रेयोलंकार पर आधारित है। विश्वनाथ आदि ने वात्सल्य रस को भी स्वीकार किया है।

शान्त रस में भक्ति रस के अन्तर्भाव का प्रयास किया गया किन्तु वैष्णव आचार्यों ने उसे अमान्य ठहराया। मधुसूदन सरस्वती दोनों में अन्तर ठहराते हुए कहते हैं कि दोनों में अनुराग एवं वैराग्य का भेद है। "व्यापकता और उत्कृष्टता की दृष्टि से शान्तर रस से भक्ति रस बढ़ा चढ़ा है। यह भक्ति रस सामान्य चित्तवृत्ति से भिन्न होने के कारण स्वतंत्र रूप से व्यक्त होता है। भक्ति और शान्त दोनों भिन्न रस हैं और अपने आप में पूर्ण हैं। भक्ति रस का शान्त रस[4] में अन्तर्भाव नहीं हो सकता।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि वास्तव में रस -- श्रृंगार, हास्य, वीर; भयानक, करूण, वीभत्स, अद्भुत, रौद्र, शान्त, आदि नौ रसों के अतिरिक्त भक्ति रस एवं वात्सल्य रस भी स्वीकार करना आवश्यक है, क्योंकि इनके भी अपने अलग स्थायीभाव आलम्बन, उद्दीपन, संचारीभाव, अनुभाव तथा उपभेद आदि हैं। वात्सल्य रस के श्रृंगार रस की तरह वियोग वात्सल्य एवं संयोग वात्सल्य दो विभाग होते हैं। अतः संक्षेप में ग्यारह रसों के विषय में निम्न प्रकार विवेचन प्रस्तुत किया जा सकता है। नाट्यशास्त्र में कुछ रसों के देवता[5] एवं रसवर्णों[6] के विषय में भी मिलता है, इसलिए इनका भी विवरण दिया गया है।

प्रमुख रस एवं उनके अंग

(1) श्रृंगार :— इसके वियोग श्रृंगार एवं संयोग श्रृंगार दो भेद होते हैं।

देवता — विष्णु एवं रसवर्ण श्याम है।

(क) संयोग श्रृंगार — (अ) स्थायीभाव — रति

(ब) आश्रय एवं आलंबन— नायक-नायिका।

1- मम्मट, काव्यप्रकाश, च0 उ0 सू0 सं0 45-47 2- धनंजय, दशरूपक, 4/35

3- रूद्रट-काव्यालंकार, 12/3 4- काव्यदर्पण, पृ0 283 5- नाट्यशास्त्र, 6/44-45

6- नाट्यशास्त्र, 6/42-43

(स) उद्दीपन -- बसन्त, चन्द्रमा, एकान्त, कुंज, उद्यान, चित्रपट आवलोकन आदि।

(द) अनुभाव - नायक नायिका का परस्पर दर्शन, भ्रूभंग कटाक्ष आदि।

संचारी भाव - उन्माद व्रीड़ा हर्ष आदि।

(ख) विप्रलम्भ श्रृंगार

भेद -- पूर्वराग, मान, प्रवास और करुण।

(अ) स्थायीभाव -- रति

(ब) आश्रय एवं आलम्बन - नायक-नायिका

(स) उद्दीपन - बसन्त, उद्यान, कोकिल, सूनी शय्या आदि

(द) अनुभाव -- अश्रुविमोचन, वैवर्ण।

(य) संचारीभाव - उग्रता, मरण।

विप्रलम्भ श्रृंगार में दस काम दशाएँ भी सम्मिलित की जाती हैं --

अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, मृत्यु आदि।

(2) हास्य रस :--

देवता	प्रमथ
वर्ण	सित
स्थायीभाव	हास्य
आलम्बन	भद्दा वेश, भद्दा चित्र आदि
उद्दीपन	विकृत चेष्टा आदि
अनुभाव	हँसना, मुँह खोलना आदि
संचारीभाव	हर्ष निद्रा आदि

भेद -- स्मित, हसित, विहसित, अवहसित, अपहसित, अतिहसित।

(3) वीर रस :-

देवता	महेन्द्र
वर्ण	गौर
स्थायीभाव	उत्साह
आलम्बन	शत्रु प्रतिद्वन्द्वी आदि।

उद्दीपन	विपक्षी का उत्साह प्रदर्शन, दुखावस्था, ओजपूर्ण वचन
अनुभाव	रोमांच, गर्वयुक्तवाणी, आदर सत्कार
संचारीभाव	उत्कंठा, हर्ष, गर्व, धृति, असूया आदि

भेद– युद्ध वीर, कर्मवीर, दानवीर, धर्मवीर।

(4) भयानक रस :–

देवता	कालदेवता
वर्ण	कृष्ण
स्थायीभाव	भय
आलम्बन	अंधेरा, व्याघ्र आदि हिंस्र पशु, भूतप्रेत की शंका आदि
उद्दीपन	हिंसक जीवों की चेष्टा, निर्जनता, असहाय अवस्था
अनुभाव	कम्प, स्वरभंग, ही ही करना, वैवर्ण्य, रोमांच आदि
संचारीभाव	आवेग, चिन्ता, जुगुप्सा, ग्लानि आदि

(5) करुण रस :–

देवता	यम अथवा वरुण।
वर्ण	कपोत
स्थायीभाव	शोक
आलम्बन	नष्ट वस्तु, मृत व्यक्ति, बन्धु विनाश, प्रिय वियोग, अनिष्टप्राप्ति
उद्दीपन	प्रिय वस्तु स्मरण, मृत व्यक्ति सम्बन्धित घटनाएँ, दाहकर्म, चित्र और घटनाएँ
अनुभाव	भाग्यनिंदा, पछाड़खाना, अश्रुपात, रोना, छातीपीटना उच्छ्वास
संचारी भाव	मोह, श्रम, व्याधि, चिन्ता आदि।

(6) वीभत्स रस :–

देवता	महाकाल
वर्ण	बैंगनी
आलम्बन	मलमूत्र, सड़ामांस, रुधिर आदि घृणा उत्पन्न करने वाली चीजें।
उद्दीपन	कीड़ों का बिलबिलाना, जलना, दुर्गन्ध सड़ना, गिद्धों का मांस नोचना।

अनुभाव	साँस रोकना, मुख मोड़ना, थू-थू करना।
संचारी भाव	मोह, व्याधि, ग्लानि, चिन्ता, मरण, आवेग आदि

(7) अद्भुत रस :—

देवता	ब्रह्मा
वर्ण	पीत या स्वर्णिम
स्थायीभाव	विस्मय
आलम्बन	अलौकिक घटना, विस्मयपूर्ण वस्तु
उद्दीपन	किसीवस्तु की विचित्रता तथा विशेषता
अनुभाव	रोमांच, स्तम्भ, स्वेद, मुँह फटा रहना, दाँतो तले उँगली दबाना।
संचारीभाव	उत्फुल्लता, जड़ता, दैन्य, आवेग, शंका, घबराहट, हर्ष

(8) रौद्र रस :—

देवता	रूद्र
वर्ण	रक्त
स्थायीभाव	क्रोध
आलम्बन	विरोधी, शत्रु
उद्दीपन	अपमान, अपकार कठोर वचन आदि
अनुभाव	मुखमण्डल की लालिमा, आँखे तरेरना, होठ चबाना, ललकारना, गर्जन-तर्जन, हीनतावाचक शब्दों का उच्चारण।
संचारीभाव	उग्रता, अमर्ष, आवेग, स्मृति, श्रम, असूया, उद्वेग आदि।

(9) शान्त रस :—

देवता	परमेश्वर बुद्ध देव आदि
वर्ण	श्वेत
स्थायीभाव	निर्वेद
आलम्बन	परमतत्व का ज्ञान, जगत की असारता।
उद्दीपन	आध्यात्मिक चिन्तन, शास्त्राध्ययन, देवकथाओं का श्रवण, सत्संग आदि

अनुभाव	वैराग्य, संसार की प्रति उदासीनता आदि।
संचारी भाव	हर्ष, स्मृति, धृति, मति आदि।

(10)भक्तिरस :–

देवता	इष्टदेव
वर्ण	निर्मल श्वेत
स्थायीभाव	इष्टदेव के प्रति अनुराग अथवा प्रेम
आलम्बन	अवतार आदि
उद्दीपन	भक्तों का सत्संग, इष्टदेव का गुणगान, श्रवण, रामावतारी या कृष्णावतारी के अद्भुत कार्य।
अनुभाव	गद्गद् वचन, रोमांच, प्रफुल्लित होना, स्वरावरोध, इष्टदेव के प्रेम में अनुरक्त होकर भावविह्वल होना।

(11)वात्सल्य रस :--

देवता	जगदम्बा
वर्ण	पद्मगर्भ
स्थायीभाव	माता पिता गुरू जनों का छोटों के प्रति प्रेम कार्पण्य
आलम्बन	पुत्र पुत्री, शिष्य, छोटा भाई आदि।
उद्दीपन	बालचेष्टाएँ, खेलकूद, पढ़ना-लिखना तथा अनेकों बालकृत्य
संचारीभाव	अनिष्ट की आशंका, हर्ष, गर्व, आवेग आदि

भेद --(1)संयोग वात्सल्य (2) वियोग वात्सल्य

रस के निकृष्टरूप

प्रमुखरूप से छ रूप मिलते हैं —

(1)रसाभास(2)भावाभास(3)भावशान्ति(4)भावोदय(5)भावसन्धि(6)भाव सबलता।

रसोपकरण

(1)भाव :– भावो मनसोविकारः' भाव मन के विकार को कहते हैं। आचार्य भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में प्रश्नवाचक शब्दों में भाव की इस प्रकार से परिभाषा की है कि

"इन्हें भाव क्यों कहते हैं? स्थिति होने के कारण इन्हें भाव कहते हैं। अथवा भावना करने वाले होने के कारण? इसका उत्तर देते हुए उन्होंने कहा है कि वाग्, अर्थ एवं सत्य सेयुक्त काव्यार्थों को भावित करने के कारण इन्हें भाव कहा जाता है।" [1]

वास्तव में भाव उसे कहेंगे जो कवि या लेखक के हृदयस्थ भाव को वचनों के माध्यम से, आंगिक चेष्टाओं, मुखराग, या कुशल अभिनय द्वारा व्यक्त हो।

भावों के अंग :-- भाव के प्रमुख रूप से 4 अंग होते हैं --

(1) विभाव (2) अनुभाव (3) स्थायीभाव (4) संचारी या व्यभिचारी भाव

(1) विभाव

यह रति, हास, शोक, आदि स्थायीभावों के उद्बोधक होते हैं अथवा इनकी उत्पत्ति के कारण होते हैं। [2] ये प्रमुखरूप सेदो प्रकार के होते हैं --

(1) आलम्बन (2) उद्दीपन।

अनुभाव --

भाव में अनु उपसर्ग जोड़ने पर अनुभाव बनता है यहाँ अनु का अर्थ पीछे से है अतः जो विभाव के बाद उत्पन्न हो उन्हें अनुभाव कहते हैं। [3]

'साहित्य दर्पण' में अनुभाव की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है --

"आलम्बन, उद्दीपन आदि कारणों से उद्भूत भावों का अनुभव, वाणी, अंग संचालन आदि जिन क्रियाओं द्वारा होता है उन व्यापारों को अनुभाव की संज्ञा दी गयी है।" [4]

अनुभावों के प्रकार :-

प्रत्येक रस के अपने अलग अलग अनुभाव होते हैं जिससे इनकी संख्या अनिश्चित है इन्हें प्रमुख रूप से चार भागों में बाँटा जा सकता है --कायिक, मानसिक, आहार्य, और वाचिक (सात्विक)। सात्विक अनुभावों को पुनः नौ उपविभाग में बाँटते हैं-- स्तम्भ,

---

1-भरत, नाट्यशास्त्र, अध्याय7 पृ0 404

2-विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, 3/29 3-- भरत-नाट्यशास्त्र 7/5

4-उद्बुद्धकारणैः स्वैः स्वैर्बहिर्भावं प्रकाशयन्।

लोके यः कार्यरूपोऽसौ अनुभावः काव्यनाट्ययोः ॥ साहित्यदर्पण, तृ0 प0 पृ0 132-133

श्वेत, रोमांच, स्वरभंग, वेपथु, वैवर्ण्य, अश्रु, प्रलय एवं जृम्भा हैं।

स्थायीभाव :— स्थायीभाव उस भाव को कहते हैं जिसे विरोधी अथवा अविरोधी भाव प्रभावित कर सकें एवं दूसरे भावों के उद्बुद्ध होने पर उन्हें आत्मसात् करके प्रकट हो।

स्थायीभावों के प्रकार :—

इनकी संख्या आचार्यों ने कुछ इस प्रकार निश्चित की है — रति[1], हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, जुगुप्सा, एवं विस्मय। कुछ विद्वानों ने निर्वेद[2] नाम का भाव जो शान्त रस का मूल समझा जाता है, स्थायीभावों की कोटि में रखा है इस समय इष्ट देवता विषयक रति को भक्ति एवं पुत्र-पुत्री विषयक रति को वात्सल्य की संज्ञा प्रदान की जातीहै।

संचारीभाव :— जो भाव स्थायीभाव की पुष्टि के लिए तत्पर एवं अभिमुख[3] रहते हैं और उसकी प्रधानता उद्बुद्ध एवं तिरोहित हुआ करते हैं उन्हें संचारी भाव कहते हैं। इनकी संख्या 33 बतलायी गयी है — निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, मद, श्रम, आलस्य, दैन्य, चिन्ता, मोह, स्मृति, धृति, व्रीड़ा, चपलता, आवेग, हर्ष, जड़ता, गर्व, विषाद, औत्सुक्य, निद्रा, अपस्मार, स्वप्न, विबोध, अमर्ष, अवहित्था, उग्रता, मति, व्याधि, उन्माद, मरण, त्रास, वितर्क।

1- रतिहासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा।
जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायिभावाः प्रकीर्तिताः ॥
— काव्यप्रकाश, चतुर्थ उल्लास, सू0 45

2- निर्वेदः स्थायिभावोऽस्ति शान्तोऽपि नवमो रसः ।
— काव्यप्रकाश चतुर्थ उल्लास, सू0 47

3- विशेषादाभिमुख्येन चरणाद् व्यभिचारिणः ।
स्थायिन्युन्मग्ननिर्मग्नास्त्रयस्त्रिंशच्च तद्भिदाः ॥
— साहित्यदर्पण, तृ0प0 140

रस सम्बन्धी पाश्चात्य विचार :--

रस सिद्धान्त मूल रूप से भारतीय आचार्यों की ही देन है जिससे इसके पाश्चात्य रूप की चर्चा अस्वाभाविक प्रतीत होती है किन्तु पाश्चात्य सौन्दर्य विवेचकों ने 'भाव सिद्धान्त' की कल्पना की है जिसे पाश्चात्य रस सिद्धान्त की संज्ञा प्रदान की जा सकती है। पाश्चात्य भाव सिद्धान्त को प्रमुखरूप से पाँच विभागों में विभक्त किया जा सकता है --[1] (1) भावोद्दीप्तिवाद (2) भावालम्बनवाद (3) भावानुभववाद (4) भावाभिव्यक्तिवाद (5) भाव प्रेषणवाद।

भावोद्दीप्तिवाद :-

डेकार्टेज, एडिसन एवं ह्यूम भावालम्बनवाद के ब्रसन, वर्क, लक्सु, हरमन, लाल्ज, सैंतायन भावाभिव्यक्तिवाद के, कालिंगवुड एवं कैरट्ट भावानुभववाद के तथा भावप्रेषणवाद के टालस्टाय एवं आई०ए०रिचर्ड्स आदि प्रमुख समर्थक हैं।[2] इस प्रकार जहाँ भारतीय विद्वान् भावालम्बन, भावानुभव, भावोद्दीपन, भावप्रेषण आदि सभी प्रक्रियाओं को समन्वित रूप से स्वीकार करते हैं वहीं पाश्चात्य विद्वान उसे अलग-अलग स्वतंत्ररूप से प्रस्तुत करते हैं। श्रीमती लैंगर ने स्वीकार किया है कि जहाँ पाश्चात्य विचारक रंगमंच के अन्तर्गत संवेगों के विभिन्न पक्षों में चपला(कनफ्यूजन) कर देते हैं, हिन्दी आलोचक उनमें पारस्परिक संबंधों को कहीं अधिक स्पष्टता से समझते हैं।[3] किन्तु उनकी धारणा है कि भारतीय आचार्यों ने रस सम्बन्धी अवधारणा पर अतिमानवीयता का रहस्यात्मक आवरण डाल दिया क्योंकि प्राचीन विद्वान् प्रतीक की शक्ति के साक्षात्कार से इतने हतप्रभ एवं विस्मित हो गये कि वे उसके वास्तविक रूप को अच्छी तरह से न देख सके।[4] इस प्रकार से पाश्चात्य भावसिद्धान्त बहुत कुछ भारतीय रस सम्प्रदाय से मिलता है।

1- काव्यशास्त्र, सम्पादक- हजारी प्रसाद द्विवेदी, पृ0 523

2- काव्यशास्त्र, पृ0 523-525 (लेखक गणपतिचन्द्र गुप्त)

3- Some of the Hindu Critics, although they subordinate and even duplicate dramatic art in favour of the Litrary elements it involves, understand much better than their western colleagues the various aspects of emotion in theatre, which ourt writers so benefully confuse. The feelings experienced by the actor, those experienced by the spectators, those presented as undergone by the characters in the play, and finally the feeling that shines -

P.T.O.

through the play itself - the vital feeling of the piece. This last they call rasa; it is a state of emotional knowledge, which comes only to those who have long studied and contemplated poetry. It is supposed to be of supernatural origin, because it is not like mundane feeling and emotion, but is detached, more of the spirit than of the viscera, pure and uplifting.

Feeling and Form P.323

4- Rasa is indeed, that comprehension of the directly experienced or 'inward' life that all art conveys. The supernatural status attributed to its perception shows the mystification that beset the ancient theorists when they were confronted with the power of a symbol ~~wmxm~~ which they did not recognize a such.

Feeling and Form P.323

अलंकार सम्प्रदाय

इस मत के प्रवर्तक भामह हैं तथा पोषक भामह टीकाकार उद्भट माने जा सकते हैं। इस मत के अनुयायी दण्डी, रुद्रट तथा प्रतिहारेन्दु राज हैं। इस मत के मानने वाले इसे काव्यकी आत्मा स्वीकारते हैं और कहते हैं कि जो व्यक्ति ऐसा नहीं मानता वह अग्नि में उष्णता को नहीं मानता है।[1]

'अलङ्क्रियतेऽनेनेत्य अलंकारः' अथवा 'अलंकरोति इति अलंकारः' अर्थात् अलंकार उस तत्व को कहा जायेगा जिसके द्वारा कवि अपनी रचना को अलंकृत करता है दूसरे शब्दों में उक्ति के चमत्कार को अलंकार कहा जा सकता है।

स्वरूप :—

भामह ने अलंकार[2] के स्वरूप चयन के प्रसंग में वक्रोक्ति को अलंकार का प्राणत्व स्वीकारा है। वक्रोक्ति द्वारा अलंकार की समस्त विधायें विभाषित हो सकती हैं। दण्डी ने माना है कि इस तथ्य का सम्पूर्ण परिचय सम्भव नहीं है क्योंकि वाणी को अलंकृत करने वाले इस तथ्य के अनेकानेक भेद हो सकते हैं। यह काव्य शोभाधायक तत्व है।[3] इन्होंने स्वभावोक्ति को भी माना है जबकि भामह ने स्वाभावोक्ति को नहीं स्वीकार किया। इन्होंने बतलाया कि स्वभावोक्ति ही आद्य अलंकार है? क्योंकि यह जाति, गुण, द्रव्य, एवं क्रिया के स्वभाव को आकार प्रदान करती है। वामन ने काव्यगत सौन्दर्य को अलंकृति की संज्ञा प्रदान की और गुणात्मा रीति को काव्य की आत्मा स्वीकार की। इस तरह से इन्होंने अलंकारों के अर्थ को विस्तृत कर दिया।[4] रुद्रट का आग्रह अलंकारों के प्रति अवश्य था किन्तु वे रस एवं ध्वनि को अधिक महत्व देते हैं। आचार्यआनन्दवर्धन के अनुसार —'रसोपकारक[5] के रूप में अपृथक यत्न से लाये हुए अलंकार ही काव्य की शोभा बढ़ाते हैं। रस विविक्षा विहीन अलंकार को उन्होंने चित्र कहा तथा इसे काव्य रचना प्रारम्भ करने वालों के अभ्यास मात्र के लिए सहयोगी बतलाया।

1- जयदेव, चन्द्रालोक, 1/8 2- भामह, काव्यालंकार, 2/85

3-दण्डी, काव्यादर्श, 2/13 4- वामन, काव्यालंकार, सूत्र वृत्ति, 1/1-3

5- आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, 12/16

वैसे अलंकार को काव्य का सर्व शोभादायक तत्व पद प्रदान किया गया किन्तु ध्वनि के आविष्कार से इसकी छवि मन्द पड़ गयी है यह अब केवल वाह्य शोभाकर अनित्य धर्म बनकर स्थिर हो गया परन्तु संख्या में दिनोदिन वृद्धि हुई है। भरत ने केवल चार अलंकार — उपमा, रूपक, दीपक और यमक की स्वीकृति दी थी।[1] भामह का 'काव्यालंकार कदाचित् सर्व प्रथम ग्रन्थ है जिसमें अलंकार का क्रमबद्ध एवं वैज्ञानिक विवेचन हुआ है। इन्होंने स्वयं विनिश्चित अलंकारों की संख्या 39 कर दी।[2] दण्डी तक पहुँचते पहुँचते यह काव्य शोभाकर धर्म मात्र रह गया और संख्या 35 हो गयी।[3] उद्भट ने अलंकारों को छः वर्गों में विभक्त कर 40 प्रभेदों को स्वीकार किया। यह वर्गीकरण वैज्ञानिक नहीं था किन्तु उनका प्रयास स्तुत्य था। अलंकार रूप सौन्दर्य के अर्थ में वामन की कृति में पुनः अलंकार शब्द की प्रतिष्ठा बढ़ी।[4] किन्तु 33 विभेद ही स्वीकार किये गये। रुद्रट के समय वास्तव औपम्य, श्लेष की दृष्टि से चार विभागों में बाँटा गया और संख्या बढ़ाकर 52 कर दी गयी। उक्त वर्गीकरण निश्चित रूप से वैज्ञानिक था परन्तु रस और ध्वनि की प्रतिष्ठा का प्रश्न आगे बढ़ रहा है अतः नवीन आलोक में अलंकारों की पृथा मन्द होने लगी। भोज राज ने 'सरस्वती कण्ठाभरण' में इनकी संख्या 67 कर दी और अलंकार सर्वस्वकार ने उन्हें बढ़कर 81 तक पहुँचा दिया तथा सादृश्य गर्भ, विरोध, श्रृंखला, न्याय एवं गूढार्थ वर्ग भी प्रस्तुत किये। एकावलीकार, विद्यानाथ द्वारा पुनः वस्तुप्रतीत, औपम्यप्रतीत, रसभाव — प्रतीत एवं अस्फुट प्रतीत के रूप में अलंकारों को पुनः वर्गीकृत किये किन्तु रुय्यक का ही वर्गीकरण वैज्ञानिक समझा गया विद्यानाथ ने प्रतापरुद्रीय में उनके प्रमुख एवं अवान्तर विभेद प्रस्तुत करके सूक्ष्म के साधर्म्य अध्यवसाय, विरोध, वाक्यन्याय, लोक व्यवहार, तर्कन्याय, श्रृंखलामूल अपन्हव एवं विशेषणवैचित्र्यमूलक नौ प्रकार बतलाया, जयदेव ने 100 विश्वनाथ 88 एवं अप्पय दीक्षित के कुवलयानन्द ने उसके 125 विभेदों को स्वीकृति देकर पुनः उसका नाम बढ़ाया। पण्डितराज जगन्नाथ तक पहुँचते पहुँचते संख्या में पुनः ह्रास हुआ और

1-भरत, नाट्यशास्त्र, 16/43-47

2-भामह-काव्यालंकार, 2/5-38

3-दण्डी काव्यादर्श, द्वितीय परिच्छेद,

4- वामन, काव्यालंकार, सू0वृ0 1/1-2

वह 7। तक आ गयी इस प्रकार समय-समय पर कभी विषम परिस्थितियों से एवं कभी बहुत ही तीव्र गति से इसका विकास सम्पन्न हुआ।

अलंकार्य एवं अलंकार

अलंकारों का महत्व ध्वनि के पूर्व काफी बढ़ा-चढ़ा था किन्तु ध्वन्युत्तर समय में वैसा नहीं रहा क्योंकि अलंकार्य एवं अलंकार की अलग-अलग प्रतीति हो जाने से अलंकार अलंकार्य नहीं बन सकता जिससे ही आनन्दवर्धन तथा मम्मट द्वारा प्रतिपादित दो व्यवस्थाओं ने सभी को प्रभावित किया उनके अनुसार अलंकारों का कार्य मात्र काव्यात्मा रस ध्वनि को अलंकृत करना है अतः उनका कार्य कुण्डल कटकादि की भाँति वाह्य शोभाधायक तक ही सीमित है।[1] रस की अपेक्षा के अनुसार जो अलंकार बिना किसी प्रयत्न के निवर्तित होते हैं उनकी स्थिति श्लाघनीय होती है।[2] एवं इस प्रकार का अलंकार ही है। अलंकार्य तो ध्वनि है रसत्व तथा अलंकार उसके शोभाधायक तत्व हैं यही उसकी वास्तविक स्थिति कही जा सकती है।

पाश्चात्य मत :-

पाश्चात्य विद्वान भी अलंकार के महत्व को स्वीकार करते हैं। पाश्चात्य आचार्यों का मत है कि अलंकार विभिन्न कार्य करते हैं- किसी तथ्य के स्पष्टीकरण के लिए, व्याख्या के लिए, शक्ति प्रदान करने के लिए, निर्जीव वस्तुओं को सजीव करने के लिए, स्मृतियाँ जागृत करने के लिए और अलंकृत करने के लिए आदि।[3] अरस्तू का मत है कि एक कवि की अलंकार सम्बन्धी मुख्य शक्ति इसमें निहित है कि वह कहाँ तक असमानताओं में समानताएँ खोज सकता है।[4] वायल्यू एवं ड्रायडन के आधार पर अलंकार भाषा के सुन्दर आभूषण हैं।[5] वर्डसवर्थ एवं कूलरिड्ज ने भी सौन्दर्य सम्बन्धी व्याख्या को स्वीकार किया है।[6] आधुनिक अंग्रेजी एवं अमेरिकन आलोचक अरस्तू के सिद्धान्तों को मान्यता देते

1- आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, 2/1

2- वही, 2/16

3- Dictionary of world literature - Edited by J.T. Shipley P.159

4- Ibid P.159

5- Ibid P.159

6- Wordsworth and Colridge had some conception of an asthetic use of metapher but they also relegated figrative language to the fancy.

Dictionary of world literature-Edited by J.T.Shipley P. 159

7- Ibid-P.159

हुए अलंकारों को सौन्दर्य सम्बन्धी वस्तु के अतिरिक्त विचारोत्तेजक एवं स्मृतियों को उत्तेजित करने वाला बताया है।[1]

भारतीय अलंकारों की तरह यहाँ भी विविध प्रकार के अलंकार मिलते हैं, जिनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं—

(1) सिमली
(2) मेटाफर
(3) पर्सनी फिकेशन
(4) एपास्ट्राफी
(5) साइनिकडाक
(6) मेटोनिमी
(7) आक्सीमोरान
(8) लिटोटस
(9) हायपरबोल
(10) ट्रान्सफर्ड एपीथेट
(11) आनोमेटो पोइया
(12) एलीट्रेशन आदि

इस तरह स्पष्ट है कि अलंकारों का जो स्थान भारतीय काव्यशास्त्र में है, वही पाश्चात्य काव्यशास्त्र में भी पाया जाता है।

रीति

'रीतिरात्मा काव्यस्य' इस उक्ति को बलपूर्वक प्रतिपादित करने वाले आचार्य वामन ही उक्त सम्प्रदाय के प्रतिपादक हैं। रीति का प्राचीन नाम मार्ग या पन्था है एवं इस समय भी विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रकार की अभिख्यायें चलती हैं। यथा — प्रणाली, मार्ग, पथ, पद्धति और शैली आदि। पदों की संघटना का नाम रीति है।[2] पदों में वैशिष्ट्य गुणों के कारण ही उत्पन्न होता है, गुणों के अभाव में पद एक सामान्य रूप में ही स्थित रहते हैं। अतः रीति गुणों के ऊपर अवलम्बित रहती है — 'विशिष्टा पद रचना रीतिः विशेषो गुणात्मा।' वैसे शैली विशेष का प्रयोग मैं अपने अभीष्ट अर्थ प्रकाशन के लिए मानव व्यवहार क्षेत्र में करता है, किन्तु काव्य जगत में की गयी संघटना में व्यवहार से विलक्षणता मिलती है जिसके बल पर ही अलौकिक आनन्द की

1- Dictionary of World literature - Edited by J.T. Shipley P. 159

3- वामन — काव्यालंकारसूत्रवृत्ति, 1/1-3

उपलब्धि में काव्य सहायक हो पाता है। यह काव्यगत विलक्षणता रीतियों संघटना के अनुकूल गुणों[1] की स्थिति पर आश्रित होती है, नहीं तो अपेक्षित चमत्कार एवं विलक्षण्य सम्भव नहीं।

रीति सम्प्रदाय का विकास एवं प्रमुख रीतियाँ

भामह एवं दण्डी ने रीतियों के दो स्वरूपों को मान्यता दी -गौणी एवं वैदर्भी। वामन ने इस संख्या में पांचाली रीति को बढ़ा दिया।[2] आगे चलकर रूद्रट ने लाटी रीति की कल्पना की।[3] इस तरह से चार हो गयीं। आचार्य कुन्तक के समय तक इसका सम्बन्ध गुण एवं कवि स्वभाव से सम्पादित हो गया और मम्मट तथा उनके विवेचन में समास, गुण, अलंकार एवं वैचित्र्य को आधार माना गया। मम्मट तक पहुँचते - पहुँचते इसके मूलाधारों में वक्तृवाच्य, विषय, रसानुगुणता भी सम्मिलित हो गये। प्रमुख रीतियां निम्नलिखित हैं --

(1) वैदर्भी :--

विदर्भादि प्रदेश में पल्लवित होने वाली इस रीति को दण्डी एवं वामन मानते हैं कि श्लेष, समाधि, सौकुमार्य, माधुर्य, अर्थव्यक्ति, ओज, प्रसाद, कान्ति एवं समता में दस गुण विद्यमान होना अनिवार्य हैं। वामन मानते हैं कि दोष रहित, सम्पूर्ण गुणों से युक्त वीणा की भाँति स्वर सौभाग्य संश्लिष्ट रचना ही वैदर्भी कहलाने योग्य है। यह पद संघटना विशेषतः श्रृंगार, करूण एवं प्रेयस आदि रसों के लिए अनुकूल है।

(2) गौणी :--

ओजगुण प्रकाशक वर्णों की संघटना से अस्तित्व में आने वाली उद्भट रचना को गौणी से अभिहित किया गया। सामासिक पदों की बाहुल्य इसमें पाया जाता है। रौद्र, वीर, एवं भयानक आदि रसों के लिए यह महत्वपूर्ण है। इसमें चित्त संकोचन छोड़कर फैलता है।[4]

---

1 -आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, 3/6

2 -वामन, काव्यालंकार, सूत्रवृत्ति, 1/2-9

3 -रूद्रट-काव्यालंकार, 2/4   4- विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, 9/3

(3) पांचाली :-

यह रीति गौणी एवं वैदर्भी का मध्यम मार्ग है जहाँ न हृदय दीप्त होता है और न द्रवित ही। इसमें वह सरल प्रसन्न एवं प्रसाद गुण युक्त होता है। इसमें सुकुमार वर्णों का प्रयोग होता है एवं यह शैली माधुर्य तथा सुकुमार संयुक्त होती है।[1]

(4) लाटी :-[2] इसमें रीति की कोई अलग विशेषता नहीं मिलती। यह मध्यम समासवाली एवं तीनों रीतियों की मध्यवर्तिनी होती है।

पाश्चात्य मान्यताएँ :-

रीति की गरिमा पाश्चात्य विद्वानों ने भी स्वीकार किया है, जिनमें फ्लाउबे, वाल्टर रेले तथा वाल्टर पेटर आदि प्रमुख हैं। पेटर महोदय के अनुसार जैसे जीवों में रक्त शरीर का पोषक एवं वाह्य स्वरूप निर्णायक तत्व है उसी प्रकार रीति भी काव्य की जीवनधायक तत्व है। वह किसी वस्तु की समग्र अन्तरंगता तथा रंगीनता के साथ अभिव्यक्ति का एक विशिष्ट तथा परिपूर्ण प्रकार है।[3]

वाल्टर रेले ने अपने रीति विषयक निबन्ध में स्टाइल शब्द पर प्रकाश डाला है। स्टाइल शब्द की व्युत्पत्ति स्टीलस या स्टाइलूस से हुई है जिसका अर्थ है लौह लेखनी या लोहे की कलम। उनके आधार पर लेखनी चाहे मोम पर या कागज पर कुरेदती रहे, मानव प्रकृति में जो कुछ भावाभिव्यंजक होता है अथवा जो कुछ तल स्पर्शी है वह इन सबकी प्रतीक होती है। लेखक के व्यक्तित्व की परिचायक लेखनी ही होती है। उसकी उसकी आवाज सशक्त हो सकती है, हस्त चेष्टाओं में भाव अभिव्यक्ति की क्षमता विद्यमान हो सकती है, किन्तु ये दोनों (शब्द तथा चेष्टा) परिवर्तनशील हैं। व्यक्तित्व की स्वामी

1- विश्वनाथ- साहित्यदर्पण, 9/4

2- वही, 9/5

3- Style - a certain absolute and unique manner of expressing a thing in all its intensity and colour, as in living creatures the blood, nourishing the body determines its very contour and external aspect, just so to his mind the matter, the basis in a work of art imposed necessarily the unique, the expression, the measure, the rhythm the form in all its characteristics.

Pater - Appreciations Style P.37

परिचायक लेखनी है। इसीलिए स्टाइल का काव्य में विशेष महत्व है।[1] इस तरह भारतीय विद्वानों की तरह पाश्चात्य विद्वान भी रीति को अत्यधिक महत्व प्रदान करते हैं।

ध्वनि सम्प्रदाय

ध्वनि :— सामान्य व्यवहार में ध्वनि का तात्पर्य श्रवणेन्द्रिय गोचर नाद से लिया जाता है किन्तु काव्यांग ध्वनि[2] तब होती है जब वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ में अधिक चमत्कार प्रतिलक्षित हो इस अर्थ के 5 रूप हो सकते हैं—

(1)'ध्वनति यः स व्यंजकः शब्द ध्वनिः' जो ध्वनित करे या कराये अर्थात् 'वाचक लक्षक एवं व्यंजक तीनों प्रकार के शब्द जब किसी व्यंग्य अर्थके व्यंजक होते हैं तो ध्वनि कहे जाते हैं।[3] इसका तात्पर्य शब्द से है।

(2)ध्वनित ध्वनयति वा यः सः व्यंजको अर्थः ध्वनिः।' वह व्यंजक ध्वनि है जो ध्वनित करे या कराये इसका तत्पर्य व्यंजक अर्थ से है।

(3)ध्वन्यते इति ध्वनिः' जो ध्वनित हो उसे ध्वनि कहते हैं यहाँ रस अलंकार एवं वस्तु तीनों ध्वनि के अन्तर्गत आते हैं। इनका तात्पर्य वस्तु, रस एवं अलंकार से है।

(4)ध्वन्नायते अस्मिनिति ध्वनिः' उस काव्य को ध्वनि कहते हैं जिसमें (रसालंकारादि) ध्वनित हों। इसका अर्थ व्यंग्य प्रधान काव्य अथवा ध्वनि काव्य से है।

ध्वनि को परिभाषित करते हुए ध्वन्यालोक में कहा गया है कि उस विशिष्ट काव्य को विद्वानों ने ध्वनि कहा है जब शब्द अपने को या अर्थ अपने को गुणीभूत करके

1- The pen, scratching on wax or paper, has become the symbol of all that is expressive, all that is intimate, in human nature; not only arms and arts, but man himself has yielded to it . . . . . . other gesture shift and change and flit: this is the ultimate and enduring revelation of personality.

Walter Raleigh - Style P.2

2- मम्मट, काव्यप्रकाश, 1/4

3- रामदहिन मिश्र, काव्यालोक, पृ0 200

प्रतीयमान को अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं।[1] प्रतीयमान को स्पष्ट करते हुए ध्वनि प्रस्थापक आनन्दवर्धन ने बताया कि जिस प्रकार अंगनाओं में सौन्दर्य के अतिरिक्त लावण्य होता है उसी प्रकार शब्द के वाच्यार्थ के अतिरिक्त प्रतीयमान अर्थ भी पाया जाता है जो मात्र बोद्धा द्वारा गृहणीय है।[2] शास्त्रों में बोद्धा को सहृदय कहा गया है तथा सहृदय को अभिनव गुप्त ने भगवती भारती कास्वरूप तक उद्घोषित किया।[3] इस प्रकार चमत्कार वादी व्यंग्यार्थ को ही ध्वनि की अभिधा से विभूषित किया गया। ध्वनि के चमत्कार को पाश्चात्य आचार्य भी स्वीकार करते हैं। महाकवि ड्रायडन की यह युक्ति दृष्टव्य है। कानों को जो सुनायी पड़ता है उससे अधिक काव्य में अपेक्षित अर्थ है।[4]

काव्य के भेद

ध्वनि की दृष्टि से काव्य के तीन प्रभेद किए जा सकते हैं। इसके आधार पर काव्य स्वरूप[5] का व्यवर्तक तत्व व्यंग्यार्थ की चारुत्वातिशयिता है। अतः जिसमें वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ की चारुत्वातिशायिता या विशिष्टता परिलक्षित हो वह प्रथम कोटि का काव्य या उत्तम काव्य या ध्वनि काव्य की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। द्वितीय प्रकार या मध्यम[6] कोटि के काव्य में वाच्यार्थ में ही व्यंग्यार्थ के समान अथवा व्यंग्यार्थ से विशेष चारुत्वातिशयिता दृष्टिगोचर होती है इसे गुणीभूत व्यंग्यकाव्य भी कहते हैं। वह काव्य जो व्यंग्यार्थ से रहित है और जो उक्ति वैचित्र्य रूप प्रदर्शित करने की ही क्षमता रखे

1-आनन्दवर्धन, ध्वन्यालोक, 1/13

2- वही, 1/4

3- अपूर्वं यद्वस्तु प्रथयति विना कारण कलाम्।
सरस्वत्यास्तत्वं कविसहृदयाख्यं विजयते। (ध्वन्यालोकलोचन, मंगलाचरण)

4- 'मोर इज मीण्ट दैन मीट्स द इयर' (भारतीय साहित्य शास्त्र,)
बलदेव उपाध्याय, पृ0 212

5- चारुत्वनिबन्धना हि वाच्यव्यंग्योः प्राधान्य व्यवस्था। (ध्वन्यालोक)

6- व्यंग्य व्यंग्ये तुमध्यमम्' (काव्यप्रकाश, प्रथम उल्लास)

वह अधम अथवा चित्रकाव्य कहा जाएगा।

ध्वनिभेद :-- प्रमुखरूप से ध्वनि के दो भेद स्वीकार किए गये जाते हैं —

(1) अभिधामूला ध्वनि एवं (2) लक्षणामूला ध्वनि।[1]

(1) अभिधामूला ध्वनि या विवक्षितान्य परवाच्य ध्वनि की प्रथम ऐसी स्थिति है जिसमें वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ की प्रतीति का क्रम स्फुट रूप से सामने आता है। अर्थात् जहाँ पर वस्तु एवं अलंकार में वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ अतिशय रमणीय रूप में अभिव्यंजित हो वही उसका विशिष्ट स्थान है। इन्हें शब्द शक्ति आश्रित अर्थशक्ति आश्रित एवं शब्दार्थ शक्त्युत्थापित ध्वनियाँ कहते हैं क्योंकि शब्द, अर्थ एवं शब्दार्थ का यह आश्रय लेती है। इस प्रकार की ध्वनि के दो उपविभाग हैं —

(1) असंलक्ष्यक्रम ध्वनि एवं संलक्ष्यक्रम ध्वनि।[2] तदनन्तर संलक्ष्यक्रम ध्वनि के पुनः तीन प्रभेद किए गए — शब्दशक्त्युद्भव, अर्थशक्त्युद्भव, शब्दार्थ शक्त्युद्भव[3] शब्द शक्त्युद्भव संलक्ष्यक्रम व्यंग्य के पुनः दो प्रभेद किए गये।[4] शब्द शक्त्युद्भव चार प्रकार की अर्थ-शक्त्युद्भव 12 प्रकार की एवं उभय शक्त्युद्भव ध्वनि केवल एक प्रकार की होती है। शब्दार्थ शक्त्युद्भव ध्वनि के वाक्य मात्र में ही होने के कारण उसका एक ही प्रकार होगा तथा शब्द शक्त्युद्भव के पद एवं वाक्यगत तथा अर्थ शक्त्युद्भव के पद वाक्य एवं महा-वाक्यगत क्रमशः दो या तीन भेद हो जाएँगे। असंलक्ष्यक्रम व्यंग्य[5] रस, भाव, रसाभास, भावाभास, भावोदय, भावसन्धि, भावशान्ति एवं भावसबलता के भी पद वाक्य पद्यांश महाकाव्य, धर्म एवं रचनागत भेद से छ प्रभेद होंगे।

लक्षणामूला ध्वनि को अविवक्षित वाच्य की भी अभिधा प्रदान की गयी है। विवच्छित वाच्य का अर्थ है — वाच्यार्थ का विवक्षित न होना। अतः उसमें वाच्यार्थ बाधित होकर लक्ष्यार्थ की प्रतीति कराता हुआ व्यंग्यार्थ का भी बोधन कराता है। व्यंग्यार्थ गूढ़

1- स चाविवक्षितवाच्यो विवक्षितान्य परवाच्यश्चेति द्विविधा सामान्येन।
— ध्वन्यालोक पृ0 78)

2- ध्वन्यालोक, 2/20

3- काव्यप्रकाश , 2- 4/52

4- वही, 4/53 5- वही, 3/6।

होने के कारण सहृदय संवेद्य होता है। वाच्यार्थ के द्वारा वक्ता का अभिप्राय स्पष्ट न होने के कारण इसमें वाच्यार्थ तिरस्कृत होती है। इसके दो भेद होते हैं,,,- अर्थान्तर-संक्रमित वाच्यध्वनि एवं अत्यन्त तिरस्कृत वाच्यध्वनि। वाच्यार्थ का बाधित अर्थात् उपयोग में लगाने के अयोग्य होना दो प्रकार से सम्भव है। एक तो अर्थ की पुनरुक्ति होने से और दूसरे वक्ता के वक्तव्य का तात्पर्य व्यक्त न होने से।''[1] ध्वन्याकार एवं मम्मट ने भी ऐसा ही माना है।[2]

इस प्रकार मुख्य रूप से ध्वनि के विवक्षित वाच्य के 47 एवं अविवक्षित वाच्य के चार प्रकार हैं। सजात्य वैजात्य एकाश्रयानुप्रवेश एवं सन्देह संकरादि के द्वारा गुणित यह ध्वनि प्रपंच 10454 तक पहुँच जाता है।

पाश्चात्य मत :—

यद्यपि भारतीय काव्यशास्त्र की तरह पाश्चात्य काव्यशास्त्र में ध्वनि का कोई क्रमबद्ध एवं विशद विवेचन नहीं है फिर भी ध्वनि के कुछ रूप पाश्चात्य काव्य एवं काव्य शास्त्र दोनों में प्राप्त हो सकते हैं। कुछ अलंकार (फिगर्स आफ स्पीच) जैसे आयरनी- व्यंग्य, मिटोनिमी – उपादान लक्षणा, सेनेकडाकी- लक्षणा आदि को ध्वनि के अन्तर्गत सम्मिलित किया जा सकता है। एबरक्राम्बी ने व्यंग्य अर्थ के लिए कहा है कि साहित्य कला कुछ मात्रा तक सदैव व्यंजनात्मक होती है। और साहित्य कला का सबसे उत्कर्ष यह है कि वह व्यंजना की शक्ति को व्यापक विशद तथा सूक्ष्म भाषा में पूर्णरूप प्रकट करे। अभिधा शक्ति के द्वारा जो अर्थ वाच्य होता है उसकी पूर्ति भाषा की व्यंजना करती है।[3] रिचर्ड्स ने काव्यगत अर्थ के चार प्रकार निश्चित किए हैं – सेन्स, फीलिंग, टोन, एवं इन्टेन्सन। इनका उन्होंने पूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत किया है।[4] इनके सेन्स, फीलिंग

1- काव्यालोक, पृ0 224 2- ध्वन्यालोक, 1/13, वृत्ति एवं 2/1

3- Literary art, therefore, will always be in some degree suggestion; and the height of literary art is to make the power of suggestion in language as commonding; as far reaching; as vivid as subtyle as possible. This power of suggestion supplements whatever language gives merely by being plainly understood and what it gives in this way is by no means confined to its syntax.

Abercrambie - principles of literary criticism.

4- The speaker has ordinarily an attitude to his listener. He chooses or arranges his words differently as his audience varies, in automatic or deliberate recognition of his relation to them. The tone of his utterance reflects his awareness of this relation, his sense of how he stands towards those he is addressing.

Richards - Practical criticism P. 182

एवं टोन वाच्यार्थ एवं इन्टेन्स(अभिप्राय) व्यंग्यार्थ या ध्वनि कही जा सकती है। प्रोफेसर मिलर के विचार से काव्य का अर्थ वही है जो उससे व्यंजित हो। अतः व्यंग्य अर्थ को ही काव्य का मुख्य अर्थ मानना उचित है।[1] ड्राइडन ने तो कवि की मूर्तिविधायिनी कल्पना शक्ति को अत्यन्त महत्वपूर्ण बताया है क्योंकि यही वह शक्ति है जो काव्य को अनुपम सौन्दर्य तथा रहस्यमय अर्थप्रदान करती है।[2]

इस तरह आनन्दवर्धन ने काव्य में जिस गम्भीरतम सूक्ष्मव्यंग्य अर्थ की गम्भीर मीमांसा प्रस्तुत की है उसका बहुत कुछ भाग पाश्चात्य विद्वानों ने स्वीकारकियाहै।

वक्रोक्ति

अर्थ :— वक्रोक्ति का शाब्दिक अर्थ है — उक्ति की वक्रता अर्थात् कुछ अन्य कहा जाय और उसका अर्थ कुछ और हो। यह अर्थ साधारण अर्थ से भिन्न होता है। कादम्बरी परिहास जल्पित के अर्थ में इसे लिया गया।अमरूशतक में भी इसी अर्थ में लिया गया है।[3] वास्तव में साधारण जन के कथन प्रकार से भिन्न तथा अधिक चमत्कृत कथन प्रकार को वक्रोक्ति अभिधा प्रदान की गयी।

1- That which is suggested is meaning.

I. Miller - The psychology of Thinking P.154

2- He is content to assert what he observes; that poet does not leave things as he finds them, but handles them, treats them, 'heightens' their quality and erecreates something that is beautiful and his own.

R.A. Scatt James -
The making of literature P.53

3- वक्रोक्ति निपुणेन विलासि जनेन।
× × × × × ×
एषापि बुध्यते एव एतावती वक्रोक्तिः।इयमपि जानात्येव परिहास जल्पितानि। अभ्रूभिरेखा भुजंग भंगिमाषितानाम्। (बाणभट्ट, कादम्बरी, चन्द्रापीडकथा)

2- या पत्युः प्रथमापराध समये सख्योपदेशं बिना।नो जानाति सविभ्रामंगवलना। वक्रोक्तिसंसूचनम्। — अमरूशतक, श्लोक --2

वक्रोक्ति परम्परा :—

भामह[1] इसे काव्य का मूलतत्व स्वीकारते हुए अतिशयोक्ति अलंकार का नामान्तर माना और इसे इष्टावाचामलंकृतिः' कहा। वे इसकी उपादेयता के कारण सूक्ष्म तथा लेश नामक अलंकारों को नहीं मानते[2] और अलंकार के लिए वक्रोक्ति की उपस्थिति अत्यावश्यक समझते हैं।[3] अभिनव गुप्त ने भामह का ही एक पद्य[4] देकर बताया कि जिस शब्द तथा अर्थ का व्यवहार जिस रूप से होता है वैसा न होकर विलक्षण रूप में हो तो उसे वक्रोक्ति की संज्ञा देंगे।

दण्डी ने समस्त वाङ्मय को स्वभावोक्ति एवं वक्रोक्ति दो भागों में विभाजित किया। स्वभावोक्ति में यथार्थ कथन विद्यमान होता है जबकि स्वभावकथन से भिन्न होने के कारण वक्रोक्ति में अतिशय कथन का समावेश होता है। इस प्रकार उपमा आदि अर्थालंकार तथा रसवद् प्रेयादि रस सम्बद्ध अलंकार वक्रोक्ति के अन्तर्गत आते हैं। इनके अनुसार श्लेष की सत्ता से वक्रोक्ति और भी चारुता प्राप्त करती है।[5] रुद्रट भी भामह की तरह इसे शब्दालंकार के अन्तर्गत ~~[illegible]~~ रखते हैं किन्तु आचार्य वामन ने इसे अर्थालंकार समझा।

कुन्तक वक्रोक्ति जीवितकार के नाम से जाने जाते हैं और इनका ग्रन्थ भी 'वक्रोक्ति जीवित' कहलाता है। इन्हें इसका संस्थापक भी कहा जाता है। इस प्रकार से यह परम्परा भामह सेकुन्तक तक अनेक रूपों में पल्लवित हुई।

वक्रोक्ति के प्रकार :— प्रधानतः छः रूप मिलते हैं —

(1) वर्ण विन्यासवक्रता ~~(2)~~ जो यमक आदि अलंकारों में उपलब्ध है। (2) पद पूर्वार्द्ध वक्रता — (3) पदोत्तरार्द्ध वक्रता (4) वाक्यवक्रता (5) प्रकरण वक्रता (6) प्रबन्धवक्रता। पदपूर्वार्द्ध के भी अनेक भेद किए गए हैं। यथा (1) रूढिवक्रता (2) पर्यायवक्रता (3) विशेषणवक्रता आदि।

1- भामह, काव्यालंकार, पृ0 2/85 2- भामह, काव्यालंकार, 2/86

3- वही, 5/66

4- शब्दस्य हि वक्रता, अभिधेयस्य च वक्रता लोकोत्तीर्णेन रूपेण, अवस्थानम्। (लोचन, पृ0 208)

5- दण्डी काव्यादर्श, 2/363

पाश्चात्य मान्यताएँ :—

पाश्चात्य विद्वान् वक्रोक्ति को विशेष महत्व देते हैं। अरस्तू लांजिनस के अतिरिक्त क्रोचे का अभिव्यंजनावाद वक्रोक्ति का ही प्रकारान्तर से सूचक है। वे कलाकृति के निर्माण को विशुद्ध कला तो नहीं मानते, उसे विशुद्ध कला से निम्न तथा हीन मानते हैं, पर जब कोई कलाकार वाह्य कलाकृति का निर्माण करे, तो उनका विचार है कि उसे नियम तथा सदाचार का पालन करना चाहिए। इसे स्काट जेम्स ने भी समर्थन दिया है।[1]

अरस्तू का यह वाक्य 'कथन के सामान्य प्रकार से पृथक होने वाली प्रत्येक वस्तु,[2] वक्रोक्ति का प्रकारान्तर से सूचक है। उनके आधार पर सामान्य जन की भाषा में काव्यगत चमत्कार एवं सरसता की अभिव्यक्ति करने की क्षमता नहीं होती। उससे केवल केवल लोकव्यवहार ही सम्भव है।

1- The artist may be what he likes but he must not say that he likes, He is as free as the wind when his art is not what we mean by art, but when he begins to create, as we understand creation, his liberty is gone.

Scott James, The making of Literature. P.329

2- The diction becomes distinguished and non-prosaic by the use of un-Familiar terms i.e. Strange words, Metaphors, lengthened forms, and every thing that deviates from the ordinary modes of speech.

Aristotl's theory of poetry and fine art.

डा0 बलदेव प्रसाद उपाध्याय, भारतीय साहित्यशास्त्र, पृ0 210 से अवतरित

भव्यता को महत्व देते हुए लांजिनस ने कहा है कि सहृदय को प्रभावित करने वाली कविता भव्य गुण सम्पन्न होती है। 'भव्यता काव्य का परम सौन्दर्य साधन है। यह भव्यता वहीं होती है जहाँ लोक का अतिक्रमण रहता है, अलौकिक वस्तु में अलौकिकत्व का निवास रहता है। काव्य में सर्वत्र अलौकिकता विराजती है - अर्थ में अर्थ प्रकटन की रीति में, शब्द में तथा अलंकार में अलौकिक अर्थ की अभिव्यक्ति अलौकिक शब्द के द्वारा ही होता है। उन सबके लिए लोकव्यवहृत शब्द अत्यन्त तुच्छ तथा असमर्थ प्रतीत होते हैं। यहाँ शाब्दिक अलौकिकता का जो निर्देश लांजिनस ने किया है वह वक्रोक्ति का दूसरा नाम है।'[1]

1- Sublimity is a certain consummateners and preeminance of phrase, and that the greatest poets and prose writers gained the first rank and grasped on enternity of fame, by no other means than this. For what is out of the common leads audience not to persuasion, but to Ecstasy (or Transport).

- Longinus.

डा0 बल्देव प्रसाद उपाध्याय, भारतीय साहित्यशास्त्र पृ0 211 से अवतरित

औचित्य

यह सिद्धान्त एक अर्वाचीन सिद्धान्त है जो कि संस्कृत आलोचना के आलोचकों की देन है। यद्यपि इसे काव्य का प्राण मानने का गौरव क्षेमेन्द्र को प्राप्त है किन्तु यह परम्परा व्यवहार रूप में नाट्यशास्त्र में भी मिलती है। देशानुरूप वेश अंगानुरूप आभूषण ही शोभा प्राप्त करते हैं। इससे भिन्न होने पर हास्यास्पद बन जाते हैं।[1] रसभंग का प्रधान कारण औचित्य का अभाव है।[2] यदि काव्य में अनुचित वस्तु का सन्निवेश होता है तो उसमें रस परिपाक असम्भव है।

अभिनव गुप्त के शिष्य आचार्य क्षेमेन्द्र ने इसे रस का जीवित भूत, प्राण तथा काव्य में चमत्कारी[3] बतलाते हुए बतलाया कि उचित का जो भाव है वह औचित्य कहलाता है। वस्तुओं के बीच सादृश्य की उचित अभिक्रिया दी जाती है तथा उचित का ही भाव होता है — औचित्य[4] इसके विषय में क्षेमेन्द्र का महत्त्वपूर्ण पद्य भरत का अनुकरण लगता है[5] कि कण्ठ में मेखला, नितम्ब में सुन्दर हार, कर में नूपुर, पैरों में केयरपाश पहनने से व्यक्ति जिस प्रकार हास्यास्पद बनता है वैसे यदि शरण में आये व्यक्ति पर शूरता एवं शत्रु पर करुणा प्रदर्शित करने पर भी हास्यास्पद बनना पड़ता है।

औचित्य प्रकार :—

क्षेमेन्द्र किसी एक काव्य तत्व पर आग्रह नहीं करते हैं। उनके अनुसार यथोचित मात्रा में छन्द रस अलंकार ध्वनि प्रकरण, वस्तु, क्रिया, विशेषण, संज्ञा, सर्वनाम सभी होने चाहिए तभी काव्य आनन्दमयी प्रतिलक्षित हो सकता है। शायद इसीलिए उन्होंने औचित्य के 27 विभाग किये।[6]

1- नाट्यशास्त्र, 23/68   2- ध्वन्यालोक, 3/17

3- औचित्यस्य चमत्कारकारिणश्चारुचर्वणे।
रसजीवित भूतस्य विचारं कुरुतेऽधुना। (क्षेमेन्द्र औचित्यविचार चर्चा, कारिका3)

4- उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्ययत्।
उचितस्य च योभावस्तदौचित्यं प्रचक्षते। (क्षेमेन्द्र- वही, कारिका 7)

5-कण्ठेमेखलया नितम्ब फलके तारेण हारेण वा। पाणौ नूपुर बन्धनेन चरणे केयूर पाशेन वा।
शौर्येण प्रणते रिपौ करुणया नायान्ति के हास्यतां। औचित्येन बिना रुचिं प्रतनुते नालंकृतिर्नो गुणाः। (वही,

6-डा0 रामदत्त शर्मा, पौरस्त्य एवं पाश्चात्य काव्यसिद्धान्त, काव्यप्रकार, पृ0 113

पद वाक्य, प्रबन्धार्थ, गुण, अलंकार, रस, क्रिया, कारक, लिंग, वचन, विशेषण, उपसर्ग, निपात, काल, देश, कुल, वृत, तत्व, सत्व, अभिप्राय, स्वभाव, सारसंग्रह, प्रतिभा, अवस्था, विचार, नाम और आशीर्वाद आनन्दवर्धन ने प्रबन्धौचित्य को प्रबन्ध ध्वनि के नाम से वर्णित किया है।

पाश्चात्य मत :-

पाश्चात्य काव्यशास्त्र में औचित्य के विषय में भी पर्याप्त तथ्य मिलते हैं। औचित्य को मान्यता प्रदान करने वाले प्रमुख आचार्य अरस्तू, लांजिनस, होरेस, आदि विद्वान हैं। अरस्तू के आधार पर नाटक के उचित दृश्य ही दिखलाये जाना चाहिए। एवं नाटककार भी काल्पनिक दृश्यों को न अपनाएँ जिससे जब नाटक रंगमंच पर अभिनीत हो तब वह सत्य प्रतीत हो।[1] लांजिनस काव्य में औचित्य के प्रबल पक्षपाती थे। उनकी दृष्टि में शब्दौचित्य का विधान काव्य में सौन्दर्य, शक्ति, प्रभाव, महत्व तथा भव्यता का उत्पादक होता है तथा अन्य आवश्यक काव्य गुण का भी उदय स्वतः हो जाता है। अतः औचित्य का पालन काव्यकला की चरम कसौटी है।[2] होरेस के आधार पर अभिनय में औचित्य का प्रमुख स्थान है। उसमें मुखाकृति प्रसंगानुकूल होनी चाहिए।[3]

1- The poet should remember to put the actual scenes as far as possible before his eyes . . . . . . he will devise what is appropriate, and be least likely to overlook in congruities.

Poetics , P.61

डा0 बल्देव प्रसाद उपाध्याय, भारतीय साहित्यशास्त्र, पृ0 110 से अवतरित

2- ~~Poetics~~ वही, P.118

3- Sad words suit a gloomy face, threats suit an angry face; sportive words suit a playful, and serious words stern brow.

Horace - Art of poetry.

डा0 बल्देव उपाध्याय, साहित्यशास्त्र, पृ0 121 से अवतरित

इस प्रकार से स्पष्ट है कि पाश्चात्य शास्त्र में भी औचित्य का प्रमुख स्थान है। विषय के विशद् आकार को देखते हुए अत्यन्त संक्षेप में गुण, दोष एवं शब्दशक्ति का विवेचन निम्नवत है --

गुण

कोशार्थ में गुण का अर्थ है -- उत्तमता, विशेषता, आकर्षक अथवा शोभाकारी धर्म अथवा दोषाभाव और काव्य शास्त्र मेंइसका अर्थ है -- दोषाभाव अथवा काव्य की शोभा करने वाले धर्म स्वरूप आत्मा के (शौर्यादि की तरह ही) माधुर्यादि गुण हैं जो अवयवी में अथवा अवयवों की शोभा मे उत्कर्ष लाने के मुख्य कारण बताये जाते हैं।[1] अतः स्पष्ट है कि काव्यात्मा की विशेषताओं को प्रकाशपथ पर अवतारित करने वाले तत्व गुण की अभिधा प्राप्त करते हैं। आचार्य जगन्नाथ के अनुसार शब्द एवं अर्थ के द्वारा ये मुख्य तत्व रस का उपकार करते हैं।[2]

गुण संख्या :-

काव्यादर्श में दश शब्द के एवं दश अर्थ के गुणों का उल्लेख है, जो इस प्रकार है [3]— श्लेष, प्रसाद, समता, समाधि, माधुर्य, ओज, पद सौकुमार्य, अर्थव्यक्ति, उदारता और कान्ति।" भोज के प्रमुख चौबीस प्रकारों में से दश तो भरत सम्मत हैं, शेष चौदह गुणों के नाम हैं — उदात्तता, और्जित्य, प्रेम, सुशब्दता, सूक्ष्म, गाम्भीर्य, विस्तार, संक्षेप, संमितता, भाविकतता, गति, रीति, उक्ति और प्रौढ़ि।"[4] गुणों की

1- काव्यप्रकाश, अष्टमपरिच्छेद, कारिका 66

2- किंचात्मनो निर्गुणतमात्मरूप रसगुणत्वं माधुर्यादीनामनुपपन्नम्। एवं तदुपाधिरत्यादि गुणत्वमपि मानाभावात्।...... तथा च शब्दार्थयोरपि माधुर्यादिरीदृशस्य सत्वादुपकारो नैव कलाय। — पं0 जगन्नाथ रस गंगाधर, प्रथम आनन, पृ0 234

3- दण्डी काव्यादर्श, 1/42-43

4- प्रो0हीरा राजवंश सहाय, भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिनिधि सिद्धान्त, पृ0428

चर्चा की है।[1] परन्तु आगे बढ़ती हुई प्रभेद प्रदर्शन प्रवृत्ति को आने वाले आचार्यों ने चुनौती दी एवं द्रुत, दीप्ति[2] एवं व्यापकत्व-रूप विशिष्टताओं के आधार पर गुणों की संख्या घटाकर तीन कर दी --

(1) माधुर्य

(2) ओज

(3) प्रसाद

यही तीनों गुण बाद में सर्वमान्य समझे गये।

(1) माधुर्य :-- उस आह्लाद को माधुर्य गुण की अभिधा मिली जो चित्त को द्रवीभूत कर दे।[3] यह विशेषकर श्रृंगार, करूण एवं शान्त रसों में मिलता है।

(2) ओज :--

उस दीप्ति प्रधान गुण को ओज[4] की संज्ञा दी जाती है, जो श्रोता के हृदय में उत्साह, वीरता आदि जागरित करने में समर्थ हो। यह वीर, वीभत्स, एवं रौद्र रसों में देखने को मिलता है।

(3) प्रसाद :--

यह गुण वहाँ प्राप्त होता है जहाँ ऐसे वाक्य एवं शब्दों का विन्यास हो कि जिनके श्रवण मात्र से अर्थबोध हो जाय एवं अबाधित गति से अर्थ की उपस्थिति एवं तदनुसार भावानुभूति हो सके।[5]

1- प्रो० हीरा' राजवंश सहाय -- भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिनिधि, सिद्धान्त, पृ० 428

2-वही, पृ० 428

3- गुणानां चैषां द्रुतिदीप्तिविकासाख्यास्त्रिचित्तवृत्तयः।

(पं०राज जगन्नाथ, रसगंगाधर, प्रथम आनन 126)

4- मम्मट- काव्यप्रकाश, 8/91

5- वही, 8/69

6- वही, 8/70-71

दोष

दोष का शाब्दिक अर्थ होता है — भूल, त्रुटि, हानि, रोग। किन्तु काव्य-दोष अर्थ का अपकर्ष करते हुये रस में बाधा उत्पन्न करता है। जो तीन प्रकार से संभव है — रस की प्रतीति में विलम्ब के द्वारा, अवरोध के द्वारा, और रस-प्रतीति में विघात के द्वारा। भरत [1] ने गुण को दोष का विपर्यय स्वरूप स्वीकारा, जिससे स्पष्ट है कि दोष का रूप अभावात्मक नहीं भावात्मक है। ऐसा ही वेदों एवं उपनिषदों में भी सम्प्राप्त है। उपनिषदों में सत् और असत् का घनिष्ठ सम्बन्ध दिखाया गया है। कहीं-कहीं तो असत् से सत् की उत्पत्ति मानी गयी है।[2] ऐसा सम्बन्ध गुण दोष का भी हो सकता है। दोष की व्यापकता अंधकार की तरह भी समझी जा सकती है। भामह[3] के अनुसार सत्कवि दोष का प्रयोग नहीं करते, किन्तु क्या ललना की आँखों में अँजन की कोई शोभा नहीं होती? क्या गौर एवं सुन्दर मस्तक पर डिठौने का महत्व नहीं? क्या गुण दोष का सम्बन्धी नहीं जो चित्र का और चौखटे का है? दण्डी [4] भी यह स्वीकार करते हैं है कि कवि कौशल के बल से सभी दोष दोषसीमा का उल्लंघन करके गुण बन जाते हैं। अग्निपुराण[5] के आधार पर दोष के द्वारा उद्वेग उत्पन्न होता है। वामन[6] के अनुसार दोष से काव्य सौन्दर्य की हानि होती है। मम्मट के अनुसार दोष से मुख्य अर्थ का अप - कर्ष होता है।[7]

1- भरत, नाट्यशास्त्र, 17/95

2-(क) असतो मा सद् गमय (बृ0उ0 1/3-28

(ख) असदेवमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्। -छान्दो0 6/2-1

(ग) सतोबन्धुमसति निविन्दन् (ऋग्0 1/54-59)

2- भामह, काव्यालंकार 1/54-59

4- दण्डी काव्यादर्श, 3/179

5- अग्निपुराण, 11/1

6- वामन, काव्यालंकार सूत्रवृत्ति, 2/12

7- मम्मट, काव्यप्रकाश 7/49

दोष प्रकार :- दोष प्रमुख रूप से चार प्रकार के होते हैं --

(1) शब्द-दोष

(2) वाक्यदोष

(3) अर्थदोष

(4) रस-दोष

(1) शब्द दोष --

वाक्यार्थ के बोध होने में जो पहले दोष उपस्थित हों उन्हें शब्द-दोष कहते हैं। ये 16 प्रकार के होते हैं।[1]

(1) श्रुतिकटु (2) च्युतसंस्कार (3) अप्रयुक्त (4) असमर्थ (5) निहतार्थ (6) अनुचितार्थ (7) निरर्थक (8) अवाचक (9) तीन प्रकार के अश्लील (10) संदिग्ध (11) अप्रतीत (12) ग्राम्य (13) नेयार्थ - ये 13 दोष पदगत तथा समासगत होते हैं) (14) क्लिष्ट (15) अविमृष्टविधेयांश (16) विरुद्धमतिकृत् (ये तीन समास में होते हैं।

(2) वाक्यदोष :-

ये दोष 21 प्रकार के होते हैं।[2] (1) प्रतिकूल वर्णता (2) उपहृत विसर्गता (3) विसन्धि (4) हतवृत्तता (5) न्यून-पदता (6) अधिकपदता (7) अकथितपद (8) पतत्प्रकर्षता (9) समाप्तपुनरात्तता (10) अर्धान्तरैक वाचकता (11) अभवन्मतसम्बन्ध (12) अमतयोग (13) अनभिहितवाच्यता (14) अस्थानपदता (15) अस्थान समासता। (16) संकीर्णता (17) गर्भितता (18) प्रसिद्धि-विरोध (19) भग्नक्रमता (20) अक्रमता (21) अमतपरार्थता।

1- काव्यप्रकाश, 7/50-51

2- मम्मट-काव्यप्रकाश, 7/53-54

(3) अर्थदोष :-

यह वहाँ होता है जहाँ कविता में निहित अर्थ के द्वारा अभीष्ट तात्पर्य की प्रतीति न हो सके। ये 23 प्रकार के होते हैं।[1]

(1) अपुष्ट (2) कष्ट (3) व्याहत (4) पुनरुक्त (5) दुष्क्रम (6) ग्राम्य (7) संदिग्ध (8) निर्हेतु (10) प्रसिद्ध विरुद्ध (10) विद्याविरुद्ध (11) अनवीकृत (12) सनियम परिवृत्त (13) अनियम परिवृत्त (14) विशेष परिवृत्त (15) अविशेषपरिवृत्त (16) साकांक्षा (17) अपदयुक्त (18) सहचर भिन्न (19) प्रकाशित विरुद्ध (20) विध्ययुक्त (21) अनुवादयुक्त (22) त्यक्त पुनः स्वीकृत (23) अश्लील।

(4) रसदोष :—

रसास्वाद के बाधक तत्वों को रसदोष कहा जाता है। ये 13 प्रकार के होते हैं।[2] (1) व्यभिचारीभाव (2) रस एवं (3) स्थायीभावों का स्वशब्द से कथन (4) अनु - भाव और (5) विभाव की कष्टकल्पना से अभिव्यक्ति (6) प्रतिकूल विभावादि का ग्रहण करना (रस के प्रतिकूल) (7) रस की पुन, पुनः दीप्ति (8) अकाण्डप्रथन (9) अकाण्डछेदन (10) अंगरस का अत्यधिक विस्तार (11) अंगी का अनुसंधान या प्रधान रस का भूल जाना (12) प्रकृति विपर्यय (13) अनंगकथन।

डा0 गुलाब राय[3] ने दोषों का वर्गीकरण इस प्रकार प्रस्तुत किया है जो उपयुक्त प्रतीत होता है।

प्रथम वर्ग :— क्लिष्टत्व, अप्रतीतत्व और अप्रयुक्त दोष। कठिन एवं दुर्बोध रचना जिसमें अर्थबोध केवल विशेषज्ञ ही कर सके। अप्रचलित शब्द दोष समझे जाते हैं।

द्वितीय वर्ग — अश्लीलत्व एवं ग्राम्यत्व। गन्दे भद्दे और अशिष्ट शब्दों का प्रयोग दुष्ट समझा जाता है।

1- मम्मट, काव्यप्रकाश, 7/55-57

2- वही, 7/61-62

3- डा0 गुलाबराय, सिद्धान्त और अध्ययन, पृ0 241

तृतीयवर्ग :-

अधिकपदत्व तथा न्यूनपदत्व। आवश्यकता से अधिक तथा आवश्यकता से न्यून पदों का प्रयोग अप्रशस्त माना जाता है।

चतुर्थ वर्ग :-

विपरीतत्व और श्रुतिकटुत्व। रस के प्रतिकूल अथवा औचित्य के प्रतिकूल तथा कानों को बुरे लगने वाले वर्णों या शब्दों का प्रयोग अवांछनीय है। यद्यपि वीर और रौद्र रस की अभिव्यक्ति मेंयह श्रुतिकटुत्व दोष भी गुण माना जाता है।

पंचमवर्ग :-

च्युतवृत्ति। शब्दों की रचना और वर्तनी व्याकरण विरुद्ध नहीं होनी चाहिए।

षष्ठवर्ग :-

अभवन्मतसम्बन्ध, दूरान्वय, समाप्त पुनरात्तं त्यक्त पुनः स्वीकृत तथा गर्भित दोषत्व। वाक्य का अन्वय ठीक होना चाहिए, ऐसा न होना चाहिए कि कर्ता क्रिया अथवा कर्म के बीच में इतना बड़ा व्यवधान हो जाय कि अर्थ की संगति कष्टकारक हो। जब वाक्य समाप्त हो जाय तो उसके सम्बन्ध में पुन, चर्चा नकी जानी चाहिए, क्योंकि वाक्य के समाप्त हो जाने पर और कुछ कहने से विषय में शिथिलता आ जाती है। वाक्य के भीतर वाक्य का प्रयोग अर्थात् किसी अतिरिक्त वाक्य का किसी वाक्य के बीच में आ जाना अरुचिकर एवं भ्रमात्मक होता है।

सप्तम वर्ग :-

अक्रमत्व तथा दुष्क्रमत्व दोष। ये दोष तब उत्पन्न होते हैं जब शब्दों का विन्यास वाक्य में इस प्रकार हो कि निश्चय न हो सके कि किस शब्द का सम्बन्ध किससे है। 'राजन' मुझे घोड़ा दो न हो तो हाथी दो।' इस वाक्य में न का सम्बन्ध आगे-पीछे जोड़ने से वाक्य के अर्थ एक से अधिक निकलते हैं।

पाश्चात्य मत :--

संस्कृत एवं हिन्दी-साहित्य शास्त्र की तरह पाश्चात्य काव्य शास्त्र में यद्यपि काव्य-दोष का विवेचन नहीं हुआ किन्तु फिर भी अरस्तू, होरेस, लांजिनस, पोप, एडीसन, डा०जानसन आदि साहित्य शास्त्रियों ने दोषों से कवियों को बचने के लिए कहा है। आर०ए०स्काट लांजिनस के मत की पुष्टि करते हुए स्पष्ट शब्दों में कवियों को दोषों से बचने के लिए कहा है।[1]

शब्द-शक्ति

शब्द के बीच निहित अर्थ सम्पत्ति को प्रकाश में लाने वाले व्यापार को शब्द-शक्ति की संज्ञा दी जाती है। कार्य सम्पादन करने पर कारण की जो सहायक हो उसे व्यापार की अभिधा दी जाती है। इस तरह अर्थ स्वरूप कार्य सम्पादन के लिए शब्द-शक्ति एक व्यापार है। यहाँ शब्द कारण अर्थ कार्य एवं शब्दशक्तियाँ साधन या व्यापार के रूपमें गृहीत हैं। प्राच्यन्याय के अनुसार अर्थ प्रकाशन क्षमा शक्ति को ईश्वर इच्छा के रूप में स्वीकृति दी गयी थी पर कहीं-कहीं मनुष्य की इच्छा मात्र को ही शक्ति रूप में मान लिया गया है। प्रमुखरूप से शब्दशक्ति तीन प्रकार की होती है --

---

1- Faults are not the less faults because they arise from the heedlessness of genius . . . . He (Longinus) warms us against bombest, Puerility or affectation, and the conceits of 'Frigidity'

R.A. Scott - The making of Literature.

(1) अभिधा शब्द-शक्ति

(2) लक्षणा शब्द-शक्ति

(3) व्यंजना शब्द-शक्ति

(1) अभिधा शब्द-शक्ति

साक्षात् संकेतित अर्थ को बतलाने वाली शब्द की प्रथमा शक्ति को अभिधा की संज्ञा दी जाती है।[1] भाषा की जिस शक्ति से शब्द के सामान्य प्रचलित अर्थ का बोध होता है। वह अभिधा शक्ति कही जाती है।[2]

मम्मट का कहना है कि साक्षात् संकेतित अर्थ ही मुख्य अर्थ होता है और उसका बोध करने वाले शब्द के व्यापार को अभिधा कहते हैं।[3]

मुकुल भट्ट[4] के अनुसार — जिस प्रकार शरीर के सभी अवयवों में सर्वप्रथम मुख दिखायी देता है उसी प्रकार सभी प्रकार के अर्थों से पहले इसी का बोध होता है। अतः मुख की भाँति मुख्य होने के कारण इसे अन्य सभी प्रतीत अर्थों का मुख कहते हैं। साक्षात् संकेतित अर्थ ही सभी अर्थों का मुख होता है इसका बोध सभी प्रकार प्रतीत अर्थों के पूर्व ही हो जाता है। अतः इसे शब्द का प्रथम शक्ति कहते हैं।

इस प्रकार किसी शब्द या वाक्य को देखते ही तुरन्त जो अर्थ बोध होता है वह अभिधा शक्ति द्वारा ही प्राप्त होता है।

(2) लक्षणा शब्द-शक्ति

मुख्यार्थ बाधित होने पर रूढ़ि अथवा प्रयोजन के आधार पर शब्द से सम्बद्ध अन्य अर्थ को लक्षित करने का काम जो शब्द शक्ति करती है उसे लक्षणा की संज्ञा दी जाती है।[5]

1- विश्वनाथ, साहित्यदर्पण, 2/4

2-डा0 गणपतिचन्द्र गुप्त, साहित्यविज्ञान, पृ0 208

3- मम्मट, काव्यप्रकाश, 2/8

4- स हि यथा सर्वेभ्यो हस्तादिभ्यो वयवेभ्यः पूर्वं मुखमवलोक्यते, तद्वदेव सर्वेभ्यः प्रतीयमानेभ्यो र्थान्तरेभ्यः पूर्वमवगम्यते। तस्मान्मुखमिव मुख्य इति शाखादियान्ते न मुख शब्देनाभिधीयते। --- मुकुलभट्ट- अभिधावृत्ति मातृका।

5- मम्मट-काव्यप्रकाश, पृ0 2/9

लक्षणा शक्ति मुख्यार्थप्रकाश के पश्चात् आती है अतः इसे गौणीवृत्ति भी कहते हैं यथा 'यमुना में किला है' 'उज्जैन विद्वान है।' कहने पर यमुना का अर्थ जल प्रवाह एवं उज्जैन का अर्थ स्थान विशेष होने के कारण इन दोनों के द्वारा वाक्य का अर्थ निष्पादित नहीं हो पाता। अतः लक्षणा शक्ति यहाँ पहुँचकर यमुना का अर्थ यमुनातट एवं उज्जैन का अर्थ उज्जैन निवासी है। इसमें यमुना का द्वितीय अर्थ गहरी गम्भीर या जटिल है तथा उज्जैन का अर्थ रूढि के आधार पर उपस्थियित लिया जाता है। अतः प्रथम स्थल में प्रयोजनवती एवं द्वितीय रूप में रूढि लक्षणा की स्थिति स्पष्ट होती है। इस तरह लक्षणा के तीन बीज स्वीकार किये गये —

(1) मुख्यार्थ बाध

(2) रूढि या प्रयोजन

(3) मुख्यार्थ का अमुख्य अर्थ से सम्बन्ध

लक्षणा के प्रकार :— संक्षेप में लक्षणा के दो भेद है —[1]

(1) रूढि लक्षणा :— इसमें शब्द के नियत एवं सांकेतिक अर्थ से भिन्न किसी दूसरे अर्थ का बोध होता है जो रूढि अथवा परम्परा का कारण होता है। इसके दो भेद हैं —

(क) गौणी रूढा

(ख) शुद्धा रूढा

(2) प्रयोजनवती लक्षणा — इसमें शब्द के नियत अर्थ को न ग्रहण कर किसी अन्य अर्थ को किसी विशेष प्रयोजन से लिया जाता है। इसके भी दो भेद हैं —

(अ) गौणी — इसके पुनः दो उपभेद हैं —

(1) सरोपा गौणी लक्षणा

(2) साध्यवसाना गौणी लक्षणा

(ब) शुद्धा प्रयोजनवती लक्षणा — इसके चार उपभेद हैं —

(1) लक्षण लक्षणा

(2) उपादान लक्षणा

(3) प्रयोजनवती शुद्धा सरोपा लक्षणा।

(4) प्रयोजनवती शुद्धा साध्यवसाना लक्षणा।

1- डा0रामदत्त भरद्वाज, काव्यशास्त्र की रूपरेखा, पृ0 141

2- वही, 141-144

<u>व्यंजना :—</u>

अभिधा, लक्षणा एवं तात्पर्या शक्तियों द्वारा अपने अर्थ उपस्थापित करके निवृत हो जाने के पश्चात् शब्द की जिस शक्ति से उसमें निहित अतिविशेष अमूतअर्थ अभिव्यक्त होता है उसे व्यंजना की अभिधा प्रदान की जाती है।[2]

<u>व्यंजना के प्रकार :—</u> इसके दो भेद होते हैं —

<u>(क)शाब्दी व्यंजना</u> – इसके पुनः दो भाग है —

<u>(1)अभिधामूला</u> — इसके 15 आधार मिलते हैं । संयोग, वियोग, साहचर्य, विरोध, अर्थ, प्रकारण, लिंग, अन्य सान्निध्य, सामर्थ्य, औचित्य, देशकाल, व्यक्ति स्वर, चेष्टा आदि।

(2)लक्षणा मूला ।

<u>(ख)आर्थी व्यंजना</u> — काव्य प्रकाश में 10 भेद एवं प्रत्येक के तीन वाच्य संभवा, लक्ष्य संभवा तथा व्यंग्य संभवा उपभेद बताकर 30 भेद वर्णित किये गये हैं।[2]

(1)वक्तृवैशिष्ट्य (2)बोद्धव्य(3)काकु (4)अन्य सान्निधि(5)वाच्य वैशिष्ट्य (6)देश वैशिष्ट्य (7)कालवैशिष्ट्य (8)चेष्टा(9)प्रस्ताव वैशिष्ट्य (10)वाक्य वैशिष्ट्य।

इस प्रकार से अति संक्षेप में भारतीय काव्यशास्त्र के प्रमुख तत्व, रस, छन्द अलंकार, ध्वनि, औचित्य, वक्रोक्ति, रीति, गुण, दोष, शब्द-शक्तियों का विवेचन किया जा सकता है।

पाश्चात्य काव्यसिद्धान्तों के अन्तर्गत काव्यशास्त्रीय तत्वों का ही वर्णन मिलता है। यहाँ पर उपयोगिता को ध्यान में रखकर पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सम्पूर्ण तत्वों का विवेचन नहीं किया गया क्योंकि यह वर्णन अत्यन्त विशद् हो जाता। इसीलिए भारतीय काव्यशास्त्र के तत्वों से सम्बन्धित पाश्चात्य तत्वों पर दृष्टि डाली गयी है।

1- ध्वन्यालोक लोचन, पृ0 62

2- मम्मट काव्यप्रकाश, 3/21-22

भारतीय काव्यशास्त्र में जिन तत्वों को भारतीय आचार्यों ने प्रतिपादित किया, वे किसी न किसी रूप में पाश्चात्य काव्यशास्त्र में अवश्य मिलते हैं। भारतीय एवं पाश्चात्य तत्वों के विवेचन से पता चलता है कि इतनी दूरी एवं भाषाओं में भिन्नता होने पर भी दोनों में आश्चर्यजनक साम्य है। उपर्युक्त तत्वों के अतिरिक्त, भाषा के विषय में जो विचार भारतीय आचार्यों के हैं वही पाश्चात्य के भी। यहाँ तक बहुत से ऐसे छन्द हैं जो एक ही रूप में भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य में प्रयुक्त होते हैं।[1]

यथा —

पाश्चात्य छन्द	भारतीय छन्द
ट्रिमीटर	जगती
इयाम्बिक डाइमीटर	अनुष्टुप
डैक्टाइलिक रिद्म	रोला
डैक्टाइलिक टेटरामीटर (मेट्रम अल्कमैनियम)	त्रोटक छन्द
डैक्टाइलिक टेटरामीटर (अर्ची लोचियम)	चौपाई
टेटरामीटर एकैटलिक्टिक	स्रग्विणी छन्द
बैकिक टेटरामीटर	भुजंगप्रयात
आर्चीलोचियन स्ट्राफ	मत्तगयंद आदि

इस प्रकार से चाहे जिस तत्व को देखें, उसके स्वरूप में कोई विशेष अन्तर दोनों प्रकार के विद्वानों में नहीं मिलता। केवल नामकरण एवं उनकी प्रस्तुति में अवश्य अन्तर विद्यमान है।

1- डा0 पुत्तूलाल शुक्ल, आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना, पृ0 95-101।

द्वितीय अध्याय

(क) सप्तम दशक से पूर्व हिन्दी महाकाव्य - स्थिति एवं युगबोध

आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल, आधुनिककाल

(ख) सप्तम दशकोत्तर हिन्दी महाकाव्य - स्थिति एवं युगबोध

(ग) आलोच्य महाकाव्यों का सांस्कृतिक वर्णन

सप्तम दशक के पूर्व हिन्दी महाकाव्य – स्थिति एवं युगबोध

हिन्दी साहित्य की महाकाव्यीय परम्परा प्राचीनतम है। हिन्दी का आदि महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' स्वीकार किया जाता है।[1] एवं तभी से हिन्दी-साहित्य का उद्भव माना जाता है। भारतवर्ष का इतिहास अनेकों विषम परिस्थितियों से गुजरा जिसका परिणाम साहित्य को भी भुगतना पड़ा जैसे वीर युग में वीर काव्य, भक्तिकाल में भक्तिपरक काव्य, प्रगतिवादी काव्य, छायावादी रहस्यवादी, प्रयोगवादी आदि। अर्थात् जिस प्रकार का वातावरण रहा वैसा काव्यसृजन हुआ। समग्र हिन्दी-साहित्य को निम्नलिखित खण्डों में विभक्त किया गया है।[2]

(1) आदिकाल 1000ई0 से 1400ई0[3]

(2) भक्तिकाल 1400ई0 से 1700ई0

(3) रीतिकाल 1700ई0 से 1900ई0

(4) आधुनिक काल 1900 से 1975ई0[4]

आदिकाल के प्रमुख महाकाव्य :—

इस समय के प्रमुख महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' 'परमाल रासो (आल्हखण्ड) ही थे।[5] केदार भट्टकृत 'जयचन्द्र प्रकाश तथा मधुकर कवि विरचित जयमयंक जस चन्द्रिका' हिन्दी महाकाव्य तो थे किन्तु उपलब्ध नहीं हैं।[6] 'वीसलदेव रासो' 'हम्मीर हठ' 'खुमान-रासो' 'विजयपाल रासो' 'हरिचरित 'आदि जितने भी ग्रन्थ उपलब्ध हैं उनमें या तो आकार प्रकार या कथावस्तु समायोजन अथवा महत्वहीनता की कमी के कारण महाकाव्य कहलाने योग्य नहीं हैं।[7] इनमें से कुछ का तो मात्र नाम श्रवण किया जाता है ये उपलब्ध नहीं हैं।

1- वर्मा, सत्यकाम, हिन्दी साहित्यानुशीलन, पृ0 4।

2- सांकृत्यायन, राहुल, हिन्दीसाहित्य का वृहत् इतिहास, हिन्दीकाव्यधारा, अवतरणिका, पृ0 1।

3- सिंह, डा0शम्भूनाथ, हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ0 220

4- शुक्ल, डा0रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ0 553-685

5- सिंह, डा0शम्भूनाथ, हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ0 220

6- वही, पृ0 219 7- वही, पृ0 669

स्थिति एवं युगबोध :--

यह वीर युग, सिद्ध सामन्त युग से भी जाना जाता है। यह समय भारत के इतिहास में सर्वाधिक दुर्भाग्यपूर्ण रहा।[1] इस समय निम्नलिखित परिस्थितियाँ विद्यमान थीं।

(1)राजनैतिक परिस्थितियाँ :-

सम्राट हर्षवर्धन (सन् 606 से 643) के निधन के पश्चात् उत्तरी भारत की शक्ति का क्रमशः ह्रास होता गया। नवीं शदी में प्रतिहार मिहिर भोज ने उसे पुनः सुव्यवस्थित किया। अफगानिस्तान इस समय भारतवर्ष के अन्तर्गत था। अतः मुसलमानों द्वारा यह आक्रमित होता रहा। इस शताब्दी तक पश्चिमोत्तर भारत में इनका आक्रमण न हो सका। दसवीं शताब्दी के अन्त में गजनी का राज्य महमूद गजनवी के हाथ आया। उसने उत्त शाह राज्य को अत्यन्त कठिनता से पाया। इसके बाद उसमें साम्राज्य का विस्तार बढ़ा और उसने पंजाब, कांगडा कोलेते हुए मथुरा तथा कन्नौज को लूटा। तदनन्तर सौराष्ट्र में आक्रमण करके सोमनाथ मन्दिर को लूटा। इसी समय दक्षिण का चोल राजा राजेन्द्र पूर्व की ओर अपने राज्य का विस्तार कर रहा था।

11वीं, 12वीं शताब्दी में दिल्ली में तोमर, अजमेर में चौहानऔर कन्नौज में 'गाहड वालों के राज्य स्थापित हो चुके थे। 1150 में तुर्कों को पंजाब से बीसल देव चौहान ने हटाकर हाँसीले हिमालय तक अपना राज्य कायम कर लिया।

सहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी गजनवी को अपने अधिकार में लेकर कई बार भारत में आक्रमण किया किन्तु पराजय ही हाथ आयी। अन्त में जब पृथ्वी राज चौहान जुझोती के राजा परमार्दिदेव से जूझ रहा था तभी गोरी ने गुजरात में आक्रमण कर दिया। जयचन्द्र की सहायता से पृथ्वी राज की हार हुई और मुहम्मद गोरी द्वारा मारा गया। इसके बाद कन्नौज एवं 'कालींजर' का पतन हुआ। इस तरह दिल्ली में तुर्क सल्तनत कायम हो गयी एवं धीरे धीरे सम्पूर्ण उत्तरी भारत में फैल गयी।

1- वर्मा, सत्यकाम, हिन्दी साहित्यानुशीलनः पृ० 65

इस प्रकार हिन्दू राजाओं की संकुचित दृष्टि के कारण समूचे भारत को राष्ट्र न मानने से वैयक्तिक पराक्रम के बावजूद वे आपस में लड़ते-झगड़ते रहे तथा विदेशी शक्तियों से पराभव प्राप्त करते रहे। राज्यों को सर्वोपरि सत्ता के रूप में समझा गया। अतः कलह, ईर्ष्या तथा द्वेष का पूर्ण साम्राज्य व्याप्त रहा।[1] इस तरह राजनैतिक दृष्टि से यह समय बहुत ही उथल-पुथल का रहा।

(2) सामाजिक परिस्थितियाँ :—

14वीं शती तक शासकों को विदेशी ही समझा जाता रहा।[2] जिससे कि रीति-नीति में हम उनसे घुलमिल नहीं पाये। धार्मिक अत्याचारियों द्वारा मन्दिर आदि को ध्वंस किया गया एवं बलात् धर्म परिवर्तन किए गये। छुआछूत के नियम बड़े कठोर होते जा रहे थे। रूढ़िगत धर्म के समान समाज भी रूढ़िग्रस्त हो चला था। राजपूत जाति के स्त्री पुरुष दोनों वीरता, आत्मोत्सर्ग जौहर शौर्य आदि के प्रतीक समझे जाते थे। स्वयंवर जैसे कार्यों में खून की नदियाँ बह जाती थीं। सामान्य स्त्री का समाज में कोई विशेष स्थान नहीं था वह मात्र भोग विलास की वस्तु मानी जाती थी। राजकुमारों को राजनीति व्याकरण तर्क शास्त्र, काव्यों आदि की शिक्षा प्रदान की जाती थी।

(3) धार्मिक परिस्थितियाँ :—

मोहम्मद कासिम का अरब से आक्रमण करने का एक मात्र उद्देश्य संसार में इस्लाम का संदेश फैलाना था। 11 वीं शती में नाथ सिद्ध, जैन साधक आदि पश्चिमोत्तर क्षेत्रों से पलायन कर गोरखपुर, बनारस, मध्यभारत आदि में आकर बसे। इस समय वैदिक एवं पौराणिक विविध रूपों के साथ बौद्ध एवं जैन धर्म वास्तविक आदर्शों से दूर हट गये थे। इनमें केवल जन्त्र मन्त्र तन्त्र में विश्वास करना ही शेष रह गया जिससे चमत्कार प्रदर्शनार्थ निरीह जनता को ठगने की प्रवृत्ति बढी एवं नैतिक स्तर इतना गिरा कि धर्म के नाम पर अधर्म का प्रचार होनेलगा। इन्हीं का अनुकरण वैष्णवों के पांचरात्र, शैवों के पासुपत, कलमुख, कापालिक, रसेश्वर जैन आदि सम्प्रदायों ने किया।

1- शर्मा, डा0शिवकुमार, हिन्दीसाहित्य युग एवं प्रवृत्तियाँ, पृ0 15

2- वर्मा, सत्यकाम, ~~पृ067~~ हिन्दी साहित्यानुशीलन पृ0 67

इकिर रामानुज, निम्बार्क आदि आचार्यों ने उक्त अवस्था सुधारने के लिए प्रयास भी किए एवं अपने-अपने सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया किन्तु इनका प्रभाव इस युग के काव्य में न पड़कर भक्तिकालीन काव्य में पड़ा।

(4)साहित्यिक परिस्थितियाँ ---

यह युग बहुत ही उथल-पुथल का था। प्रत्येक स्थान पर वीरता का प्रदर्शन हो रहा था। धार्मिक एवं सामाजिक तथा राजनैतिक परिस्थितियाँ अत्यन्त विषम थीं। इस समय प्रमुख रूप से सिद्ध साहित्य(चौरासी सिद्धों का समय 797 से 1257 माना गया है)।[1] नाथ साहित्य जैन साहित्य एवं हिन्दी साहित्य आदि पल्लवित हुए।

हिन्दी साहित्य में 12 ग्रन्थ विजयपाल रासो, हम्मीर रासो, कीर्तिलता, कीर्तिपताका, खुमानरासो, वीसलदेव रासो, पृथ्वीराज रासो, जयचन्द्र प्रकाश, जयमयंक, जस चन्द्रिका, परमाल रासो, खुसरो की पहेलियाँ, विद्यापति पदावली आदि हैं। इस काल में प्राप्त महाकाव्यों में निम्नलिखित प्रवृत्तियाँ प्राप्त होती हैं ---

अधिकांश रचनाएँ संदिग्ध हैं जिनमें ऐतिहासिकता का अभाव सा है। इनमें युद्धों का सजीव चित्रण किया गया है।

सभी चारण कवियों ने आश्रय दाताओं की ही प्रशंसा की है। इनके द्वारा समूचे भारतवर्ष को राष्ट्र नहीं माना गया बल्कि एक संकुचित क्षेत्र अर्थात् 10-20 गाँवों को राष्ट्र समझा गया।

वीर एवं श्रृंगार रस से सम्पूर्ण साहित्य ओत-प्रोत है।

प्रकृति चित्रण में नगर, नदी, पर्वत, आदि का सुन्दर चित्रण किया गया है। कवियों का जन जीवन से सम्पर्क न होने के कारण बहुत कम जन जीवन को महत्त्व दिया गया है।

छंदों में दोहा, तोटक, तोमर, गाथा, गाहा, पद्धरि, आर्या, रोला, उल्लाला एवं कुण्डलियों आदि का प्रयोग हुआ है।

भाषा अपभ्रंस प्रकृत डिंगल पिंगल आदि से मुक्त नहीं है।

1- शर्मा, शिवकुमार, हिन्दी साहित्य युग एवं प्रवृत्तियाँ, पृ0 19

(2) भक्तिकाल के महाकाव्य : स्थिति एवं युगबोध

सम्पूर्ण साहित्य की चर्चा साहित्यिक परिस्थितियों के अन्तर्गत हो जाती है। अतः महाकाव्यों की चर्चा भी उसी में समायोजित रहेगी जिससे इस काल के महाकाव्यों के विषय में साहित्यिक परिस्थितियों के अन्तरगत लिखा गया है। इस समय निम्नलिखित परिस्थितियां विद्यमान थीं।

(1) राजनैतिक परिस्थितियाँ :-

इस अन्तराल को दो भागों में आवंटित किया जा सकता है --

(1) प्रथम भाग सं0 1375 से 1583 जिसमें दिल्ली के शासक तुगलक एवं लोदी वंश के राजा रहे।

(2) द्वितीय भाग सं0 1583 से 1700 जिसमें मुगल वंश के बाबर, हुमायुँ, अकबर जहाँगीर तथा शाहजहाँ थे। यह समय सामान्य रूप से अशान्त एवं संघर्षमय रहा। मोहम्मद गोरी द्वारा जीते गये सम्पूर्ण क्षेत्र में तुर्कों का साम्राज्य था। 1295 में अलाउद्दीन खिलजी दिल्ली की गद्दी में बैठकर दक्षिण की ओर अपना राज्य बढ़ाने लगा। 1320 में गयासुद्दीन तुगलक राजा हुआ और वह भी अपने राज्य वर्धन में लग गया। कुछ समय बाद प्रान्तीय शासकों में स्वतंत्रता की प्रवृत्ति आने लगी तथा प्रत्येक दिन कोई न कोई शासक अपने को स्वतंत्र घोषित करता और दिल्ली शासक उसे अधीन करने का प्रयत्न करते। 1326 में मेवाड में हम्मीर सिसोदिया स्वतंत्र होगया। मदुरा और बंगाल मेंदिल्ली सल्तनत के सूबेदार स्वतंत्र राजा बन बैठे। फिरोज तुगलक के द्वारा ये विद्रोही दबाये गये किन्तु उसके उत्तराधिकारी निकम्मे निकले। इसी समय दक्षिण में विजय नगर और बहमनी राज्य संघर्षरत थे। 1398 में तैमूर के कारण तुर्क शासन और क्षीण हो गया।

15 वीं शताब्दी प्रान्तीय शासकों का युग था, मेवाड़ महाराणा लखा, चूडा और कुम्भा के शासन काल में काफी सम्पन्न हो गया। इसके अतिरिक्त मालवा गुजरात बंगाल, जौनपुर, कश्मीर, बुन्देलखण्ड, उड़ीसा आदि स्वतंत्र राज्य स्थापित हो गये। बाबर ने 1226 में इब्राहिम लोदी को पराजित किया। इसके बाद राणा सांगा एवं पठानों द्वारा बाबर का प्रतिरोध होता रहा। पठान शासन शेरशाह सूरी ने हुमायुं को पराजित किया। इसी समय जायसी का पद्मावत लिखा गया। तत्पश्चात् ~~अब~~ अकबर का एक विशाल साम्राज्य स्थापित हुआ। जिसमें अकबर द्वारा अनेकों युद्ध लड़े गये। शाहजहाँ के शासन

के अन्तिम दिनों में चम्पत राय तथा छिवा जी स्वतंत्रता हेतु लड़ते रहे।

इस प्रकार इस समय की भी राजनैतिक परिस्थितियाँ बहुत ही विषम रहीं, मुगल शासन आधिपत्य जमाते रहे एवं हिन्दू राजा स्वतंत्र होने की कोशिश में लगे रहे। कुछ मुसलमानों द्वारा हिन्दुओं में कहर ढाये गये किन्तु अधिकांश मुस्लिम शासक इस युग तक अपने को यहाँ से सम्बन्धित मानने लगे थे।

(2) सामाजिक परिस्थितियाँ :-

इस समय हिन्दुओं के सामाजिक नियम कड़े अवश्य होते जा रहे थे किन्तु मुगल शासक एवं हिन्दुओं के आपस में विवाह हो जाते थे। उदाहरण के लिए कश्मीर के सुल्तान शाहमीर की लड़कियाँ हिन्दुओं को एवं उसका लड़का हिन्दू सेनापति की लड़की से व्याहा गया। खानपान भी साथ ही होता था। जागीरदारों को बढ़ावा, विलासी मुस्लिम अधिकारियों से अपने को बचाने के लिए बाल विवाह पर्दा प्रथा, ऊँच-नीच का भेद, सिया सुन्नी की असमानता आदि इसी युग की उपज है। इस समय अलाउद्दीन जैसे क्रूर शासक भी थे जो किसानों से उनकी फसल व 50% तक कर के रूप में जमा कर लेते थे।

(3) धार्मिक परिस्थितियाँ :- तीन प्रकार की धार्मिक परिस्थितियाँ विद्यमान थीं --

(क) बौद्धधर्म की विकृति परिस्थिति :-

महानिर्वाण के पश्चात् हीनयान और महायान दो सम्प्रदाय जनता के सामने थे। हीनयान अत्यन्तजटिल था अतः बोधगम्य न होने के कारण टिक न सका जबकि महायान अपने दुर्गुणों जन्त्र, मन्त्र, अभिचार, चमत्कार, मांस, मैथुन, मुद्रा, मद्य आदि के कारण अधः पतन प्राप्त कर रहा था। यन्त्रयान से बज्रयान का आविर्भाव हुआ जिसमें 84 सिद्ध दीक्षित हुए हुए। इन्होंने जन्त्र मन्त्र को अपनाया किन्तु परम्परा गत रूढ मार्ग को बिलकुल बदल दिया जिसे महा सम्प्रदाय का बढ़ा हुआ रूप मानना समीचित है। प्रमुख सिद्धान्त कर्मकाण्ड को न मानना, गुरू परमावश्यक ईश्वर एक निरंजन घटम्घट व्यापक है, आदि थे।

(ख) वैष्णव धर्म की परम्परागत परिस्थितियाँ :-

विष्णु के अवतारों — राम कृष्ण की कल्पना भी की गयी। रामानन्द ने भक्ति पट सर्वसाधारण के लिए खोल दिया और तुलसी के लिए ये एक पथद्रष्टा की

भाँति सामने आये। राम भक्ति धारा के उपासक राम भजन को ही सर्वोत्कृष्ट माना। महाभारत में वर्णित दुष्टों के संहारक अधर्म विनाशक तथा धर्मरक्षक आदि रूपों में कृष्ण लीलाओं का वर्णन हुआ। तथा आध्यात्मिक व्याख्या करते हुए उन्हें अलौकिकशक्ति माना गया। बाद के वर्णन में वासनात्मक उपस्थिति होने के कारण उस अलौकिकरूप को रसिया अथवा छैला का रूप दे डाला गया।

(3)सूफी धर्म :—

मुस्लिम साम्राज्य स्थापन पूर्व ही सूफियों का इस्लामी वातावरण भारतवर्ष में प्रवेश कर गया था। भारतीय अद्वैतवाद के अपने आधार पर अपनाकर निराकार ईश्वर का प्रसार किया। योग से प्रभावित ये लोग अपने धर्म के अग्रसर नाथ सम्प्रदाय आदि के विचारों को ग्रहणकरते हुए हिन्दू मुस्लिम के अजनबीकरण को दूर करने में संलग्न रहे।

(4)साहित्यिक परिस्थितियाँ :—

यह युग साहित्य साधना की दृष्टि में हिन्दी साहित्य के इतिहास में स्वर्ण युग माना जाता है। हिन्दी साहित्य का सर्वोत्कृष्ट काव्य('रामचरित मानस)' इसी युग में लिखा गया। रामचरित मानस के अतिरिक्त महाकवि जायसी का 'पद्मावत्' महाकाव्य भी लिखा गया जो सूफी साहित्य में अद्वितीय है, और इसे ही सूफी साहित्य में विद्वान् प्रेममूलक महाकाव्य स्वीकार करते हैं।[1] इसी प्रकार रामकाव्य की विस्तृत परम्परा में 'रामचरित मानस' ही महाकाव्य की कोटि में आने योग्य है।[2] कृष्णकाव्य में कोई भी कृति महाकाव्य कहलाने योग्य नहीं है। इस युग में कई साहित्यिक धाराएँ प्रवाहित हुईं यथा —

(क) निर्गुण सन्त साहित्य ::: प्रमुख कवि एवं ग्रन्थ इस प्रकार हैं —

(1)कबीर — 58 रचनाएँ हैं प्रमाणिक केवल बीजक है इसके तीन भाग हैं-साखी, रमैनी, एवं शबद।

(2)रैदास — 100 पद फुटकर रूप में 'रैदास की बानी' में संगृहीत हैं।

1-डा० शम्भूनाथ सिंह, हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास, पृ0 409

2- डा0कृष्णदत्त पालीवाल, मध्ययुगीन महाकाव्यों में नायक, पृ0 195

(3) मलूकदास -- प्रमुख रचनाएँ ज्ञानबोध, रामावतारलीला आदि।

(4) दादू दयाल -- मुख्य रचनाएँ हरडेबानी (अंगवन्धु) कायाबेलि।

(5) गुरु नानक देव - स्वतंत्र गीत लिखे जो आदि ग्रन्थ में संगृहीत हैं।

(6) गुरु दास - इन्होंने अर्जुन देव के आदेश पर आदि ग्रन्थ का संकलन किया।

(7) अर्जुनदेव -- ये गुरु रामदास के पुत्र थे इन्होंने अपने चारों आदि गुरुओं की वाणी का संग्रह करवाया।

(8) शेख फरीद - नानक के समकालीन थे इन्होंने मात्र 130 दोहे लिखे।

(2) कृष्णभक्ति साहित्य :-

(1) सूरदास - प्रमुख रचनाएँ सूरसागर, सूरसारावली, साहित्य लहरी आदि।

(2) कुम्भनदास - इन्होंने लगभग 200 फुटकर पदों का सृजन किया।

(3) परमानन्ददास - प्रमुख ग्रन्थ परमानन्द सागर है।

(4) कृष्ण दास - इनके पद संग्रह में 676 पद मिलते हैं। इसके अलावा जुगुल भाव चरित्र नामक एक लघु ग्रन्थ भी मिलता है।

(5) गोविन्द स्वामी -- कुल 252 पद प्राप्त होते हैं।

(6) नन्ददास - 13 ग्रन्थ उपलब्ध हैं। रास पंचाध्यायी, रसमंजरी, भंवरगीत, भागवत दशम स्कन्ध आदि प्रमुख हैं।

(9) चतुर्भुजदास - प्रमुख रचनाएँ चतुर्भुजकीर्तन संग्रह, दानलीला, कीर्तनावली आदि।

(8) मीराबाई - मीराबाई की मुख्य रचनाएँ नरसी जी रो माहेरी, गीतगोविन्द टीका राजसोरठा के पद एवं पदावली आदि।

(9) रसखान -- प्रेमवाटिका, सुजान, रसखान आदि।

(ग) रामभक्ति साहित्य

(1) तुलसीदास – प्रामाणिक रचनाएं बारह 'रामचरित मानस' महाकाव्य लिखा जो हिन्दी जगत में सर्वोत्तम ग्रन्थ समझा जाता है।

(2) हृदयराम – हनुमन्नाटक का छायानुवाद किया है।

(3) अग्रदास स्वामी – द्वितीय   , ध्यानमंजरी, रामध्यानमंजरी, कुण्डलियाँ आदि हैं।

(4) नाभादास – भक्तमाल एवं अष्टमाल की गद्य एवं पद्य में रचना, गद्य उत्कृष्ट कोटि का।

(5) प्राणचन्द – रामायण, महानाटक का प्रणयन किया।

(घ) सूफी साहित्य –

(1) कुतुबन – प्रमुख रचनाएं मृगावती।

(2) जायसी – आखरीकलाम, अखरावट, एवं पद्मावत् प्रमुख हैं।

(3) मंझन – मधुमालती, प्रेमकथा प्रमुख हैं।

(4) उसमान -- चित्रावली।

(5) जानकवि – 21 रचनाएँ सूफी प्रेमगाथा सम्बन्धी लिखीं।

इन कवियों के अतिरिक्त कुछ अन्य प्रमुख कवि हैं जो उपर्युक्त चारों प्रकारों से भिन्न हैं। उनमें प्रमुख है -- पृथ्वीराज वन्दीजन (वेलिक्रसम, रुक्मिणीरी, गंगा-लहरी) रहीमकी ग्यारह रचनाएं हैं, जिनमें से रहीम सतसई, कवित्त संग्रह, रासपंचाध्यायी एवं रहीम काव्य प्रमुख हैं तथा गोसाईं, गोकुल नाथ आदि।

रीतिकालीन महाकाव्य : स्थिति एवं युगबोध

(1) राजनैतिक परिस्थितियाँ – अकबर के पश्चात् जहाँगीर एवं शाहजहाँ के काल में मुगल साम्राज्य सुरा सुन्दरी में व्यस्त था। शाहजहाँ में अवश्य ही धार्मिक सहिष्णुता एवं सांस्कृतिक कलागत उदारता विद्यमान थी। सं0 1775 में रोगग्रस्त शाहजहाँ ने अपने पुत्रों को

हिंसक पशुओं की भाँति गद्दी के लिए लड़ते देखा जिसके परिणाम स्वरूप यह हुआ कि शाहजहाँ की अत दोनों विशेषताएँ बिखर गयीं। औरंगजेब की राज्यलिप्सा के कारण उसकी नीति से देश के नरेश अकुलाहट सा अनुभव करने लगे। यह साहित्य, संगीत, कला सौन्दर्य आदि के लिए बहुत ही निष्ठुर था। औरंगजेब के बाद जो मुगल शासन आया वह अत्यन्त ही पंगु था। अतः अनेकों प्रदेश स्वतंत्र हो गये। जाटों, राजपूतों, एवं बन्दाबैरागी द्वारा बहादुर शाह एवं फर्रुखसियर तंग थे किन्तु नादिरशाह तथा अहमद शाह अब्दाली के आक्रमणों से मुस्लिम साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। इस समय अंग्रेज अवसर का लाभ उठाकर बक्सर के युद्ध को जीतकर मुगल साम्राज्य की इतिश्री कर दी। जहाँदर-शाह एवं मुहम्मद शाह को रंगीले आद की उपाधि प्रदान की गयी। ये इतने विलासी थे कि नर्तकियों तक को शासन की बागडोर सौंपने लगे। उदाहरण के लिए लालकुंवरि नर्तकी। इस समय राजमहलों में वेश्याओं एवं नर्तकियों की तूती बोलती थी। देशी शासक भी इन्हीं का अनुकरण कर रहे थे।

इस प्रकार राजनैतिक दृष्टि से इस काल का पूर्वार्ध जितना ही शान्त था उतना ही बाद में अशान्त निकला जिससे कवियों को राजनैतिक उद्बोधन करने का अवसर ही नहीं मिला और न उन्हें इसका कुछ भान ही था। कवि कविता को क्रीड़ासाधन मात्र जान रहे थे उन्हें जन साधारण की कोई चिन्ता नहीं थी। हाँ कभी-कभी स्वतंत्रता सेना - नियों जैसे छत्र साल, चम्पतराय, शिवाजी आदि के दरबारों में देशप्रेम की करुण लहरी अवश्य निनादित हो उठती थी।

(2) धार्मिक परिस्थितियाँ :--

यह युग अन्धविश्वास, रूढ़ियों, वाह्यआडम्बरों, कामुकताओं, वासनामयी उत्कण्ठाओं का युग था। इसी युग के कवियों ने अलौकिक कृष्ण को लौकिक मानव ही नहीं एक रसिया अथवा छैला का रूप दे डाला था। राधा के चरित्र को सामान्य पतितानारी से भी गर्हित कर दिया। सीता एक विलासमयी नारी के रूप में चित्रित होने लगी थीं। यहाँ तक कि निर्गुण भक्तिधारा में भी विलासिता की कसमकस उभरने लगी थी। सूफी सम्प्रदाय में स्थूल श्रृंगार नखशिख वर्णन एवं नायिका भेद वर्णन चरमसीमा पर था यह भी इस काल की धार्मिक भावना थी।

(3)सामाजिकपरिस्थितियाँ :—

जैसी राजनैतिक एवं धार्मिक परिस्थितियाँ होती हैं, सामाजिक परिस्थितियाँ उनके अनुरूप ही हुआ करती हैं। अतः शासकों की भाँति प्रजा भी विलास में मग्न थी। नारी विलास की सामग्रीमात्र समझी जाती थी, छोटे-मोटे सामन्तों के पास रखैलों एवं उनकी परिचारिकाओं की भरमार थी। यौन सम्बन्ध में किसी प्रकार का नियन्त्रण नहीं था तथा द्यूतक्रीड़ा जीवनांग बन गया था। ज्योतिषियों की वाणी, शकुन शास्त्र सामुद्रिक शास्त्र आदि पर पूर्ण रूपेण विश्वास किया जाता था। श्रमिक वर्ग, कृषक, समाज, कला-कौशल - वर्ग अत्यन्त पीड़ित थे। इस युग में सभ्यता और संस्कृति के ह्रास के साथ आर्थिक संकट भी विद्यमान था। 'स्वामिनः सुखाय' कला में बाजारूपन अधिक था जो वासना की सणान्ध से ओत-प्रोत थी।

(4)साहित्यिक परिस्थितियाँ --

इस समय कवियों के तीन वर्ग दृष्टिगोचर होते हैं। प्रथम प्रकार के कवि जनजीवन से अलग विलासिता व ऐश्वर्य से अन्धा था किन्तु स्वयं के दुःख-सुख से अनभिज्ञ न था। द्वितीय वर्ग दरबारी चकाचौंध से दूर एवं तृतीय वर्ग ऐसा था जो नगर एवं ग्राम्य जीवन से परिचित था जिसने कठिनाइयों को देखा था। विलासिता का नग्न नृत्य भी अनुभव किया था और अपनी इच्छा से दरबार में आता जाता था। और रणभूमि को भी दृष्टिगत किया था। अतः इस युग में महाकाव्यों एवं खण्डकाव्यों की कल्पना करना व्यर्थ है, फिर भी कुछ कवियों के सतत प्रयासों एवं सरस्वती साधना के द्वारा कुछ ग्रन्थों की रचना हुई जिन्हें अत्यन्त क्षीण आवाज के द्वारा महाकाव्य की अभिधा प्रदान की जा सकती है। ये प्रमुख महाकाव्य कोटि के ग्रन्थ केशव की रामचन्द्रिका' मानकवि का 'राजविलास' गोरेलाल का 'छत्र प्रकाश' गुमान मिश्र की 'कृष्णचन्द्रिका' जोधराज का 'हम्मीर रासो' आदि हैं।[1] जगन्नाथ सहाय का 'कृष्ण सागर' तथा ब्रजवासीदास का 'व्रज विलास' इसी कोटि में रखा जा सकता है। प्रवृत्ति के आधार पर इस युग के कवियों का निम्नलिखित श्रेणियों में रख सकते हैं।

1- सिंह, डा0 शंभूनाथ, महाकाव्यों का स्वरूप विकास, पृ0 67।

(1) आचार्य कवि -- जैसे केशव, चिन्तामणि, मतिराम, भूषण, देव, भिखारीदास, जसवन्त सिंह, पद्माकर, रसलीन आदि।[1]

(2) श्रृंगारी कवि - बिहारी, घनानन्द, बोधा, रसनिधि, आलम, ठाकुर आदि।[2]

(3) भक्त सन्त कवि - गुरु गोविन्द सिंह, सुन्दरदास, विश्वनाथ सिंह जूदेव, संत तुकाराम, समर्थ रामदास, सभाचन्द सोंधी, निश्चलदास, गरीबदास, ग्वालआदि।[3]

(4) वीररस के कवि - लाल, जोधराज, सूदन सबलसिंह चौहान, कविराज सूर्यमल आदि।[4]

(5) नीतिसूक्ति व प्रकृति चित्रण के कवि - वृन्द, वैताल, गिरधर, कविराम, बाँकीदास आदि।

1- वर्मा, सत्यकाम, हिन्दी साहित्यानुशीलन, पृ0 235

2- वही, पृ0 236

3- वही, पृ0 237

4- वही, पृ0 238

आधुनिक काल के महाकाव्य : स्थिति एवं युगबोध

आधुनिक काल के अन्तर्गत सन् 1900 से 1964 तक के अन्तराल को लिया गया है जिसे विद्वानों ने विभिन्न भागों में आवंटित किया है।[1]

आचार्य शुक्ल -- इनका आधुनिक काल के अन्तर्गत काव्यखण्ड का वर्गीकरण निम्नांकित है:--

(1) पुरानी धारा सन् 1900 से 1925 तक

(2) नई धारा प्रथम उत्थान 1925 से 1950

(3) द्वितीय उत्थान, 1950 से 1975

(4) तृतीय उत्थान, वर्तमान काव्य धाराएँ सन् 1975 से

उपर्युक्त कालों में क्रमशः निम्नलिखित काव्यधाराएँ प्रस्फुटित हुई --

(1) बृजभाषा काव्यपरम्परा

(2) द्विवेदी काल मे प्रवर्तित खड़ीबोली की काव्य धारा

(3) छायावाद

(4) स्वच्छन्द धारा

डा० गणपति चन्द्र गुप्त :--

इन्होंने लिखा है कि "प्रारम्भ में अपने परम्परागत विचारधारा का अनुसरण करते हुए आधुनिक युग की कविता की दृष्टि से पाँच खण्डों में विभक्त किया है।[2]"

(1) भारतेन्दु युग (सन् 1857 से 1900 तक)

(2) द्विवेदी युग (सन् 1900 से 1920 ई० तक)

(3) छायावाद युग (सन् 1920 से 1937 ई० तक)

(4) प्रगतिवादी युग (सन् 1937 से 1945 ई० तक)

(5) प्रयोगवाद युग (सन् 1945 से 1964 ई० तक)

यह विभाजन इस धारा को जन्म देता है कि मानों प्रत्येक नये युग के बाद पूर्ववर्ती परम्परायें और प्रवृत्तियाँ लुप्त हो गई हों। जबकि वास्तव में ऐसा नहीं है। प्रत्येक युग में नई प्रवृत्ति के उदय के बाद भी दूसरी प्रवृत्तियाँ उसके समानान्तर

1- डा० रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० 553-685

2- डा० गणपतिचन्द्र गुप्त, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० 603

विकसित होती रही हैं। यदि वास्तविकता के आधार पर आधुनिक युग की परम्पराओं केतालिका के रूप में प्रस्तुत किया जाये तो उसकी स्थिति इस प्रकार होगी —

(1) भारतेन्दु युग सन् 1857 ......।

(2) द्विवेदी युग सन् 1900 ...... ।

(3) छायावाद युग सन् 1920 ....।

(4) प्रगतिवादी युग सन् 1937 ......।

(5) प्रयोगवाद युग सन् 1945 ....।[1]

इसके अतिरिक्त त्रिगुणायत ने छायावाद युग 1910--1937, प्रगतिवादी युग 1936—1942, प्रयोगवाद युग 1943 आदि काव्य प्रवृत्तियों का काल परसीमन प्रस्तुत किया। डा0 राम प्रसाद मिश्र ने निम्नलिखित ढंग से वर्गीकृत किया —

(1) सुधारवादी युग (भारतेन्दु युग सन् 1850 से 1900)

(2) आदर्शवादी युग (द्विवेदी युग सन् 1900 से 1925)

(3) रोमांटिक युग (छायावादी युग सन् 1925 से 1940)

(4) यथार्थवादी युग (प्रगतिवादी युग सन् 1940 प्रयोगयुग)

उपर्युक्त विद्वानों के वर्गीकरणों पर दृष्टिपात करने से यह व्यक्त होता है कि अत काव्यधारा प्रमुख रूप से तटयुगीन प्रवृत्तियों का अवगाहन करता हुआ अग्रसर हुआ। प्रत्येक युग रेलवे स्टेशन (लौहपथगामिनी के रुकने का स्थान) की तरह उदय नहीं होता। अर्थात् जैसे लौह पथगामिनी एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन एवं तीसरे स्टेशन की ओर अग्रसारित होती है वैसे ये युग नहीं। एक युग चलता रहता है और उसी के समान्तर दूसरा युग प्रारम्भ हो जाता है, किन्तु पहले परिलक्षित नहीं होता बाद में जब वह विराट रूप में दृष्टिगोचर होने लगता है तभी से उसका युग आ जाता है। फिर भी कुछ दिनों तक उसके साथ पहले वाला युगीन प्रवृत्तियाँ मन्दरगति से प्रवाहित होती रहती हैं। आधुनिक युग की स्थिति एवं युगबोध को उपर्युक्त विभिन्न युगों के आधार पर अत्यन्त संक्षेप में वर्णन निम्नलिखित है —

1- डा0विश्वम्भर दयाल अवस्थी, छायावादोत्तर हिन्दी प्रबन्धकाव्यों का सांस्कृतिक अनुशीलन, पृ09

(1) भारतेन्दु युग --

यह काल आधुनिक हिन्दी-साहित्य का प्रवेश द्वार कहा जाता है। इसमें कविता में नवीन पिछयों का ग्रहण एवं पुरानी परम्परा का संरक्षण साथ ही सम्पन्न हुआ। कवि अथवा साहित्यकार हिन्दू समाज में प्रचलित कुरीतियाँ, अन्ध विश्वास, स्वार्थपरता पाश्चात्य साहित्य एवं रंग ढंग को अपनाने वाले व्यक्तियों की कटु आलोचना की। यह उस समय की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों के अनुकूल ही था।[1] इस समय उक्त बातों के अतिरिक्त रीति, शृंगारी परम्परा धार्मिक एवं नैतिक कविता, उपदेश एवं भक्ति से परिपूर्ण काव्य की सृजन उसके समनान्तर ही हुआ। भारतेन्दु कालीन कविता के विकाश में भारतेन्दु, प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिका दत्त व्यास, राधाकृष्ण दत्त और ब्र बद्री नारायण चौधरी के नाम सर्वप्रमुख हैं।[2]

(2) द्विवेदी युग :—

सन् 1885 ई0 में कांग्रेस की स्थापना हुई। 1905 में बंग भंग प्रस्ताव ने देश की क्रान्तिकारी चेतना को एक चैलेन्ज दिया जिससे भारतीयों के हृदय में स्वतंत्रता के मूल्य की आग शान्ति प्रेमी गांधी जी के आगमन तक भी न शान्त हो पाई और सन् 1934 तक निरन्तर धधकती रही। 1915 में अफ्रीका में गांधी जी के शान्त आन्दोलन ने युगीन राजनीतिक एवं जन साधारण के मस्तिष्क को नवीन मोड़ प्रदान किया। 1918 ई0 में प्रथम विश्वयुद्ध शान्त हुआ किन्तु भारत को राहत न मिल सकी। 1020 में सत्याग्रहियों का तांता लगना शुरू हुआ। अतः यह युग राजनैतिक दृष्टि से जागरूक काल कहा जा सकता है। इस प्रकार के वातावरण में देशप्रेम, राष्ट्रीयता, स्वसंस्कृति आदि विविध रूपों की प्रधानता होना स्वाभाविक ही था। इस युग में प्राचीन साहित्यिक परंपराओं का आधार लेकर उनमें जागरण की नई छाप लगा दी गयी जिसकी स्पष्टता सन् 1914 तक अवश्य देखी जा सकती है। द्विवेदी युग में भाषा संस्कार, मराठी शैली की इतिवृत्तात्मकता आदि का अनुकरण किया गया और इस युग में राष्ट्रीय काव्य की आशातीत वृद्धि

1- शर्मा, डा0 शिवकुमार, हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियाँ, पृ0 437

2- वही, पृ0 439

हुई। दि्वेदी जी सहित उस युग में प्रतिभासम्पन्न साहित्यकार थे। महावीर प्रसाद दि्वेदी आलोचना, निबन्ध, कविता, पत्रकारिता आदि के क्षेत्रों में ऐतिहासिक महत्त्व रखते थे। क्योंकि सभी युगीन साहित्यकार प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में उनसे प्रभावित थे। कविता की एक निश्चित इतिवृत्तात्मक विधा ही चलती रही अतः इतिवृत्तात्मक पद्य-प्रबन्धों ~~मुक्तों~~ मुक्तकों, खण्डकाव्य की रचनाओं का सृजन प्रथम विश्वयुद्ध तक चलता रहा जो छायावाद की पूर्व भूमिका ही कहीं जा सकती है।[1]

(3)छायावाद युग :—

यह काव्यधारा वास्तव में प्रथम विश्वयुद्ध के अन्तर्गत (1918)में फूट पड़ी एवं दि्वतीय विश्वयुद्ध के आरम्भ में वैसे ही लुप्त हो गयी। राष्ट्रपिता गांधी जिनके अस्त्र, सत्य, अहिंसा असहयोग नीति के कारण कवि पलायनवाद --"ले चल मुझे भुलावा देकर मेरे नाविक धीरे-धीरे" की ओर अग्रसर होते हुए एकान्त की कल्पना करने लगा था। किन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि वह निराश हो गया था। छायावादी कविता राष्ट्रीय आन्दोलन या जागृति का सीधा परिणाम नहीं बल्कि पाश्चात्य अर्थव्यवस्था और संस्कृत के सम्पर्क से आने के परिणाम स्वरूप हमारे देश और समाज के बाहरी और भीतरी जीवन में प्रत्यक्ष तथा परोक्ष परिवर्तन हो रहे थे। उन्होंने जिस तरह सामूहिक व्यवहार और कर्म के क्षेत्र में राष्ट्रीय एकता की भावना जगाई और राष्ट्रीय संघर्ष की प्रेरणा दी, इसी तरह सांस्कृतिक क्षेत्र में स्वच्छन्दता वाद की प्रवृत्ति को प्रेरणा दी।[2]

इस प्रकार इस युग की कविता स्वच्छन्दतावाद एवं व्यक्तिवाद से मुक्त थी कुछ आलोचक छायावाद को पाश्चात्य साहित्य की रोमांटिक धारा तथा बंगला-साहित्य का अनुकरण मात्र मानते हैं किन्तु यह उचित नहीं। छायावादी कविता का अपना जीवन -दर्शन एवं भारतीय सामाजिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों की अनुरूपता का प्रस्फुटन विद्यमान है। इस समय के काव्य में व्यक्तिवाद, प्राकृतिक सौन्दर्य, नारी का सौन्दर्य और प्रेम रहस्यवाद, स्वतंत्रता का आह्वान, स्वच्छन्दतावाद ~~वेदना~~ वेदना और निराशा, मानवतावाद आदर्शवाद प्रतीकात्मकता आदि का सुन्दर समावेश हुआ है।

1- शर्मा, डा0शिवकुमार, हिन्दी साहित्य युग और प्रवृत्तियां, पृ0446

2- वही, पृ0 468

(4) प्रगतिवादी युग :—

प्रगतिवाद साहित्य का मूलाधार कार्लमार्क्स की विचारधारा है। जिसे तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है।

(1) द्वन्द्वात्मक भौतिक विकासवाद

(2) मूल्यवृद्धि का सिद्धान्त।

(3) मूल्य सभ्यता के विकास की व्याख्या।

द्वितीय विश्वयुद्ध के आरम्भ होने से महँगाई, दरिद्रता, वर्गवाद का बोलबाला बढ़ा। पूँजीपति श्रमिक एवं शोषक तथा शोषित वर्ग की उत्पत्ति हुई जिससे इस दयनीय स्थिति का प्रभाव कवि पर पड़ा जिससे उनकी दृष्टि में मानव ही सर्वोपरि हो गया। एवं उसने ईश्वर की सत्यता, परलोक, भाग्यवाद, धर्म, स्वर्ग, नरक आदि के पचड़े से दूर ही खड़ा रहा। उसके लिए आर्य, अनार्य ईसाई, यहूदी, गोरा-काला, ब्राह्मण सूद्र आदि का भेद बिल्कुल निरर्थक था उसने मन्दिर, मस्जिद, गीता, कुरान, अन्धविश्वास, मिथ्या परम्पराओं आदि को एक तरफ रखकर मानव रूप में अपनाया और तभी तो "दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता" के साथ "पापी महलों का अहंकार देता मुझको तब आमन्त्रण" स्वर गूँज उठा। तभी तो कुछ कवि 'ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल पुथल मच जाये,' क्रान्ति के लिए उठ खड़े हुये। परम्परा से आ रही नारी चित्रण के विरोध में 'मुक्त करो नारी को' घोष निनादित हो उठा।

इस प्रकार से यह युग पूर्ण जागरणकाल था। साहित्य का प्रत्येक क्षेत्र अपने में पूर्ण था एवं समसामयिक कुरीतियों को दूर करके नवीन युग विस्थापन के लिए प्रतिक्षण प्रयत्नशील था।

(5) प्रयोगवाद युग :—

यह युग 1945 के लगभग प्रारम्भ होता है। इसके पूर्व एवं पश्चात का समय भी बहुत ही संसयपूर्ण था। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति हो गयी थी। भारत स्वतंत्र होने को प्रतिपल छटपटा रहा था। शोषण की सीमा एवं शोषित वर्ग का क्रन्दन गगनभेदी हो रहा था। अगस्तक्रान्ति, आजादहिन्द आन्दोलन, बंगाल का अकाल, स्वतंत्रता और

विभाजन, विभाजनोत्तर, साम्प्रदायिक रक्तपात, महात्मा गाँधी की हत्या आदि घटनाएँ इसके अभ्युदयकाल में एक के बाद एक घटित हो रही थी। अतः अपनी मूल भावना का क्रान्ति की चाह' के लिए इसका उदय हुआ एवं अज्ञेय जैसे प्रबुद्ध पण्डित एवं युगचेतना सम्पन्न व्यक्ति के नेतृत्व में प्रकाशित होने वाले 'तार सप्तक' दूसरा एवं तीसरा सप्तक ने नया स्वरूप इंगित किया।[1] प्रयोगवाद के आधार पर विश्व की सम्पूर्ण पुस्तकें परिवर्तन शील हैं। अतः मानव मूल्य भी परिवर्तनशील होना चाहिए। विज्ञान के आधार पर तारों पर मानव पहुँच तो सकता है पर जो व्यक्ति पेट भर भोजन नहीं पाता उसकी कल्पना से वह सब परे है और मानव की इस दशा को उसने उपेक्षित ही पाया। शायद इसीलिए उसके नये उपमान जो अत्यन्त तुच्छतम थे मानव के प्रति उपयुक्त जान पड़ते हैं क्योंकि जैसे उस तुच्छ वस्तु का मूल्य नहीं वैसे सामान्य मानव का भी तो नहीं है। 'क्रान्ति' के लिए उसकी चाह है परन्तु वह सामाजिक न होकर व्यक्ति मात्र की है। ~~उप~~ प्रयोगवाद का जन्म तीन कारणों से हुआ —

(1) प्राचीन कविता छायावादी तथा प्रगतिवाद की परम्पराबद्धता और रूढ़ग्रस्तता।

(2) बदलते हुए सामाजिक सत्यों और मूल्यों को उद्घाटित करने के लिए नवीन अभिव्यंजना की आवश्यकता।

(3) जीवन का अनुभव जगत के नये पहलुओं को नई दृष्टि से देखना और उन्हें नये चित्रों प्रतीकों अलंकारों द्वारा अभिव्यक्त करना।[2]

प्रयोगवाद के प्रमुख कवि — अज्ञेय, गजानन मुक्तिबोध, नेमचन्द्र जैन, भारत भूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरजाकुमार माथुर और राम विलास शर्मा, (प्रथम तार सप्तक 1943) 1951 में द्वितीय तारसप्तक प्रकाशित हुआ जिसमें भवानी शंकर मिश्र, शकुन्तला माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेशकुमार मेहता, रघुवीर सहाय तथा धर्म भारती की कविताएँ संगृहीत हैं। इनके अलावा लक्ष्मीकान्त शर्मा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, विजयदेव नारायण, कुँवर नारायण, जगदीश गुप्त, दुष्यन्त कुमार, केदारनाथ सिंह, रमेश कुन्तल मेघ, हरीनारायण व्यास आदि प्रमुख हैं। इस युग

1- वर्मा, सत्यकाम, हिन्दी साहित्यानुशीलन, पृ0453

2- शर्मा, डा0 शिवकुमार हिन्दीसाहित्य; युग और प्रवृत्तियाँ, पृ0513

की कविता कीनिम्नलिखित विशेषतायें हैं --

(1) घोर अहंनिष्ठवाद।

(2) अतिनग्न यथार्थवाद।

(3) निराशावाद।

(4) अतिबौद्धिकता।

(5) वैज्ञानिक युगबोध एवं नये मूल्यों का चित्रण।

(6) रीतिकाव्य की आवृत्ति

(7) उपमानों की नवीनता आदि हैं।

आधुनिक काल में महाकाव्य

आधुनिक काल के किसी भी महाकाव्य को यदि विभिन्न व्यक्त महाकाव्यों की कसौटी में कसें तो उनके मतों में निश्चय ही विविधता दृष्टिगोचर होगी। जैसा कि खड़ीबोली के गौरव ग्रन्थ नामक पुस्तक में श्री 'मानव' ने साकेत प्रियप्रवास और कामायनी को महाकाव्यत्व की कसौटी में अतिखोटा सिद्ध किया है। जबकि डा0 नगेन्द्र, डा0 गोविन्दराय आदि ने इनको महाकाव्य समझा। अतः प्रत्येक ग्रन्थ के विषय में 'मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना' कहावत चरितार्थ होती है। सभी आधुनिक महाकाव्यों को यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाये तो कुछ न कुछ अभाव परिलक्षित होता पर समग्र रूप से उन्हें नकारा नहीं जा सकता, किन्तु कुछ महाकाव्य ऐसे भी हैं जिनकी पद प्रतिष्ठा आग्रहमात्र कही जा सकती है। एवं उनके महाकाव्य की योग्यता का अभाव सा प्रतीत होता है जिससे इन्हें तीन कोटियों में विभाजित किया गया है।

(1) प्रमुख काव्य

(2) सामान्य महाकाव्य

(3) कथित महाकाव्य।[1]

(1) प्रमुख महाकाव्य :— प्रियप्रवास, नल नरेश, कामायनी, वैदेही वनवास, कृष्णायन, साकेतसन्त, रामकथा दमयन्ती आदि।

(2) सामान्य महाकाव्य :– नूरजहाँ, सिद्धार्थ, दैत्यवंश, अंगराज, वर्द्धमान, रावण, जयभारत, पार्वती, रश्मिरथी, मीरा, एकलव्य, उर्मिला, तारकवध, सेनापति, कर्ण आदि।

1- डा0 वर्णिणा शर्मा, आधुनिक हिन्दी महाकाव्य, पृ0 27

(3) तथाकथित महाकाव्य :— रामचरित चिन्तामणि, श्री रामचन्द्रोदय, हल्दीघाटी, श्रीकृष्ण-चरित मानस, कुरुक्षेत्र, आर्यावर्त, जौहर, महामानव विक्रमादित्य, जन-नायक, जगदालोक, देवार्चन, झाँसी की रानी, हनुमत्चरित्र, प्रतापमहाकाव्य, युगसृष्टा प्रेमचन्द श्री सदाशिव चरितामृत, वाणभट्टरी, लोकायतन।

उपर्युक्त महाकाव्यों की सूची समयानुसार निम्नलिखित रूप में औचित्यपूर्ण होगी।

प्रमुखमहाकाव्य	रचयिता	प्रकाशन वर्ष
प्रियप्रवास	श्रीअयोध्या सिंह उपाध्याय हरिऔध	1915
साकेत	श्रीमैथिली शरण गुप्त	1919
रामचरित चिन्तामणि	श्री रामचरित उपाध्याय	1920
नलनरेश	श्री रामचरित उपाध्याय	1933
कामायनी	श्री जय शंकर प्रसाद	1935
नूरजहाँ	श्री गुरु भक्त सिंह	1935
सिद्धार्थ	श्री अनूप शर्मा	1937
श्री रामचन्द्रोदय	श्री रामनाथ ज्योतिषी	1937
वैदेही वनवास	श्री हरिऔध	1939
हल्दीघाटी	श्री श्यामनारायण पाण्डेय	1939
कृष्णचरित मानस	श्री प्रद्युम्न दुर्गा	1941
कृष्णायन	श्री द्वारिका प्रसाद मिश्र	1943
कुरुक्षेत्र	श्री दिनकर	1943
आर्यावर्त	श्री मोहनलाल मेहता	1943
जौहर	श्री श्यामनारायण पाण्डेय	1945
महामानव	श्री ठाकुर प्रसाद सिंह	1946
साकेतसंत	श्री बलदेव प्रसाद	1946
विक्रमादित्य	गुरु भक्त सिंह	1947
दैत्यवंश	श्री हरिदयाल सिंह	1947
जननायक	श्री रघुवीर शरण मिश्र	1949
अंगराज	श्री आनन्द कुमार	1950

प्रमुख महाकाव्य	रचयिता	प्रकाशन वर्ष
वद्‌र्धमान	श्री अनूप शर्मा	1951
रावण	श्री हरिदयाल सिंह	1952
जयभारत	श्री मैथिली शरण गुप्त	1952
जगदालोक	ठा गोपाल शरण सिंह	1952
देवार्चन	श्री करील	1952
पार्वती	श्री रामानन्द तिवारी	1955
झाँसी की रानी	श्री श्याम नारायण प्रसाद	1955
रश्मिरथी	रामधारी सिंह दिनकर	1957
नारी	अतुलकृष्ण गोस्वामी	1957
मीरा	श्री परमेश्वर दि्वरेफ	1957
दमयन्ती	तारादत्त हारीत	1958
उर्मिला	श्री बालकृष्ण नवीन	1957
एकलव्य	डा0रामकुमार वर्मा	1958
तारकवध	श्री गिरजादत्त शुक्ल 'गिरीश'	1958
सेनापति कर्ण	श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र	1958
युगद्रष्टा प्रेमचन्द्र	परमेश्वर दि्वरेफ	1959
रामराज्य	श्री बल्देव प्रसाद	1959
उर्वशी	दिनकर	1961
सारथी	श्री रामगोपाल दिनेश	1961
वाणाम्बरी	श्री रामावतार पोद्दार	1961
अनंग	डा0पुत्तू लाल शुक्ल	1961
लोकायतन	श्री सुमित्रा नन्दन पन्त	1964
प्रियमिलन	श्री नन्दकिशोर 'झा'	वि0सं0 2021
मानवेन्द्र	श्री रघुवीर शरण मिश्र	1965
विरहिणी	डा0मुंशीराम शर्मा	1966
महाभारती	श्री रामौतार अरुण पोद्दार	1968
कैकेयी	श्री चदिमल अग्रवाल	1969

उक्त तालिका में दिये गये महाकाव्यों के अतिरिक्त इनके पहले अर्थात् भारतेन्दु काल में कुछ ऐसे प्रबन्धकाव्य हैं जिनको महाकाव्य कहा जा सकता है। यथा — उभय प्रबोधक रामायण(बानादास) महारामायण, भुसुंडि रामायण, अमररामायण, कौशलेन्द्र रहस्य(रामचरण दास) राम स्वयंवर, रुक्मिणी परिणय(रघुराज सिंह) विश्राम सागर (रघुनाथ दास रामसनेही) जरासंध वध(गोपाल चन्द्र गिरधरदास) रामलीला प्रकाश राम रत्नाकर(सरदार कवि) श्री ललित रामायण(हरिनाथ पाठक) रसिक बिलाप रामायण(अक्षयकुमार) कृष्णसागर(जगन्नाथ सहाँय) आदि हैं।

उपर्युक्त तालिका में द्विवेदी युग, छायावाद इत्यादि युग समयानुसार दिये गये हैं अर्थात् कालावधि के आधार पर युग नाम है महाकाव्य धारानुसार नहीं। उक्त समय के महाकाव्यों में वर्णितविषय सामग्री अन्य वादों से भी प्रभावित हो सकती है किन्तु कुछ न कुछ स्वसमय प्रवृत्तियों से प्रभावित अवश्य हैं।

आलोच्य महाकाव्यों की पृष्ठभूमि एवं उनका परिचय

अत्यन्त संक्षेप में आलोच्य महाकाव्यों की पृष्ठभूमि एवं उनका परिचय निम्नलिखित है।

(1) भगवान राम महाकाव्य की पृष्ठभूमि एवं परिचय :-

भगवान राम का प्रणयन मनबोधन लाल श्रीवास्तव ने किया। इसकी कथा-वस्तु वाल्मीकि रामायण का अनुसरण करती हुई चलती है। रचनाकार ने इसे तीन भागों में विभक्त करके भिन्न-भिन्न समयों में सम्पादन किया।

(1) भगवान राम पूर्वचरित - बाललीला (1960)

(2) भगवान राम उत्तर चरित - तपोवन विहार (1969)

(3) भगवान राम उत्तरचरित - विजयपर्व (1970)

वैसे केवल उत्तरचरित ही 1970 में प्रणीत किया गया एवं इसके उक्त प्रमुख दो भागों का प्रणयन 1970 के पहले सम्पन्न हो गया था किन्तु कार्य समापन जिस काल में हो वही उसका समय होता है। अस्तु इसी हेतु 'भगवान राम' को अभीष्ट विषय के अन्तर्गत समाहित किया गया है। सम्पूर्ण महाकाव्य 53 सर्गों एवं 8 उपखण्डों में विभाजित किया गया है जो निम्नलिखित है -

(1) बाललीला (2) अयोध्या खण्ड (3) चित्रकूट खण्ड

(4) पंचवटी खण्ड (5) ऋष्यमूक खण्ड (6) उद्योग खण्ड

(7) युद्ध खण्ड (8) रामराज्य खण्ड

कथा का मूलाधार वाल्मीकि रामायण ही है। अहल्या प्रसंग को कवि ने नवीन दृष्टि से प्रस्तुत किया है। इस विशाल काय कृति में कथाप्रवाह भंग नहीं हुआ है।

(2) जानकीजीवन :-

जानकीजीवन महाकाव्य का सं0 2001 में श्रीयुत् राजाराम शुक्ल ने प्रणयन किया जिसका प्रकाशन सन् 1971 में सम्पन्न हुआ। इसकी कथा का आधार वाल्मीकि रामायण है एवं थोड़ी बहुत कल्पना है। प्रस्तुत महाकाव्य में 21 सर्ग हैं जिसमें श्रीराम के 14 वर्ष वनवास काल समाप्ति में श्रीराम के अयोध्या गमन से प्रारम्भ होता है और सीता का निर्वासन उनको दो पुत्ररत्नों की प्राप्ति, शृंगी ऋषि के आश्रम से लौटी माताओं का करुण विलाप अश्वमेध यज्ञ, श्यामकर्ण घोड़े का वाल्मीकि आश्रम में पहुँचना, लवकुश का अश्व का

पकड़ना, ऋषि वाल्मीकि द्वारा सीता परिचय के बाद उनका अश्वमेध यज्ञ में सम्मिलित होना आदि वर्णित स्थल बहुत ही मार्मिक बन पड़े हैं। उक्त महाकाव्य में कुछ बातें मौलिक हैं। जैसे माताओं का सीता निर्वासन के समय शृंगी आश्रम में गमन एवं प्रत्यागमन तथा उनका विलाप और उनके द्वारा श्री राम के इस कार्य की भर्त्सना, सीता परित्याग सुनकर जनता का क्षोभ, राम का विरह वियोग वर्णन, वाल्मीकि आश्रम में लगे मेले में सभी के समक्ष राम के त्यागपूर्ण जीवन की कथा एवं प्रसंगवश कैकेयी को राक्षस वंश के विध्वंस का निमित्त बताना आदि। महाकाव्य के नायक श्री रामचन्द्र हैं।

(3)उत्तरायण :—

नव सर्गात्मक महाकाव्य उत्तरायण डा0 रामकुमार वर्मा द्वारा प्रणीत हुआ जिसका प्रकाशन सन् 1972 में हुआ। नायक कवि शिरोमणि श्री तुलसीदास जी हैं। कथा का आधार जनश्रुतियों से अलग काल्पनिक है। जनश्रुति के आधार पर तुलसीदास जी पत्नी से मिलनातुर मुर्दे की डोंगी से अनभिज्ञ भाद्रमास की रात्रि में यमुना पार करके सर्प के सहारे ससुराल गृह में पहुँच कर पत्नी द्वारा डाँट खाते हैं। और तप के लिए निकल पड़ते हैं। इस समूची कथा को डा0 वर्मा ने अतीव मार्मिक ढंग से मोड़कर मर्यादित बना दिया है और दीवाने तुलसीदास को भक्ति के मर्यादित पथ पर अग्रसारित करते हुए स्वगृह में अपनी पत्नी द्वारा विनोद में श्री राम की याद दिलाने मात्र से ही तुलसीदास रात्रि में ही अपना सर्वस्व त्यागकर भगवान राम के आराधन के लिए निकल पड़ते हैं। इनके जन्म, विवाह, शिक्षा आदि का भी सुन्दर वर्णन किया गया है। इसमें तुलसीदास जी के जीवन सम्बन्धी अनेक घटनाओं के विवेचन में 'रामचरित मानस' में वर्णित कथा का भी अभि-ग्रहण किया गया है।

(4)अरुणरामायण :—

सप्त काण्डात्मक 'अरुण रामायण' इतिनामधेय महाकाव्य का प्रकाशन सन् 1973 में हुआ। इसके प्रणेता महाभारती कार पोद्दार श्री रामावतार अरुण हैं। इसमें भगवान राम से सम्बन्धित सम्पूर्ण घटनावृत्ति को समाहित किया गया है। महाकाव्य का आरंभ परम्परागत सज्जन प्रशंसा एवं खलनिंदा प्रसंगों के औचित्य पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं कि जब कोई शत्रु ही नहीं है तो फिर उसका उल्लेख करने से क्या लाभ? उनके अनुसार

भारतीय जनजीवन में प्रचलित रामायणी कथा रूपक में असत्यपतन एवं सत्य का शुचि विकास अन्तर्निहित है। इनमें कुछ पात्र ज्योति के प्रतीक हैं और कुछ तम के। राम - रावण का सम्पूर्ण युद्ध सत्य और असत्य प्रवृत्तियों का संघर्षमात्र है। मानव इस संघर्ष में आत्मविद्या और प्रभुकृपा से विजयी होता है।[1] कथानक वाल्मीकि रामायण पर आधारित है। 'अरुण रामायण' की कथावस्तुमेंकतिपय परिवर्तन भी हैं। जैसे पुत्रविहीन राजा दशरथ का हरिद्वार में जप करना तथा विश्वामित्र का राजा दशरथ से नूतन गृह स्थिति पर विचार करते हुए उन्हें वशिष्ठ जी के निर्देशन में पुत्रेष्टि यज्ञ को प्रेरित करना, बाल्यावस्था में श्री राम के अन्दर वैराग्य भाव उत्पन्न होना।[2] धर्नुभंग करने पर सीता का विवाह होगा यह प्रतिज्ञा रखी जाये या समाप्त कर दिया जाये। इस प्रश्न पर कवि ने जनक, याज्ञवल्क्य विश्वामित्र एवं रावण के मतों का उल्लेख किया है।[3] 'अरुण रामायण' में तुलसीदास के मत से भिन्न परशुराम की उपस्थिति धनुष टूटने के पहले ही दिखाई है और धनुष टूटने पर सहमत प्रदर्शित किया गया है।[4] राम अपने राज्याभिषेक की सूचना कैकेयी को स्वयं देने जाते हैं जबकि अन्य ग्रन्थों में मन्थरा द्वारा उसे मिलती है। किन्तु वे वशिष्ठ को अपने द्वार पर समुपस्थित पाकर वहाँ तक नहीं जा पाते और वापस ही आते हैं।[5] फिर नाना आयोजनों में आबद्ध हो जाने से कैकेयी को सूचना नहीं देते।

कवि ने मन्थरा के कुबड़ी होने में श्री राम के चापल्य को कारण माना है।[6] जो किसी दृष्टि से बुद्धगम्य नहीं है। वाल्मीकि रामायण के अनुसार प्रस्तुत काव्य में कैकेयी विवाह के पूर्व की गयी दशरथ की इस प्रतिज्ञा का उल्लेख किया गया है कि कैकेई के गर्भ से उत्पन्न बालक ही राज्याधिकारी होगा।[7]

चिर उपेक्षिता उर्मिला की विरह वेदना का वर्णन हुआ है, जिसमें साकेत का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। असुर को परिभाषित करते हुये कवि ने बताया कि जो शोषण करे, कर्महीन हो, मानवता से रहित हो, परदाररत हो वही असुर है।[8]

1-अरुणरामायण, पृ04 बालकाण्ड

2- वही, पृ0 15

3- वही, पृ0 53

4- वही, पृ0 55

5, वही, पृ0 115

6- वही, पृ0 118

7- वही, पृ0 122

8- वही, पृ0 122

(5)सत्यकाम :-

पन्त द्वारा प्रणीत महाकाव्य 'सत्यकाम' सन् 1975 में प्रकाशित हुआ। इसमें कुल 11 सर्गों का विधान किया गया है जिनके नाम क्रमशः जिज्ञासा, जाबाला, दीक्षा, मनका निर्जन, प्राणब्रह्म, साक्षात्कार, ब्रह्माग्नि, आत्मब्रह्म, जीवब्रह्म, गुरुकुल, भ्रातृशक्ति हैं, जिन्हें सोपान की अभिधा प्रदान की गयी है।

युगबोध के लिए पंत जी का कथन है कि "वैदिक युग का यह काव्य अपने उन्मेषों प्रेरणाओं तथा विचारभावनाओं की चेतसिक उन्मुक्तता में अतुकांत छन्द के पंखों पर ही सहज स्वाभाविक तथा मर्मस्पर्शी उभर सकेगा। इस दृष्टि से मैंने इसमें तुकान्त चरणों का प्रयोग उचित नहीं समझा है।"[1] वास्तव में सत्य भी यही है क्योंकि वैदिक युग के कथानक को लेकर पूर्ण आधुनिककाल के वातावरण में तिरोहित कर दिया गया है।

कथानक छन्दोग्य-उपनिषद से लिया गया है।[2] जिसमें युवक तापस वृष, अग्नि, हंस और मुद्गु चार देवों से भी दीक्षा ग्रहण करता है। अत महाकाव्य में 'साधना सत्य तथा काव्य का सत्य तदाकार हो गये हैं।[3] अधिकांशतः सम्पूर्ण काव्य कल्पना का बवण्डर महतवेग से प्रवाहमान प्रतीत होता है जिसका उन्होंने उल्लेख भी किया है।

कथानक का कृष्णपंजर मुख्यतः छंदोग्य से लिया गया है जिसके अनुसार सत्यकाम निर्जन में वृष अग्नि, हंस, मुद्गु चार देवों से भी दीक्षा लेता है। शेष कल्पना तथा अनुभूति प्रसूत है।"[4] महाकाव्य का अधिकांश भाग पंत जी का अपना नवीन एवं मौलिक ही है।

1- सत्यकाम, विज्ञप्ति

2- वही,

3- वही,

4- वही,

(6) निषादराज :—

कविवर डा0 रत्नचन्द्र शर्मा द्वारा प्रणीत 'निषादराज' विजयदशमी 1976 में प्रकाशित हुआ। सम्पूर्ण महाकाव्य पन्द्रह सर्गों में विभक्त है। कथारम्भ राम के श्रृंगवेरपुर आने से होता है और राम के चित्रकूट पहुँचने के पश्चात् भरत मिलाप तक चरमसीमा तक पहुँच जाता है। तदनन्तर राम एवं भरत की महिमा के गुणगान के साथ कथा परिणति को प्राप्त होती है।

कथा का आधार 'वाल्मीकि रामायण' है, किन्तु साथ ही तुलसी, अध्यात्म रामायण, मैथिलीशरण गुप्त की 'साकेत' की कैकेई के पश्चात्ताप आदि के प्रसंग कम प्रभावित नहीं है।

'तुम वही राम मैं वही कैकेई तेरी
× × ×
युग-युग तक चलती रहे अकथ कहानी
रघुकुल में भी थी एक अभागिन रानी'[1]
× × × ×
यह सच है तो अब घर लौट चलो तुम भैया[2]

आदि को शर्मा जी इन शब्दों में व्यक्त करते हैं --

तात सत्य यदि यह है तो अब लौटो घर को
उठ रानी कैकेई बोली ले दृढ स्वर को।
× × × ×
केवल मुझको ही स्वार्थ ने घेर लिया था
दुष्ट दैव ने मन्थरा बन मन फेर दिया था
अपराध किया जो मैंने उसका फल भी पाया
पति खोया वैधव्य लिया मन ताप कमाया।
× × × ×
तो भी मैंने पाप महा का दण्ड न पूरा
पाया है हे राम रहा यह अभी अधूरा

1- साकेत पृ0 249
2- वही पृ0 247

करती हूँ स्वीकार पाप निज भरी सभा में

दण्डित करो राम तुम मुझको इसी सभा में।[1]

अत्यन्त लघु कथानक को शर्मा जी इतने सुन्दर ढंग से पिरोया है कि पाठक के हृदय में घटना चक्रों का अम्बार सा लग जाता है और पाठक का मन प्रत्येक पंक्ति के आगे बढ़ने को लालायित होता जाता है जब तक कि महाकाव्य इति को नहीं प्राप्त कर लेता।

(7) रामदूत :—

'रामदूत' महाकाव्य सन् 1977 में कुंवर चन्द्रप्रकाश सिंह द्वारा प्रणीत किया गया। उन्हीं के अनुसार "भगवान श्री राम के परम अनुग्रह से ही 'रामदूत' महाकाव्य पूरा हो सका और प्रकाश में आ सका। चित्तचातक को उन्हीं की कृपा से स्वाति - बूंद की अभीप्सा है जिससे इस कृति की अगली परंपरा 'संकटमोचन' यथा समय प्रकाशित हो सके।"[2]

15 सर्गों में विभक्तसम्पूर्ण महाकाव्य की विशेषताएँ समाहित किए हुए भी थोड़ा अपूर्ण लगता है क्योंकि इसमें 'रामदूत' राम जन्म से सेतुवन्धन तक की कथा एवं हनुमान जन्म से राम को सीता की खोज के वृतान्त को सुनाने तक का प्रसंग चित्रित किया गया है। कवि ने वैसे पवन पुत्र को केन्द्र मानकर काव्य रचा एवं उन्हीं को नायक माना। किन्तु पूर्व भाग में सर्वत्र राम ही नायक दिखाई देते हैं। अतः यदि राम को नायक माने तो कथा बीच में विखण्डित हो जाती है और यदि हनुमान को नायक माने तो इतना कम कथावस्तु है कि ~~वक्त~~ वह महाकाव्य की कसौटी में खरी नहीं उतरती है। अतः द्वितीय भाग भी रामदूत के अन्तर्गत ही रखा जाना चाहिए तभी वह पूर्ण महाकाव्य हो सकता है।

कुंवर चन्द्रप्रकाश सिंह ने 'रामचरित मानस' एवं 'राम की शक्ति पूजा' दो ग्रन्थों को आधार माना है किन्तु 'राम चरित मानस' के कुछ प्रसंगों में परिवर्तन करके कल्पना का आधार ग्रहण किया है। यथा —

1- निषादराज पृ० 137

2- रामदूत, आत्मनिवेदन

(1) " अब मोहि या भरोस हनुमाना। बिनु हरि कृपा मिलहिं नहि सन्ता।"
के विपरीत इन्होंने हनुमान एवं विभीषण का मिलाप न दिखाकर यह बताया है कि हनुमान जी विभीषण से भेंट नहीं करते बल्कि उनके और सरमा के वार्तालाप से सीता का पता जानते हैं।[1]

(2) रामचरित मानस में 'मास दिवस जो कहा न माना' के विपरीत रावण ने सीता के ~~कत~~ लिए दो माह का समय दिया है।[2]

(3) इसमें फल खाने के लिए सीता स्वयं हनुमान के बिना कहे उनसे कहती हैं।[3]

(4) अशोक वन के उजड़ने के समय ऐसे अस्त्रों का प्रयोग हनुमान करते हैं जिसे 'मानस' आदि में वर्णित नहीं किया गया।[4]

(5) रावण का मंत्रियों से हनुमान के दण्ड देने के विषय में पूँछना, राम के समुद्र के किनारे आ जाने पर रावण द्वारा जन साधारण की सभा का आह्वान एवं उसको सम्बोधन[5] और इस समय कुम्भकर्ण का विद्यमान होना आदि।[6]

1- रामदूत, ~~आत्मनिवेदन~~, पृ० 31-32

2- मास द्वै की अवधि और मैं देता हूँ उनको
वरण करें वे मुझको अथवा महाशमन को। (रामदूत, चतुर्थसर्ग, पृ० 39)

3- ठहरो सुत कुछ और यहाँ विश्राम करो।
इस उपवन के फल खाकर अपनी क्षुधा हरो। (वही, पंचमसर्ग, पृ०34)

4- रामदूत, षष्ठ सर्ग, पृ० 57-58

5- वही, सप्तम सर्ग, पृ० 75

6- बाँए बैठा था कुम्भकर्ण भयकारी
कज्जल सदृश विराट महावपुधारी।
— रामदूत, त्रयोदश सर्ग, पृ० 150

(8) सीता समाधि :-

'सीता समाधि' महाकाव्य सन् 1978 में प्रकाशित हुआ जिसकी प्रणेता कवयित्री श्रीमती राजेश्वरी अग्रवाल हैं। नायक राम एवं नायिका सीता हैं। श्रीमती अग्रवाल जी ने सीता को नायिका के रूप में प्रतिपादित करके युगयुगान्तर से चले आ रहे नारी के प्रति होने वाले अन्यायों उसके उत्सर्गों, उसके प्रति समाज द्वारा की जाने वाली उपेक्षाओं को इसमें दर्पणवत किया है। नारी ने समाज को दिया ही दिया है उसने सब कुछ सहते हुये अपने सम्बन्धियों को कुछ दिया ही है उसने कभी भी कुछ नहीं लिया। तभी तो महाकाव्य की नायिका सीता ने सदैव सहा ही सहा और दिया ही दिया, आदि अंत तक सुख मेंभी और दुख में भी, धरा पर प्रकट होकर और समाकर भी।[1]

सीता समाधि' में कुल 16 सर्ग हैं जो क्रम से इस प्रकार हैं —

(1) मंगल - श्री

(2) उदय - श्री

(3) रघुकुल - श्री

(4) तिरहुत श्री

(5) धनुषयज्ञश्री

(6) विवाहश्री

(7) त्यागश्री

(8) मार्ग श्री

(9) अरण्य श्री

(10) मृगश्री

(11) ~~कैसश्री~~ धर्मश्री

(12) वीरश्री

(13) अग्निपरीक्षाश्री

(14) द्वन्द्वश्री

(15) निर्वासनश्री

(18) श्री-महिमा

1-सीतासमाधि, पूर्वप्रकाश, पृ07

कथा का आधार वाल्मीकि रामायण' है किन्तु साथ ही कल्पना का बाहुल्य है। कवयित्री ने आधुनिक समाज पर कड़ा प्रहार किया है। वे विदेशों से अपनाई गई समस्त बातों के विपरीत हैं। वे पति-पत्नी को समान बताते हुये उनको मर्यादित करने का प्रयास करती हैं।

(9) 'अश्वत्थामा :--

'निषादराज' महाकाव्य के प्रणेता डा० रत्नचन्द्र शर्मा ने 9 फरवरी, सन् 1981 में एक दूसरे महाकाव्य की रचना कर डाली जिसको 'अश्वत्थामा' अभिधा से अभिहित किया गया। यह महाकाव्य भी 15 सर्गों में विभक्त है जिसका नायक 'अश्वत्थामा' आचार्य द्रोण का पुत्र है जिसे भारतीय परम्परा के अनुसार चिरजीवियों में गिना जाता है--

"अश्वत्थामा बलिर्व्यासो हनुमांश्च विभीषणः
कृपः परशुरामश्च सप्तैते चिरजीविनः ॥[1]

यदि इसे पाश्चात्य परम्परा से सम्बन्धित महाकाव्य समझा जाय तो अन्यथा नहीं क्योंकि सम्पूर्ण महाकाव्य -- वीरकाव्य है जिसमें अधिकांशतः युद्धों आदि का वर्णन है और पाश्चात्य मान्यता के अनुसार वीरकाव्य ही महाकाव्य हो सकता है। नायक -- अश्वत्थामा सौर्य एवं पराक्रम से युक्त महान योद्धा के रूप में चित्रित किया गया है जो अपने पिता का बदला लेने में प्रतिक्षण प्राणपण से जुटा रहता है। इनके चरित्र में सोते समय पाण्डुपुत्रों की हत्याकरवा कर बड़ी विकृति ला दी गयी है जो इन्हें देवत्व की पदवी से हटाकर साधारण योद्धा की पदवी पर ला पटका है।

भीम के चरित्र को महाकाव्यकार ने गर्हित किया है एवं उनके चरित्र से यह प्रकट करने का प्रयास करता है कि विजय में मानव कितना अहंकार युक्त हो जाता है।

मूलतः उक्त महाकाव्य 'महाभारत' को आधार मानकर लिखा गया है जिसमें 'गीता' के कुछ श्लोकों का भावानुवाद हो गया है साथ ही रचनाकार परवर्ती समयों -- मौर्यकाल, सुल्तान शासनकाल, उत्तरमुगलकाल, अंग्रेजीशासन तथा आधुनिक काल से भी प्रभावित है।

1- अश्वत्थामा, दो शब्द

(10)सत्यमेव जयते' :--

सर्वथा मौलिक महाकाव्य --'सत्यमेव जयते' पं0 रविशंकर मिश्र' द्वारा प्रणीत सन् 1981 में प्रकाशित हुआ। इसे वीरगाथा काव्य की संज्ञा भी दी जा सकती है। इस महाकाव्य में भारतीय सन् 1857 में संघटित क्रान्तियुद्ध से लेकर सन् 1948 तक के स्वतंत्रता के लिए किये गये संघर्ष का ओजपूर्ण वर्णन है। इसमें कुल 11 सर्ग हैं जिनके पहले 'प्रेरणा' (पूर्वाभ्यास) में 1857 की क्रान्ति के परिणाम का संक्षिप्त वर्णन है और अन्त में उपसंहार है जिसमें गाँधी के प्रति श्रद्धा सुमन, नवोदय, प्रथम गणतंत्र दिवस, राष्ट्र द्वारा शाश्वत संकल्प आदि का चित्रण है। ग्यारह सर्ग निम्नलिखित हैं --

(1) प्रथम सर्ग - प्रादुर्भाव

(2) द्वितीयसर्ग- उन्मेष

(3) तृतीय सर्ग - आह्वान्

(4) चतुर्थसर्ग - रणरंग

(5) पंचमसर्ग - युद्धघोष

(6) षष्ठसर्ग - अभियान

(7) सप्तमसर्ग - संघर्ष

(8) अष्टमसर्ग - महासमर

(9) नवमसर्ग-- लक्ष्यवेद।

(10) दशमसर्ग -- विजयपर्व

(11) एकादशसर्ग-- उत्सर्ग

सम्पूर्ण महाकाव्य ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर प्रणीत हुआ है।श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के शब्दों में --" यह सम्पूर्ण महाकाव्य ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। फलतः इसमें कवि कल्पना की उड़ान की गुंजाइश हो ही नहीं सकती थी। इसके बावजूद कवि ने यथासाध्य कल्पना का समावेश कर इतिहास गत अन्तर्द्वन्द्वों, भावों के आरोह, अवरोहों, संवेदनशील घटनाओं, क्रान्तिपरक सैद्धान्तिक पक्ष-विपक्षों तथा स्वातंत्र्य यज्ञ की वेदी पर आजादी के सैनिकों की शहादत का रोमांचक एवं मर्मस्पर्शी वर्णन प्रस्तुत किया है।[1]

1- सत्यमेव जयते, पृ0 6

वैसे महाकाव्य को देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि कभी इसका नायक तिलक है, कहीं गोखले, ह्यूम, गाँधी, जवाहर, बोस, भगतसिंह, और कहीं आजाद। ऐसा ही मिश्र जी ने भी कहा है — "परन्तु इस काव्य की कथा काँग्रेस या गाँधी की कथा नहीं है तिलक-गोखले-पटेल-आजाद तथा भगतसिंह आदि इस संग्राम में भारत के प्रमुख सेनानी थे किन्तु यह कथा न तो तिलक और गोखले की है और नेहरू पटेल-आजाद और भगत सिंह की ही। × × × × × × × × वास्तव में यह भारत के जन-गण-मन की कहानी है और इस प्रकार एक की नहीं अनेक की कहानी है।"[1]

फिर भी गाँधी से सम्बन्धित कथानक अधिक होने के कारण एवं उनके निर्वाण से कथा की परिणति होने के कारण हम उन्हें इस महाकाव्य का नायक मान सकते हैं।

(ii) कृष्णाम्बरी :-

प्रथम छन्दोमुक्त महाकाव्य 'कृष्णाम्बरी' सन् 1982 में प्रकाशित हुआ। यह कविवर 'अरुण पोद्दार' की इक्कीसवीं कोश शिला है। इसकी अभिधा के लिए राम औतार जी का कथन --

सृष्टिचक्र में धुरी केन्द्रित है राधा,
आद्या शक्ति-रूपान्तरित है वह,
नृत्याह्लादिनी कला-शक्ति -
अकेली नहीं कृष्णमयी !
कृष्ण भी एकाकी नहीं, राधिका मय
समवेत शक्तिमयता की लीला-भंगिमा ही कृष्णाम्बरी।[3]

यह महाकाव्य कुल द्वादश सर्गों में विभक्त है। 'कृष्णाम्बरी' में जहाँ करुण भावों की द्वंद्विल अवतारणा हुई है, वहाँ प्रसाद जी की रमणीयता झलकती है, फिर जहाँ सामासिक पदबन्ध का विन्यास है, वहाँ निराला जी की सांगीतिक भाषा, श्री की चारुता के दर्शन होते हैं, पुनः जहाँ प्राकृतिक सौन्दर्य की अप्रस्तुत योजना है, वहाँ

1- सत्यमेव जयते, आत्मकथ्य, पृ0 22

2- कृष्णाम्बरी , कृति और कृतिकार, पृ0 च

3- कृष्णाम्बरी, पृ0 86

पन्त जी की भावललित सुकुमारता रूपायित हुई है और फिरजहाँ कथावस्तु में उपस्थापन वक्रता का विनिवेश हुआ है, वहाँ गुप्त जी की कथाकोविदता का स्मरण हो आता है।[1]

प्रस्तुत महाकाव्य की मूलविषयवस्तु 'महाभारतीय' कृष्णकथा है किन्तु कुछ कल्पना और कुछ समसामयिक सन्दर्भों के जोड़ने का सफल प्रयास किया गया है। कुछ मौलिक उद्भावनाएँ भी हुई हैं।

1- कृष्णाम्बरी, कृति और कृतिकार, पृ0 च

(ग) आलोच्य महाकाव्यों का सांस्कृतिक विवेचन

संस्कृत शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक डुकृञ् करणे धातु से क्तिन् प्रत्यय का योग करने पर निष्पन्न होता है। सम् और परि उपसर्गपूर्वक डुकृञ् धातु से भूषण एवं संघात अर्थ अभीष्ट होने पर सुट का आगम अभीष्ट होता है।[1]

इस तरह भूषण भूत सम्यक् कृति शाब्दिक अर्थ हुआ। संस्कृत शब्द का प्रयोग यजुर्वेद[2] और ऐतरेय ब्राह्मण[3] में मिलता है। ऋग्वेद में संस्कृत पद संस्करण युक्त यज्ञ के लिए प्रयुक्त हुआ है।[4] इस प्रकार इस शब्द का प्रयोग वैदिक युग से होता आ रहा है। किन्तु आधुनिक समय में इसका अर्थ विस्तार बहुत बढ़ गया है।

अंग्रेजी में संस्कृति 'कल्चर' के अर्थ में कृषि, परिष्कार, सभ्यता की स्थिति आदि से किया जाता है किन्तु हिन्दी में मनुष्य की सुन्दर कृतियों स्थूल एवं सूक्ष्म चिन्तन की अभिव्यक्ति की समष्टि का नाम संस्कृति दिया जाता है।[5]

भारतीय सांस्कृतिक तथ्यों के विषय में बाबू गुलाबराय[6] डा० रामजी उपाध्याय[7] डा० मंगलदेव शास्त्री[8] डा० मदन गोपाल गुप्त[9] आदि प्रभृति मनीषियों ने अपने अपने मतों के अनुसार विवेचित किया। कई विद्वानों के सांस्कृतिक तथ्यों सम्बन्धी विचारों को देखते हुए निम्नलिखित तथ्य सम्मिलित किये जा सकते हैं —

1- संपरिभ्यां करो तौ भूषणे। अष्टाध्यायी, 6/1/137

सं परि पूर्वस्य करोतेः सुट स्याद्भूषणे संघाते चार्थे।
(उक्त सूत्र पर भट्टोजि दीक्षितकृत वृत्ति)

2- यजुर्वेद, 7/14

3- ऐ०ब्रा० 6/5।

4-ऋग्वेद 5/76/2 का सायणभाष्य

5- अवस्थी डा०विश्वम्भर दयाल, छायावादोत्तर हिन्दी प्रबन्धकाव्यों का सांस्कृतिक अनुशीलन, पृ० 25

6- बाबू गुलाबराय, भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, पृ० 6-12

7- उपाध्याय डा०राम जी, भारतीय संस्कृति का उत्थान, प्रथम खण्ड, पृ० 125

8- शास्त्री, डा०मंगलदेव, भारतीय संस्कृति का विकास, प्रथमखण्ड, पृ०125

9-डा०मदनगोपाल, मध्यकालीन हिन्दी काव्य में भारतीय संस्कृति। पृ० 53-72

(1) आध्यात्मिकता :- इसके अन्तर्गत जीव, ईश्वर, जगत्, माया आते हैं।

(2) अवतारवाद :-- दो मुख्य परम्पराएँ हैं --

(1) दशावतार

(2) चौबीस अवतार

(3) नीतिबोध। आचार और धर्म

(4) कर्मसिद्धान्त -- पुनर्जन्म और परलोक, देवयान, पितृयान गति, स्वर्ग और नरक।

(5) वर्णाश्रम व्यवस्था -- चतुवर्ण व्यवस्था, चतुराश्रम व्यवस्था नारी की स्थिति।

(6) संस्कार

(7) साधनामार्ग -- पुरुषार्थ चतुष्टय, कल्याण के साधन, कर्मयोग, ज्ञानभक्ति, प्रतिमापूजन, अष्टांग योग और यज्ञ।

(8) सौन्दर्यबोध -- प्रकृतिसौन्दर्य, शरीर सौन्दर्य और कलात्मक विवेचन।

(9) समन्वयवादिता।

उपर्युक्त नौ तत्व समग्ररूप से किसी एक आलोच्य महाकाव्य में मिल जायें ऐसी बात नहीं एवं इन तत्वों को आधार मानकर यदि सभी आलोच्य महाकाव्यों का विवेचन किया जाये तो वह बहुत ही विशद होगा। अतः अत्यन्त सूक्ष्म में संस्कृति का विवेचन निम्नलिखित है --

(1) आध्यात्मिकता -- (भगवानराम)

ईश्वर :- ब्रह्म, निर्गुण, नित्य, अज, अव्यक्त, सच्चिदानन्द, त्रिगुणातीत, और अज्ञेय है। निर्गुण ब्रह्म के अनन्त के सामर्थ्य का अन्त वेद भी न जान पाये। प्रकृति के आश्रय से निर्गुण ब्रह्म की ही कायिक रूपों में अभिव्यक्ति होती है।[1] विश्व के विविध रूपों में एक वही परम तत्व उसी प्रकार से प्रतिभासित हो रहा है जिस प्रकार वाष्प ओस, मेघ और विहार के मूलरूप में जल सत्य है।[2]

1- भगवानराम, पूर्वचरित, पृ0 491-492

2- वही, पृ0 496-497

माया :-- जीव माया के वशीभूत होकर प्रपंच में आसक्त बना रहता है।[1] जिसमें उसे सुख दुख, लाभ-हानि, आदि द्वन्द्व दुख पहुँचाते रहते हैं।

'जानकीजीवन'

ईश्वर — परब्रह्म निर्गुण एवं सगुण दो रूपों में अणु-अणु में व्याप्त है।[2]

जिनसे गृह नक्षत्र आदि सभी प्रकाशित होते हैं।[3] विश्वरूपी रंगमंच के पात्र दृश्य और दृष्टा, मंच नाटक और सूत्रधार सभी रूपों में एक मात्र परमेश्वर की सत्ता सिद्ध होती है।[4] परमेश्वर निराकार होते हुए भी नाना रूपों का निर्माण करते हैं। वे नारायण ईश्वर के ही विभिन्न रूप हैं।[5]

'उत्तरायण'

ईश्वर – डा0वर्मा ने रामानुज के विशिष्टाद्वैतवाद को आधार मानकर लिखते हैं कि ईश्वर चित्(जीव) अचित्(जगत)से युक्त होते हुए भी दोनों से विशिष्ट है। कर्ता ब्रह्म है और कार्य जगत तथा जीव है। सत्य ईश्वर के समान है कार्यरूप जगत एवं जीव भी सत्य है।[6] इसमें ईश्वर के पाँच रूप बताये गये हैं --

(1) परब्रह्म (2) व्यूह (3) विभव (4) अन्तर्यामी (5) अर्चावतार[7]

'अरुणरामायण'

जीव — परमात्मा से ही सभी जीवों का उद्भव हुआ है। उसी एक महातेजस्वी ज्योति से सभी जीव रूपी दीप प्रकाशित हैं। जब सर्वत्र एक ही आत्मतत्व के दर्शन होने लगते हैं तब राग द्वेष का कोई कारण नहीं रह जाता।[8] मानव बुद्धि परमेश्वर के अनुग्रह से ही निर्मल होती है।

1- भगवानराम, पूर्वचरित, पृ0 494
2- वही, पृ0 8/65 जानकीजीवन
3- वही, पृ0 9/7
4- वही, 10/54
5- वही, 14/42
6- उत्तरायण, पृ0 46
7- उत्तरायण, पृ0 47
8-अरुणरामायण, अयोध्याकाण्ड, पृ0 315

'रामदूत'

ब्रह्म :— काम क्रोध मोह-मद पर अनुरक्षित होती है जो कि असत्य के आधार पर अव-लम्बित होती है।[1] इसी कारण सर्वचित्त सत्ता से मिलना असम्भव हो जाता है।

'सत्यकाम'

उसी परब्रह्म से सम्पूर्ण संसार अनुशासित है। इन्द्र एवं वरुण सूर्य रूपी दृष्टि से सम्पूर्ण संसार का सर्वेक्षण किया करते हैं। ये दिव्य माया के स्वामी हैं। वायु उन्हीं की श्वांस है। वे चन्द्रमा नक्षत्र रात्रि, दीपक, पानी आदि सभी के स्वामी हैं। सारे समुद्र को वे ही जल से परिपूर्ण रखते हैं। वही ऋतुओं के विधान के उत्तरदायी हैं।[2]

जीव एवं जगत :— संपूर्ण संसार प्राणों की ही हरित भूमि है जहाँ द्वन्द्वों की श्री शोभा विद्यमान है। यही राग द्वेष, सुख, दुख, विस्मय, भय, अवस्था, संसय आदि गुथे हुए से प्रतीत होते हैं। यहाँ पर आशा के साथ निराशा, आँख मिचौनी खेला करती है। यहाँ पर सच्चिदानन्द निवास नहीं करता बल्कि जीव प्रेम ही करुणछत्र के नीचे अपने हाथ में क्षमा-यष्टि लेकर सहृदयता से शासन किया करता है। क्योंकि जीव जगत भ्रान्ति दोष त्रुटि स्खलन पूर्ण हैं।[3]

माया :— वही सिंहवाहिनी होकर सिंहों की पीठ पर सवार होकर विचरण किया करती है। मृगों के रथ पर छायामय गलियों पर तथा वायु में छलांग लगाती है। जिसकी वन्य प्रजा प्रेम का अमृत स्पर्श पाने के लिए हृदय खुला रखती है। वही ऋषियों सिद्धों तक फैली हुई है और अपने जन कौनिभ्रान्त सत्यपथ दिखलाने के लिए भावमूर्त बनकर आवि - र्भूत हुआ करती है।[4]

'निषादराज'

ईश्वर — इन्द्र-अग्नि सविता, वरुणादिक उसी दिव्य रूप परमेश्वर के ही हैं। ये सभी दिव्य शक्तियाँ उसी की हैं। ये भिन्न नाम उन्हीं के हैं।[5] वह इस संसार की रचना करके उसी में समाया हुआ है। वही सम्पूर्ण जग का स्वामी, जीव चराचर आदि का अवतार,

---

1- रामदूत, पृ0 85
2- ~~वही, पृ0 86~~
2- सत्यकाम, जिज्ञासा, पृ0 5
3- सत्यकाम, जीवब्रह्म, पृ0 182
4- वही, आत्मब्रह्म, पृ0 160
5- निषादराज, पृ0 18

पंचभूत, विस्तार, यदुपति, क्षमापति सब कुछ वही है।[1]

जीव -- आत्मा अजर अमर है। वह विनष्ट नहीं होती। वीरगति पाकर शरीर नष्ट होता है आत्मा तो रविमण्डल का भेदन करके स्वर्ग लोक को जाती है।[2]

'अश्वत्थामा'

आत्मा -- आत्मा अजर अमर है। वह नहीं मर सकती और वह केवल उन कर्मों की साक्षी है जिनको सूक्ष्म शरीर करता है।[3] वह न कभी जन्म लेती है और न कभी मरती है शरीर ही रोगों के आश्रित होता है एवं वही विनष्ट होता है।[4]

'सीतासमाधि'

जीव :-- सम्पूर्ण जीव अपने कर्मों के आधार पर अलग-अलग योनियों में पड़ता है। उसे द्वन्द्वों से मुक्ति नहीं मिलती और उसके द्वारा किये गये कर्म सदैव उसके साथ रहते हैं।[5] यद्यपि ईश्वर ने मानव के अन्दर सुन्दर आत्मा का सृजन करके संसार को अनोखा उपहार दिया है जिसे मानव यदि सत्य से जोड़े तो मृत्यु का भय किंचित् भी नहीं रहेगा।[6]

ब्रह्म -- वह संसार से परे है, बुद्धि द्वारा जाना नहीं जा सकता। वही सृष्टि का आधार है। अजर है अमर है और उसका परिसीमन नहीं हो सकता।[7] सम्पूर्ण संसार में वही ईश्वर व्याप्त है।[8]

जगत :-- माता-पिता बंधु और भार्या सभी झूठे हैं, संसार के सभी रिश्ते असत्य की नींव पर खड़े हैं। सम्पूर्ण जीव-जन्तु एवं सृष्टि नश्वर है।[9]

1- निषादराज, पृ0 22,23   9- वही, पृ0 222

2- वही, पृ0 97

3- अश्वत्थामा, पृ0 82

4- वही, पृ0 120

5- सीतासमाधि, पृ0 96

6- वही, पृ0 233

7- वही, पृ0 95

8- वही, पृ0 98

ईश्वर :— आत्मा में परमेश्वर का वास है। वह केलियोग में योगेश्वर कलयोग में परमेश्वर, कर्म योग में कर्मेश्वर, ज्ञानयोग में ज्ञानेश्वर और भक्ति के भावयोग में जगदीश्वर के नाम से जाना जाता है। वह सम्पूर्ण जगत में व्याप्त है।[1] वह सबकी भावनाओं में वास करता है, कण-कण में निवास करता है। अन्तःकरण में वही हृदय में वही, तथा वही सृष्टि का आकर्षण है।[2]

जीव :— सभी संबंधी एक दिन बिछुड़ जायेंगे। एक दिन सब कुछ छोड़कर जाना होगा क्योंकि जीव अकेला जन्म लेता है और अकेले मरता भी है।[3]

आत्मा न किसी को मारती है और न किसी से मारी जाती है। क्योंकि वह अजर-अमर है। शरीर के मारे जाने पर भी आत्मा अमर है। जैसे पुराने वस्त्र छोड़कर मानव नवीन वस्त्र धारण करता है वैसे ही जीवात्मा भी एक शरीर को त्यागकर अन्य में प्रवेश करता रहता है।[4]

(2) अवतार

अवतार शब्द अव उपसर्ग पूर्वक तृ तरण प्लवनयोः धातु से घञ् प्रत्यय के संयोग से बना है जिसका धात्वर्थ है — उतरकर नीचे आना है। वैदिक साहित्य से ~~लेकर~~ लेकर परवर्ती साहित्य में इसका प्रयोग विभिन्न अर्थों में हुआ है।

भगवान के अवतारों की संख्या अनेक हैं किन्तु दो मुख्य परम्परा प्रचलित हैं प्रथम दशावतार और द्वितीय चौबीस आवतार।

(क) दशावतार :— नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण और कल्कि ये सात अवतारों का वर्णन महाभारत,[5] वायुपुराण, वाराहपुराण, अग्निपुराण, नृसिंहपुराण, और गीत — गोविन्द[6] में मिलता है। इनके अतिरिक्त महाभारत में हंस, कूर्म और मत्स्य हरिवंश में

1- कृष्णाम्बरी, पृ0 76
2- वही, पृ0 88
3- वही, पृ0 147
4- वही, पृ0 188
5- महाभारत शान्तिपर्व, पृ0 339/101
6-गीतगोविन्द, 1/1

पौष्कर दत्तात्रेय अग्निपुराण में — कूर्म, मत्स्य तथा बुद्ध, वायुपुराण में दत्तात्रेय, व्यास और अनामी, गीतगोविन्द में मत्स्य, कूर्म, और बुद्ध का उल्लेख मिलता है।

(ङ) चौबीस अवतार :—

भागवत के द्वितीय स्कन्ध में चौबीस अवतारों की चर्चा की गयी है। (1) चतःसन (2) शूकर (3) नरनारायण (4) कपिल (5) दत्तात्रेय (6) यज्ञ, (8) ऋषभ (8) मत्स्य (9) कच्छप (10) प्रथु (11) धनवन्तरि (12) नृसिंह (13) वामन (14) परशुराम (15) ध्रुवप्रियहरि (16) राम (17) कृष्ण (18) बलराम (19) व्यास (20) बुद्ध (21) कल्कि (22) हयग्रीव (23) गजेन्द्रोद्धारक (24) हंस आदि।

आलोच्य महाकाव्यों में राम एवं कृष्ण के प्रमुख अवतारों की चर्चा की गयी है। कुछ महाकाव्यों में गाँधी को भी अवतार रूप में प्रतिष्ठापित किया गया है। महाकाव्यों के अनुसार अवतार कारण एवं स्वरूप की संक्षिप्त चर्चा निम्नलिखित है —

भगवान राम —(श्रीराम) मनबोधन लाल श्रीवास्तव के अनुसार चेतन जगत के निर्णायक सद्गुणधाम श्रीराम का अवतार विष्णु के अर्धांश से तथा शेष तीनों भाइयों का जन्म चतुर्थांश से हुआ।[1] वे अनुपम चरित द्वारा मर्यादा की सीमा प्रतिष्ठित कर दी, जिससे मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाये।

जानकीजीवन —(श्रीराम) भगवानराम वेद एवं शास्त्रादि में वर्णित अद्यावधि चरित की मूर्ति रूप है।[2] उन्होंने सम्पूर्ण सृष्टि को अपने दिव्य आचरणों द्वारा पवित्र कर दिया।[3]

उत्तरायण — (श्रीराम) डा० वर्मा के अनुसार नारद जैसे भक्तों की भक्तिभावना एवं रावण जैसे अत्याचारियों के दमन तथा सज्जनों को निर्भय करने के लिए उत्पन्न हुए।[4] मनुशतरूपा से प्रसन्न अपने अंशों सहित श्रीरामादिक के रूपों में अवतार ग्रहण किया था।[5]

अरुणरामायण —(श्रीराम) इसमें भी इन्हें विष्णु का अवतार बताया गया है। उनका अवतार प्राणियों पर कृपाभाव होने के कारण होता है।[6] श्रीरामावतार का मुख्य प्रयोजन असुरता अहंकार आदि का विनाश एवं मानवता का प्रसार है।[7]

1- भगवानराम, पू०च० द्वितीय सर्ग, पृ० 29, 30

2- जानकीजीवन, पृ० 21/113

3- वही, 21/118

4- उत्तरायण, षष्ठसर्ग, पृ० 7।

5- वही, पृ० 23

6-- अरुणरामायण, अयो०, पृ० 317

7- वही, अरण्यकाण्ड, पृ० 35।

रामदूत – पुरुषोत्तम राम ईश्वर के अवतार है वही मूल प्रकृति हैं उन्हीं का अनुशासन विश्व में चलता है।[1]

निषादराज – श्रीराम नरपुंगव एवं संसार के ईश्वर हैं। वे सदा दासों का मान बढ़ाते हैं।[2] वे महामानव भी हैं। वेद धर्म मर्यादा आदि के रक्षक भी है।[3]

अश्वत्थामा – कृष्ण विष्णु के अवतार हैं। वे संसार के पालनकर्ता हैं। इस संसार के महा पुरुष एवं रक्षणकर्ता हैं। समता के संस्थापक है तथा सभी के हितकर हैं। अपने को स्वयं विष्णु भगवान कहाते हुए संसार में न्याय स्थापित करते हैं एवं दुखियों की रक्षा करते हैं।[4]

सीतासमाधि -- इसमें कवयित्री ने दो अवतारों की पुष्टि की है --

(1) राम – रघुवंश न्याय धर्म के रक्षक हैं जिनको विष्णु महेश तक पूजते हैं। वे वीर, प्रतापी, एवं करुणा से परिपूर्ण हैं।[5] उनकी भृकुटि के बल पर सृष्टि नष्ट हो सकती है। उसने सम्पूर्ण संसार की रचना की है।[6]

(2) गाँधी – ईश्वर ने जब हृदय की पुकार सुनी तो शक्ति सहित गाँधी रूप में उद्भूत होकर धनी निर्धन का भेद मिटाकर सम्पूर्ण देश को एक सूत्र में पिरोया। हिन्दू मुस्लिम एवं ईसाईयों में भ्रातृत्व उत्पन्न कर प्रबल जंग में उतर पड़े।[7] राम ने ही गाँधी का तन धारण कर देश को बंधन मुक्त किया। वे युगों से भारत माँ के जकड़े अंगों का दुख हरने के लिए ही प्रकट हुए। उन्होंने सारे संसार में भारत का मान बढ़ाया।[8]

1- रामदूत, सप्तमसर्ग, पृ0 86

2- निषादराज, पृ0 20

3- वही, पृ0 19

4- अश्वत्थामा, पृ0 43

5- सीतासमाधि, पृ0 105

6- वही, पृ0 201

7- वही, पृ0 270

8- वही, पृ0 271

कृष्णाम्बरी –

कृष्ण अपने जन्म के समय अपनी चतुर्भुजी मूर्ति जो शंख, चक्र, गदा, पद्म से विभूषित थी, देवकी एवं वसुदेव को दिखाया। वे पीताम्बर धारण किये हुए पहले महाविष्णु के रूप मेंप्रकट हुए।[1]

जब ब्रह्मा ने वृन्दावन से ग्वालबाल समेत हरण किया तब चतुरानन को भी अपनी चतुर्भुजी मूर्ति दिखाई और उन्हें भी मानना पड़ा कि योगेश्वर कृष्ण के रूप में स्वयं विष्णु हैं।[2]

अर्जुन को भी युद्ध के समय अपना रूप दिखाया और बताया कि कृष्ण के रूप में मैं स्वयं हूँ। जब-जब धर्म की हानि होती है और अधर्म वृद्धि होती है- तब-तब मैं शरीर धारण करता हूँ क्योंकि शोषण, विषमता, विनाश समता और प्रकाश मेरे लक्ष्य हैं।[3]

सारांश यह है कि भक्तों, आर्तजनों की रक्षा, वेद, धर्म की मर्यादा-निर्वाह अपने महत्कार्यों एवं पूत आचरणों से समाज के उद्धार एवं असुर नाश कर मानवता स्थापित करने हेतु राम एवं कृष्ण ने अवतार लिया था। आलोच्य महाकाव्यों में कहीं उन्हें अंशावतार, कहीं कलावतार और कहीं गुणावतार के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।

(3) नीतिबोध

भगवानराम –

धर्म -- सत्यब्रह्म का रूप है।[4] उससे बढ़कर कोई अन्य वृत्त नहीं। सत्कर्मों से धर्म का अभ्युदय होता है।[5] स्त्री के लिए पतिसेवा से बढ़कर कोई वस्तु नहीं।[6] अन्य सम्बन्धी उसके लिए स्वार्थपरक होते हैं।[7] क्षत्रिय धर्म[8] का भी विवेचन हुआ है। अनुज वधू, पुत्रवधू, सुता, शिष्य, गुरुपत्नी, से व्यभिचार करने वाले व्यक्ति का वध शास्त्रानुमोदित है।[9]

1- कृष्णाम्बरी, पृ0 32

2- वही, पृ0 56

3- वही, पृ0 190

4- भगवानराम, ~~पृ~~ तपोवनविहार, पृ0 489

5- वही, पृ0 92

6- वही, पृ0 544-545

7- वही, पृ0 610

8- वही, पृ0 109

9- वही, पृ0 379-80

जानकीजीवन – आचार – जो सुधीजन व्रतनिष्ठ होकर साधनारत हो जाते हैं उसको सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। जो अपने कर्तव्य से च्युत नहीं होता उसकी कौन सी इच्छा है जो पूर्ण न हो।[1] श्रद्धावृत्ति, मानव में दिव्यगुणों को उत्पन्न कर उसे महान बना देती है। श्रद्धा से ही मनुष्य की सत्कर्म एवं धर्म में प्रवृत्ति होती है। वह मानव के सामने सन्मार्ग प्रकाशित कर देती है। श्रद्धावान व्यक्ति के हृदय में सत्संकल्प उत्पन्न होते हैं।[2]

रामदूत --

परदारा धर्षण से बढ़कर कोई भी पाप नहीं है। जो भी राजा इन्द्रियजित न होकर इन्द्रियतर्पण ही अपना लक्ष्य मान लेते हैं और अनीति, रजोगुण, भूतद्रोह, मद के पथ का अनुगमन करते हैं उनका राज्य विनष्ट हो जाता है।[3] धर्म ही सत्य सनातन है जो शाश्वत ध्रुव है तथा क्रूर काल की गति को भी कुण्ठित कर देता है।[4]

निषादराज – यदि कोई कुलीन वंश में उत्पन्न होकर निम्नकार्य करेगा तो विषमय रंगीन सर्प सा त्याज्य एवं अस्पृश्य रहेगा एवं निम्न वंश में उत्पन्न व्यक्ति यदि अच्छे कार्य करेगा तो देवों के मस्तक पर भी चढ़ सकता है।[5] लोभी व्यक्ति की दुर्गति छोड़कर सुगति नहीं नहीं होती है।[6] शासक साधु सम्मति के बिना मनमानी एवं हठधर्मी करता है तो वह स्वयं की आत्मवंचना करता है और अपनी जनता को विषैले जल में ढकेलता है।

सीतासमाधि :– जो सत्याचरण में रत हैं वे कभी भीदीन याचना नहीं करते। धर्म के लिए सम्पूर्ण यातनाएँ सह लेते हैं। उनको आँधी एवं ज्वालाएँ विचलित नहीं कर पाते।[7] स्त्री पुरुष समान हैं परन्तु दोनों के कार्य क्षेत्र भिन्न हैं।[8] यदि अपने अपने कार्यों एवं धर्म का सत्यता से पालन हो तो प्रति गृह में सुख वैभव विलास करे।[9]

1- जानकीजीवन, तृतीयसर्ग, पृ0 57
2- वही, पृ0 38-39
3- रामदूत, तृतीयसर्ग, पृ0 28
4- वही, पृ0 30
5- निषादराज, पृ0 21
6- वही, पृ0 94
6-सीतासमाधि, पृ0 179
8-वही, पृ0 177
9- वही, पृ0 180

कृष्णाम्बरी -- उक्त महाकाव्य में कृष्ण द्वारा दिये गये कतव्य अधिकांशतः नीति से परिपूर्ण हैं। एक तरफ कृष्ण की सुनीति है तो दूसरी तरफ कंस, दुर्योधन की दुर्नीति।

कंस के मत से सिंहासन के समक्ष सब कुछ फीका है शक्तिशालिनी राजनीति सभी को मूर्ख समझती है, ज्ञान, विज्ञानी, गुणी सभी उस के दास है।[1] राजनीति अयोग्य को योग्य एवं योग्य को अयोग्य बना सकती है। वह जिसे चाहे उठा दे जिसे चाहे रसातल भेज दे।[2] इसमें सेवक को अधमाधम कार्य करना पड़ता क्योंकि वह इन्कार नहीं कर सकता।[3]

कृष्ण का मत है कि शासनकर्ता को चाहिए कि वह धर्मयुत होकर पृथ्वी में धर्म का पालन करे, प्रजा को प्रसन्न रखे तथा स्वजनों से स्नेहपूर्ण वर्ताव करे। विपरीत आचरण से लोक निंदा होती है। शासक के लिए लोक ही गुरु होता है।[4] विनाश काल में बुद्धि विपरीत हो जाती है जो विनाश का कारण बन जाती है।[5]

(4) कर्म सिद्धान्त, पुनर्जन्म और परलोक

आलोच्य महाकाव्यों में उक्त तथ्य पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। यहाँ पर अत्यन्त संक्षेप में कुछ ही महाकाव्यों के उदाहरण पर्याप्त होंगे। 'भगवान राम में[6] नियति को सर्वोपरि बताया गया है। काल सर्वोपरि और अनुल्लंघ्य है। वह स्वतंत्र है।[7] हमारी आयु प्रतिक्षण नष्ट हो रही है।[8]

सतानन्द ने श्रीराम से बताया कि सूर्यवंश में उत्पन्न त्रिशंकु सदेह स्वर्ग जाने की कामना की जिससे वशिष्ठ ने एक साध्य बतलाया।[9] तदनन्तर विश्वामित्र ने प्रयास किया।[10] श्री राम ने लक्ष्मण से स्वर्गप्राप्त के साधनों का उल्लेख करते हुए कहा कि जो व्यक्ति सांसारिक जीवन में कर्मवृती बनकर सत्कार्य करते हैं और धर्म की साधना करते हैं

1- कृष्णाम्बरी, पृ0 7
2- वही, पृ0 11
3- वही, पृ0 93
4- वही, पृ0 147
5- वही, पृ0 178
6- भगवानराम, तपोवनविहार, पृ0 500-503
7- वही, पृ0 448-451
8- वही, पृ0 141-146
9- वही, पृ0 460
10- वही, पृ0 470

उन्हें इस लोक में अक्षयकीर्ति मिलती है और परलोक में स्वर्ग।[1]

जानकी जीवन में कर्म सिद्धान्त[2] का सुन्दर परिपाक प्रस्तुत किया गया है।[3] कायर पुरुष दुखों में भयभीत हो जाते हैं किन्तु कर्म निष्ठ पुरुष सत्पुरुष स्वदेश के गौरव की अभिवृद्धि करते हैं।[4]

'सत्यकाम' में मृत्यु को नये जीवन का द्वार बताया गया है। जीव मृत्यु की गोद में अपने जीर्ण वस्त्र फेंककर नवीन शरीर रूपी वस्त्र धारण करता है।[5]

'निषादराज' --

श्रेय कर्म करना देवों का सबसे बड़ा कर्म है और मनुष्यों के लिए सबसे बड़ा धर्म है जिसके द्वारा ही दनुज मनुज बनता है।[6] भाग्य सर्वोपरि है। विधि का लेख कौन टाल सकता है।[7] फिर भी यदि कोई कुत्सित कर्मों से संसार को परिपीड़ित करता है तो उसे यथा समय उसका फल अवश्य मिलता है।[8]

अश्वत्थामा — यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि अपने किये का फल जीवन रण में अवश्य मिलता है। जो पूर्वजन्म में बोया जाता है उसी का फल मिलता है।[9] जो होना है वह अवश्य होगा भाग्य लिपि मिट नहीं सकती।[10]

सीतासमाधि :— मानव के हाथ में कुछ भी नहीं है। संसार में भला-बुरा, सुख-दुख-हानि-लाभ सब ईश्वर के हाथ है। शुभाशुभ कर्मों के फल का निर्णायक ईश्वर है। मनुष्य भाग्य का दास है जो जैसा करता है उसको वैसा फल भी मिलता है। वह कर्म के आधार पर भिन्न जीवन ग्रहण करता है। मानव के साथ ही उसके कर्म जाते हैं।[11] कर्म के कारण ही मनुष्य का निर्माण एवं नाश होता है। सुख एवं दुख इसी में निहित हैं। यद्यपि यहाँ सम्पूर्ण साधन हैं किन्तु उन्हें कर्मों के आधार पर ही प्राप्त किया जा सकता है।[12]

1- भगवानराम, तपोवनविहार, पृ0 529
2- जानकीजीवन, 2/25-27
3- वही, 2/28
4- सत्यकाम जीवब्रह्म, पृ0 181
5- निषादराज, पृ0 10-11
6- वही, पृ0 33
7- निषादराज, पृ0 40
8-अश्वत्थामा, पृ0 64
9-वही, पृ0 15
10-सीतासमाधि, पृ0 96
11-वही, पृ0 97

कृष्णाम्बरी :-

भाग्य बहुत ही चंचल होता है साथ ही गतिशील भी वह तुरन्त राजा को रंक बना सकता है। उसका चपल एवं विषयुक्त डंक अत्यन्त कठोर है।[1] मनुष्य को परिस्थितियाँ कहाँ से कहाँ ला खड़ा करती हैं।[2]

जैसे जल में कमल खिलता है किन्तु वह उससे अनासक्त रहता है। उसी प्रकार अनासक्तिभाव से श्रेष्ठकर्म द्वारा ब्रह्मवेत्ता एवं मोहहीन हो जाता है।[3]

(5) वर्णाश्रम व्यवस्था

चतुर्थाश्रम - ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ, सन्यास तथा वर्णव्यवस्था का आलोच्य महाकाव्यों में विषदरूपों में वर्णन मिलता है।

नारी की स्थिति के विषय में जो गृहस्थाश्रम की प्रधान अंग है 'अरुण रामायण'[4] 'जानकीजीवन' में वर्णन मिलता है। नारी कभी भी निन्दनीय नहीं है।[5] सती अनसूया ने नारियों की चार कोटियाँ निर्धारित[6] की हैं - (1) उत्तम (2) मध्यम (3) साधारण तथा (4) अधम।

व्यवस्था के लिए सम्पूर्ण वर्गों को चार भागों में विभक्त किया गया है।[7] जन्म से सभी शूद्र हैं एवं, ब्रह्मज्ञ होने से ब्रह्मणत्व का आविर्भाव होता है। अतः उच्चवर्ग वाले मनुष्यों को उच्चगुणों का आविर्भाव होना चाहिए।[8] 'जानकीजीवन' के अनुसार ब्रह्मचारी को व्रतपालक, अरण्यवासी, ब्रह्मज्ञाता एवं वेदाध्यायी होना चाहिए। गृहस्थ सद्उद्योगी सत्संगी, सद्वृत्तवान, त्यागी और पुण्यकर्मा हो। वानप्रस्थ भार्या के साथ संयम का पालन करते हुए अरण्यवास करे। वृद्ध होने पर सब त्यागकर सन्यास लेले। सन्यासी कल्याणमय भावना का उपदेश सम्पूर्ण समाज में करे।

'सत्यकाम' में वर्णव्यवस्था के वर्णन में उल्लेख है कि विराट पुरुष के मुख से ब्राह्मण, शक्तिशाली भुजाओं से क्षत्रिय, स्थूल जघनों से वैश्य एवं पैरों से सेवारत एवं परिश्रमी शूद्र का जन्म हुआ।[9]

1- कृष्णाम्बरी, पृ0 22
2- वही, पृ0 229
3- वही, पृ0 190
4- अरुणरामायण, पृ0 150
5- जानकीजीवन, पृ0 51/149
6- अरुणरामायण, अरण्यकाण्ड, पृ0 232, 235
7- जानकीजीवन, पृ0 3/83
8- वही, 16/88
9- सत्यकाम, जाबाला, पृ0 23

क्षत्रिय
'निषादराज' में चतुर्वर्ण -- ब्राह्मण, वैश्य, शूद्र का उल्लेख तो है किन्तु उनमें कोई भेद नहीं है। ये सभी जातियाँ समान हैं।[1]

'सीतासमाधि' में बताया गया है कि शूद्र, वैश्य, ब्राह्मण सभी राजा के सेवक हैं[2] किन्तु कोई ऊँच नहीं, सभी समान हैं। संसार में सभी कर्म समान हैं।[3] सभी वर्णों के कार्य बँटे हुए हैं। कुछ व्यक्ति राज्य करेंगे, कुछ सेवा करेंगे, कुछ ज्ञान के द्वारा उपकार करेंगे।[4]

'कृष्णाम्बरी' में वर्णों का महत्व नहीं दिया गया है। मनुष्य की केवल एक 'मानव' जाति है।[5]

(6) संस्कार

प्रमुखरूप में 16 संस्कार माने जाते हैं।[6] गर्भाधान, पुंसवन, सीमन्तोन्नयन, जातिकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूडाकरण, कर्णविध, उपनयन, वेदारम्भ, समावर्तन, विवाह, वानप्रस्थ, सन्यास, अन्त्येष्टि आदि। इन संस्कारों का वर्णन भी अधिकांशतः आलोच्य महाकाव्यों में मिल जाता है। कुछ महत्वपूर्ण निम्नलिखित हैं :-

'अरुणरामायण' में उपनयन[7] विद्यारम्भ, तथा विवाह[8] का वर्णन करते हुए पोद्दार जी ने लिखा है कि श्रीराम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न का क्रमशः सीता, उर्मिला, माण्डवी एवं श्रुतिकीर्ति के साथ मंगलमय मन्त्रों के उच्चारण के साथ विवाह सम्पन्न हुआ।

'भगवानराम' में श्री रामादिक के उत्पन्न होने पर कुलपुरोहित वशिष्ठ ने जातकर्म संस्कार करवाया।[9] और पुरवासियों ने नानाप्रकार से अपना हर्ष व्यक्त किया।[10]

1- निषादराज, पृ0 134
2- सीतासमाधि, पृ0 42
3- वही, पृ0 47
4- वही, पृ0 274
5- कृष्णाम्बरी, पृ0 50
6- बाबू गुलाबराय - भारतीय संस्कृति की रूपरेखा, पृ0 187
7- अरुणरामायण, बालकाण्ड, पृ0 13
8- वही, पृ0 93
9- भगवानराम, पृ0 30, पर्वचरित
10- वही, पृ0 31-34

नामकरण भी वशिष्ठ द्वारा सम्पन्न हुआ।[1] विवाह अग्नि की तीन प्रदक्षिणाओं एवं मन्त्रोच्चारों द्वारा सम्पन्न हुआ।[2]

'सीतासमाधि' में चारों दशरथ पुत्रों का विवाह जनक एवं उनकी भ्रातृ कन्याओं के साथ सम्पन्न हुआ बताया गया है।[3]

'कृष्णाम्बरी' में कृष्णजन्म संस्कार इस प्रकार मनाया गया कि न अभी तक वैसा किसी का मनाया गया और न मनाया जाना है। ऐसा उल्लास इतिहास में कभी नहीं मिला। प्रत्येक स्थान में प्रमोद ही प्रमोद प्रकृति भी कृष्ण जन्मोत्सव मनाने लगी।[4] कृष्ण का विवाह भी रुक्मिणी को हरण करने के बाद द्वारिका में वैदिक रीति से सम्पन्न हुआ।[5]

(7)साधनामार्ग

अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष ये चार मानव जीवन के उद्देश्य माने गये हैं। धर्म से पुण्यार्जन होता है। धर्म से धन की प्राप्ति होती हैजो लौकिक सुख का श्रेय है। अधर्म से कमाया गया धन भी सुखकारी है किन्तु वह क्षणिक है।[6] अर्थ और काम के प्रति जो आसक्ति रहित होता है वही धार्मिक है।[7] अतः धर्म, अर्थ, काम का संयमपूर्वक सेवन कल्याणकर है।[8]

ब्रह्मसुख जो प्रभुकृपा पर निर्भर है, वह सांसारिक सुखों से बढ़कर होता है। एवं प्रभुकृपा प्राप्ति के अनेकों उपाय हैं। यथा -- कर्म, ज्ञान, भक्ति, प्रतिमापूजन, अष्टांग योग और यज्ञ आदि इन्हीं उपायों साधना की अभीप्सा से अभिहित करते हैं। उक्त बातें अंशतः आलोच्य महाकाव्यों में विद्यमान हैं जिनका विवरण निम्नलिखित है —

1- भगवानराम, पूर्वचरित, पृ0 35

2- वही, पृ0 156-157

3- सीतासमाधि, पृ0 57

4- कृष्णाम्बरी, पृ0 40-41

5- वही, पृ0 159

6- मनुस्मृति, 4/147

7- वही, 4/171

8- महाभारत, शान्तिपर्व, 167/40

'भगवान राम'

कल्याण के साधन ज्ञान :—

ज्ञानरूपी गंगाजल की प्राप्ति पर ही मानवजीवन पूर्णतः निर्भर है। यज्ञ, तप, योग, सभी के द्वारा, ब्रह्मत्व की उपलब्धि होती है।[1] 'अहं ब्रह्मास्मि' आदि औपनिषदिक महावाक्यों का चिन्तन करते हुए जब जीव के अन्तर ज्ञानोत्पत्ति होती है तभी उसे ब्रह्मोपलब्धि सम्भव है।[2] सारूप, सालोक्य, सार्ष्टि, सायुज्य, सामीप्य, पाँच प्रकार की मुक्ति (मोक्ष) तथा इसे प्राप्त करने के तीन साधन हैं — योग साधना, ज्ञान और निष्काम भक्ति जिनके परिचालन से अलौकिक आनन्दानुभूति सम्भव है।[3] ज्ञान से वासना का परित्याग कर जीव अनन्तता ग्रहण करता है।[4] अद्वैत ज्ञान होने से अन्तर नष्ट हो जाता है[5] राजर्षि जनक की तरह कल्याण कांक्षिक को निष्काम कर्मयोगी होकर कमल पत्र की तरह जैसे वह जल में उत्पन्न होता है किन्तु उससे अस्पृष्ट होता है, भवाम्बु से अनाश्रित होकर जीवन यापन में रत होना चाहिए।[6]

'जानकीजीवन'

कल्याण के साधन कर्मयोग की व्याख्या करते हुए कवि ने बताया है कि संसार युद्ध स्थल के समान होता है जिसमें वीर पुरुष सिंह के समान विजयी होता है और कायर पुरुष श्रृगाल के समान भयभीत होकर भाग जाते हैं।[7] करणीय (कर्म) अकरणीय (अकर्म) तथा दूषित कर्म विकर्म — ये कर्म के तीन प्रकार हैं। जो व्यक्ति निर्लिप्त होकर सत्कर्म में उद्यत रहता है वह कर्मयोगी शीघ्र भगवान को प्राप्त कर लेता है।[8]

भक्ति में भगवान राम की उपासना से जीव को सुख उपलब्ध होता है।[9] श्रीराम की शरण में जाने पर जन्म मरण के दुख से मानव मुक्त हो जाता है।[10] नवधा भक्ति

1- भगवानराम, पूर्वचरित, पृ0 100
2- वही, पृ0 101
3- वही, पृ0 102
4- वही, पृ0 103
5- वही, पृ0 104
6- भगवानराम पूर्वचरित, पृ0 105
7- जानकीजीवन, पृ0 2/35
8- वही, पृ0 8/61
9- वही, पृ0 7/22
10- वही, 7/23

में[1] स्मरण[2] कीर्तन भक्ति[3] अर्चनभक्ति[4] वन्दन भक्ति[5] पादसेवन, दास्य सख्य, आत्मनिवेदन आदि को परिभाषित किया गया है। यज्ञ आदि का भी वर्णन किया गया है।

'उत्तरायण'

जीव का कल्याण भगवान की शरणगति ग्रहण करने पर होता है।[6] जीव को ईश्वर दर्शन, श्रवणादिक, नवधाभक्ति की साधना से सम्भव है। अतः जीव मात्र का धर्म है कि वह भगवान के श्रीचरणों में अपने को अर्पित कर साधन भक्ति के द्वारा उनके दर्शन करने में सक्षम हो।[7]

'अरुणरामायण'

कर्मयोग के अन्तर्गत बताया गया है कि मानव निराशावादी नहीं। आलसी मनुष्य ईश्वर का कृपापात्र नहीं हो सकता। वह धर्महीन है जो अपने कर्तव्यों की अवहेलना करता है।[8] उत्तम योगी सम्पूर्ण प्राणियों से अनुराग करता है।[9] उपासना के सम्बन्ध में बताया है कि भगवान राम का ध्यान हृदय को उज्ज्वल बना देता है।[10] श्रीराम की कथा से पवित्र कोई कथा नहीं है। इसके पढ़ने से सम्पूर्ण व्यथाएँ विनष्ट हो जाती हैं। पाप, ताप एवं संताप सभी इसके द्वारा दूर होते हैं और ज्ञान विज्ञान तथा भक्ति की सहज प्राप्ति इसी से सम्भव है।[11]

'सत्यकाम'

ज्ञान — ज्ञानदृष्टि से ही अन्तर्मन के वैभव के द्वारा मानव को मनुष्यता के स्वर्णिम मूल्यों को प्रदान करती है जिसमें भूला-भटका मनुष्य भूपथ पर जीवन इच्छा से सन्तुलन स्थापित कर सके।[12]

1- जानकीजीवन, पृ0 8/45
2- वही, 8/46
3- वही, 8/47
4- वही, 8/48
5- वही, 8/49
6-उत्तरायण, पृ0 47
7-उत्तरायण, पृ0 48
8-अरुणरामायण, अयो0काण्ड, पृ0 316
9- वही, पृ0 316
10- वही, बालकाण्ड, पृ0 4
11- ~~सत्यकाम, पृ0~~ वही, पृ0 4
12- सत्यकाम, पृ0 180

'सीतासमाधि'

ज्ञान सुधा के द्वारा ही भौतिकता पर विजय प्राप्त होती है।[1] माया का चक्र चलता रहता है जिससे किसी को सुगमता से मार्ग नहीं सुलभ होता। जो संभल कर सत्यमार्ग को ग्रहण करता है वह कभी भी चक्कर में नहीं पड़ता।[2] धर्मों के जितने मार्ग हैं सभी ईश्वर तक पहुँचते है। सभी साधन सत्य हैं किन्तु जब इनमें स्वार्थ कालिमा छू जाती है तो वे असत्य प्रतीत होते हैं। अतः ज्ञान से मोह का पर्दा हटा देने पर उसका सत्य रूप प्रदर्शित होने लगता है।[3] ईश्वर प्राप्त करने के दो साधन (1)अपने को ईश्वर को अर्पण कर सतत सन्मार्ग पर कार्यरत रहना। इसे भक्ति मार्ग कहते हैं।(2)ज्ञान मार्ग। दोनों ही मनुष्य को ईश्वर के पास ले जाते हैं। ज्ञान मार्ग नीरस एवं दुर्गम है, भक्ति मार्ग सरस एवं सुगमतम है।[4]

तप के द्वारा दुस्तर कार्य भी सुगम हो जाते हैं। तप के बल पर ही ब्रह्मा ने सृष्टि रचना की। तप से ही उसका पोषण होता है। सब देवता तप के द्वारा ही प्रसन्न होते हैं।[5]

'कृष्णाम्बरी'

ज्ञान से संशय का नाश होता है। चंचल मन वैराग्य के द्वारा वश में होता है और योग की प्राप्ति मन को वश में किए बिना नहीं होती। विशुद्ध प्रेम(भक्ति) द्वारा ईश्वरानुभूति होती है जिससे आवागमन समाप्त हो जाता है।[6]

1- सीतासमाधि, पृ० 46

2- वही, पृ० 96

3- वही, पृ० 97

4- वही, पृ० 10

5- वही, पृ० 259

6- कृष्णाम्बरी, पृ० 190

(8) सौन्दर्यबोध'

इसके अन्तर्गत काव्य में वर्णित प्रकृति सौन्दर्य, शरीर सौन्दर्य(नखशिख - वर्णन) कलात्मक विवेचन आदि को लिया जाता है। सभी आलोच्य महाकाव्यों मेंइसके दर्शन होते हैं। 'जानकीजीवन' में उन्नत पर्वतों, सरिताओं[1] वन्यजतुओं[2] मयूररागिनी तथा भ्रमरों के गुंजार का सुन्दर वर्णन है।[3] शरीर सौन्दर्य के अन्तर्गत नेत्र नासिका[4] अधर एवं सधर के मध्य दंतपंक्ति, कर्ण, कपोलक[5] भृकुटी घुंघराले काले बाल[6] चरणों[7] आदि का मनोहारी वर्णन हुआ है।

कलात्मक विवेचन में भगवानराम' के आवास में स्थित चित्रशालाएं[8] सुन्दर चित्र बने हुए थे[9] जिनमें अन्य अनेक महापुरुषों के अतिरिक्त श्रीराम के जन्म से[10] लेकर रावण वध तक की घटनाओं का चित्रण हुआ था।[11]

'अरूणरामायण'

'अरूणरामायण' में पुष्पवाटिका प्रसंग में सीता के सौन्दर्य[12] का वर्णन किया गया है। श्री राम सौन्दर्य की सीमा थे, उनका शरीर कमल तुल्य कोमल एवं सुन्दर था उनके शशिमुख के दर्शन से सभी व्यक्ति अपने को धन्य समझते थे। मणिकान्ति समान उनके मुख पर दिव्यता विद्यमान रहती थी जो मन स्थिति विद्युत आभा को अवमानिता कर देती थी।[13]

'रामदूत'

'रामदूत' में प्रकृति वर्णन[14] हनुमान जी के बाल्यकाल शरीर के लावण्य[15] आदि का सुन्दर वर्णन किया गया है।

1- जानकीजीवन, पृ0 2/63-65
2- वही, 2/68
3- वही, 2/70
4- वही, 9/14-17
5- वही, 9/18-25
6- वही, 9/26-29
7- वही, 9/32
8- जानकीजीवन, 11/1
9- वही, 11/42
10- वही, 11/43
11- वही, 11/83
12- अरूणरामायण, पृ0 47
13- वही, पृ0 48
14- रामदूत, पृ0 33
15- वही, पृ0 193

'सत्यकाम'

इसमें ऋचा के विषय में वर्णन है कि सत्यकाम में ऋचा की वय;सन्धि की उपमा निरुपम एक किशोरी युवती जो सद्यःस्नाता के समान कोमल अंगों को छड़ी पोंछती सी दिखाई पड़ रही थी। उसका नग्न शरीर चंपक एवं स्फटिक के समान प्रतीत हो रहा था। जलाद्रित पेशलवपु से विलग नहीं हो रहा था और उसे यह भी ध्यान नहीं था कि चित्र लिखी सी आधी झुकी हुई मुझे कोई देख रहा है।[1] इसके अलावा ऊषाकाल[2] सायंकाल[3] आदि का सुन्दर वर्णन हुआ है।

'निषादराज'

प्रकृति छटा की कमनीयता का वर्णन स्थान-स्थान पर पर हुआ है। मोर नाच रहे हैं कोकिल गा रही है, सरित सलिल में सलिल कुक्कुट विचर रहे हैं, कमल खिले हैं ऐसी चित्रकूट स्थली किसके मन को विमोहित नहीं कर लेगी।[4] इसके अतिरिक्त रामादि की छवि का सुन्दर चित्रण हुआ है।[5]

'सीता समाधि'

इस महाकाव्य में वर्णित सभी बातें अपने में एक निराली प्रभा लिए हुये है। अवध की भव्यता देखिए —

दिव्य भव्य वे राजा-रानी, दिव्य भव्य वे अवध निवासी।
दिव्य भव्य सब राज्य सम्पदा, दिव्य भव्य वे दृश्यविलासी।
घूंघट में ज्यों शोभित लोचन, सुषमा रही दिव्यता से छन।[6]

थोड़ा सीता के सौन्दर्य को देखिए --

किसलय दल सी मृदुल मनोहर, तुहिन कनी सी झिलमिल विह्वल।
ढोल रही ममता नयनों में निधि उर की अति अनुपम निर्मल।
देख-देख नृप सुषमा सुन्दर, हर्ष हृदय में नहि पाते भर।[7]

1- सत्यकाम, साक्षात्कार, पृ0 33
2- वही, जाबाला, पृ0 21
3- वही, जीवब्रह्म, पृ0 174
4- निषादराज, पृ0 50
5- निषादराज, पृ0 69
6- सीतासमाधि, पृ0 224
7- वही, पृ0 7

'कृष्णाम्बरी'

सम्पूर्ण महाकाव्य सौन्दर्यमय है। राधा-कृष्ण के रास की छटा को कहनी ही क्या है –

बोलने लगीं एक साथ सौ-सौ कोयल,
मँह-मँह करने लगे वृन्दावन पुष्प पराग से,
डगमगाने लगे कामना-तरंग-चरण,
चोंच में चोंच सटाने लगीं चिड़ियाँ,
अमलतास के पीले फूल पर –
लोटने लगी गन्ध मादनी हिलोर
कि पंखुड़ियाँ उड़ने लगीं झरने लगीं।[1]

मथुरा की छटा देखिए —

मथुरा नगर : ऊँचे-ऊँचे गोपुरों से शोभित
अधिकांश गृहों के द्वार स्वर्णिम
मोहक उद्यान, रमणीय उपवन
सुन्दर अट्टालिकाएँ सभा-भवन
छज्जों पर बैठे कलापी, उड़ते कपोत
प्रशस्त पथ, आकर्षक चौराहे।[2]

(9) समन्वय वादिता

हमारे देश की संस्कृति पावन मन्दाकिनी के समान है जो अन्य नदी को आत्मसात् करती हुई अपने प्रभुत्व में हमेशा दृढ़ रही। उसी प्रकार से संस्कृति भी वेदों से प्रारम्भ होकर आज तक अपनी प्रभुता बनाये हुए है। जबकि उसको काफी आन्दोलित किया गया, अनेकों संस्कृतियों से प्रभावित हुई, किन्तु वह स्थिर रही एवं सभी संस्कृतियों से समन्वयवादिता स्थापित करने में सक्षम रही। कुछ आलोच्य महाकाव्यों में भी समन्वयवादिता परिलक्षित होती है। उदाहरण के लिए 'अरुण रामायण'[3] में कर्म एवं भक्ति का समन्वय यजुर्वेद के समान उद्धृत किया गया है। यजुर्वेद में कहा गया है कि सम्पूर्ण विश्व के कण-कण में ईश्वर विद्यमान है। उन्हें सर्वत्र व्यापक मानकर उनके द्वारा प्राप्त भोगों का आ

1- कृष्णाम्बरी, पृ0 72

2- वही, पृ0 104 3- अरुणरामायण, बालकाण्ड, पृ0 2

अनासक्त भाव से उपयोग करे।[1] और सौ वर्ष तक कर्मशील बने रहकर जीवित रहने की कामना करे।[2]

इस प्रकार से आलोच्य महाकाव्यों में संस्कृति के प्रत्येक पहलू का पूर्ण विवेचन उपलब्ध है।

1- यजुर्वेद, 40/1

2- यजुर्वेद, 40/2

तृतीय अध्याय

आलोच्य महाकाव्यों की कथावस्तु --

स्रोत, मौलिकताएँ, अवस्थाएँ, सन्धियाँ, एवं अर्थप्रकृतियाँ

'भगवान राम'

प्रस्तुत महाकाव्य के तीन भाग पृथक-पृथक समयों में प्रकाशित हुए। अतः क्रमशः कथानक निम्न प्रकार है :—

(1) पूर्वचरित बाललीला :—

कथारम्भ महर्षि श्रृंगी के द्वारा पुत्रहित हयमेध यज्ञ की सम्पन्नता के साथ होता है, जिसमें देव पुरुष पायस-पूर्ण कंचन थाल भेंट करता है। इसको रानियों द्वारा खाने पर वे गर्भवती हो जाती हैं।[1] इसके पहले अयोध्या वर्णन और राघव-कौशल वर्णन प्रस्तुत किया गया है। समयानुसार चारों भाई उत्पन्न होते हैं, जिनका वसिष्ठ द्वारा नामकरण होता है।[2] तदनन्तर उन चारों भाइयों — राम लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न की बाललीलाओं का वर्णन है।

कुछ बड़े होने पर श्री रामचन्द्र जी अपने कुमारावस्था में ही ताड़का सुबाहु इत्यादि भयंकर राक्षसों का विनाश करके विश्वामित्र की यज्ञ साधना निर्विघ्न सम्पन्न कराने में सहायक हुए जिससे अति प्रसन्न विश्वामित्र ने उन्हें दिव्यास्त्र प्रदान किये। जनकपुर जाते हुए विश्वामित्र ने श्री राम एवं लक्ष्मण को एक कथा सुनायी कि गौतम ऋषि की उग्र तपस्या से भयभीत होकर इन्द्र उनकी अनुपस्थिति में ऋषि की तपः शक्ति नष्ट करने के विचार[3] से साध्वी सती अहल्या के समक्ष समुपस्थित हुआ। अहल्या ने उसके कुविचारों को गर्हित किया[4] एवं उसे धिक्कारा, जिससे तत्कालीन आये हुए गौतम ऋषि से इन्द्र ने अपने द्वारा अहल्या के सतीत्व नष्ट करने की कल्पित कथा की जल्पना की। अतः क्रुद्ध ऋषि ने इन्द्र एवं अहल्या दोनों को शाप दे दिया तथा तप के लिए हिमालय चले गये। पति-परित्यक्ता अहल्या अहर्निश अदृश्य रूप से आश्रम में तप करने लगी।[5] विश्वामित्र द्वारा बताये गये अहल्या के इस साधुचरित्र को श्रवण कर श्रीराम ने साध्वी अहल्या का उद्धार किया।[6]

1- भगवान राम, पूर्वचरित, पृ0 24-25

2- वही, पृ0 35

3- भगवान राम, पूर्व च0 पृ0 80

4- वही, पृ0 81

5- वही, पृ0 81

6- वही, 83

जनकपुर पहुँचने पर विश्वामित्र एवं श्रीराम आदि का हार्दिक स्वागत ~~क्र~~ हुआ। विश्वामित्र की आज्ञानुसार श्रीराम ने शिवधनु प्रत्यंचा चढ़ाने को ज्यों ही उसे झुकाया वह धनुष बीच से दो खण्ड हो गया और जानकी जानकी तथा भगवान श्रीराम का विवाह हो गया। चारों भाई ~~स्व~~ पत्नियों सहित अयोध्या वापस आ गये।

मध्यचरित तपोवन विहार :-

इसमें भगवान राम के निर्वासन से लेकर सीता हरण तक की घटनाएँ चित्रित की गयी हैं। कैकेयी ने अपने न्यास के दो वरदानों को मांगकर अनर्थ और विनाश के बीज वमन कर दिये। दशरथ के प्रेम और आस्था के साथ विश्वासघात करती हुई कैकेयी ने लोक-मत को अनादृत किया। इस समय श्रीराम उपस्थित हो वनवास स्वीकार करके पिता कोधर्म संकट से मुक्त करते हैं एवं धर्म मर्यादा की रक्षा करते हैं। कैकेयी द्वारा राम को चौदह वर्षों का वनवास मिलने पर अयोध्यापुर वासियों के उल्लास में हिमपात हो जाता है। तथा उल्लास विषाद में परिवर्तित हो जाता है। ननिहाल चलने के लिए भरत तैयार होते हैं। और वहाँ से आकर भरत जब चित्रकूट में श्रीराम को वापस चलने के लिए कहते हैं तो वे उन्हें समझाते हैं कि ' जिस सत्य प्रतिष्ठा के लिए पिता ने अपने प्राण त्याग दिये हम उन्हीं के पुत्र होकर उनके वचनों ~~और~~ का उल्लंघन कैसे करें? मैं चौदह वर्ष का वनवास करूँऔर तुम तभी तक अयोध्या का राज्य करो। इसी से पिता के वचनों कापालन होगा। ' अन्त मे भरत-भगवान राम की पादुकाएँ राज्य सिंहासन में अधिष्ठित करके राम के न्यास के स्वरूप में राज्य का शासन प्रबन्ध करने लगे।

स्वर्ण मृग रूपी मारीच एक दिन श्रीराम की कुटिया के समीप आया। कनक मृगचर्म की इच्छा से जानकी द्वारा प्रेरित श्रीराम मृगवध के लिए त्वरित गति से चल पड़ते हैं। मरणासन्न मारीच के छलयुक्त रव से आकृष्ट लक्ष्मण के चले जाने पर साधु वेषधारी रावण शून्य कुटिया में उपस्थित होकर सीताहरण कर लेता है।[1] जटायु रावण को रोकने का प्रयास करता है किन्तु रावण के अस्त्र से घायल होकर गिर पड़ता है।

1- भगवान राम, तपोवन विहार, पंचवटी खण्ड, छन्द 61२

उत्तरचरित - विजयपर्व :-

श्रीराम को जटायु द्वारा सीता हरण का समाचार प्राप्त होता है। आगे बढ़ने पर सुग्रीव से मित्रता एवं बालि द्वारा भयभीत सुग्रीव को वे अभय दान प्रदान करते हैं। बालि इन्द्र प्रदत्त स्वर्णमाल पहनकर युद्ध करता था जिससे विपक्षी का बल घट जाता था और बालि की बलवृद्धि होती थी। इस तरह वह अपने विपक्षी को मार डालता था।[1] बालि श्री राम द्वारा एक ही बाण से भू-पतित कर दियागया, किन्तु उस माला के प्रभाव से वह श्रीहीन नहीं हुआ।[2] बालि के मरणोपरान्त किष्किंधा का शासक सुग्रीव हुआ और वानरों की सहायता से रावण के ऊपर चढ़ाई कर दी गयी। आरम्भ में मेघनाद के बाणों से राम एवं लक्ष्मण मूर्च्छित हो गये। गरुण ने आकर उन्हें नागपाश से मुक्त किया।[3] लक्ष्मण मेघनाद के द्वारा छोड़ी गई ब्रह्मशक्ति से आहत हुए। हनुमान संजीवनी बूटी लाये तब कहीं लक्ष्मण सचेत हुए।[4]

तदनन्तर राम तथा लक्ष्मण द्वारा कुम्भकर्ण मेघनाद एवं रावण का वध किया गया। इस के पश्चात् जब सीता राम के समक्ष लाई गयीं तब उन्होंने उनके चरित्र पर आक्षेप किया,[5] जिससे भगवती सीता अपने पतिव्रत तेज से जलने लगीं।[6] इसी समय ब्रह्मादिक देव वहाँ समुपस्थित हो गये और अग्निदेव ने सीता की पूर्णशुद्धि की साक्षी दी।[7] राम द्वारा सीता का ग्रहण हर्षपूर्वक हुआ एवं पुष्पक विमान से वे अयोध्या वापस आये।[8] श्रीराम का राज्याभिषेक हुआ,[9] और भरत को युवराज पद दिया गया।[10] श्रीरामचन्द्र जी के शासन के समय प्रजा दैहिक दैविक एवं भौतिक तापों से विमुक्त होकर सुख शान्ति का अनुभव करती थी।[11] पुरुषोत्तम श्री राम एकादश सहस्त्र वर्ष तक प्रजा को सुखी बनाकर परम धाम को चले गये।

1-तथा 2-- भगवानराम, ऋष्यमूककाण्ड, छन्द क्रमशः-296-97, 367

3-से 7-तक भगवानराम, युद्धकाण्ड, क्रमशः - 292,516,617,628,633

8से 11 तक - भगवान राम, रामराज्यकाण्डः क्रमशः- 129,129, 141,

तथा 147

स्रोत :—

भगवानराम' की कथा का स्रोत वाल्मीकि रामायण' है। तुलसी की 'राम चरित मानस' का भी आश्रय लिया गया है। श्रीमनबोधन लाल श्रीवास्तव के शब्दों में -- "शय्या की निश्चलता में मेरा आश्रय रहे तुलसी का राम चरित मानस और वाल्मीकि रामायण। इसी दशा में न जाने कब स्वतः मेरे मुख से निकल गया था 'घिर रहा है आज प्राणों पर सघन नीहार' और भगवान राम से मन का यह आग्रह पूर्ण विनयवन्दना के रूप में साकार हो गया था जो प्रस्तुत ग्रन्थ के आरम्भ में दी गयी है।[1]" × × × ×
"रोगग्रस्त अवस्था में यह देखकर कि 'करती हुई युद्ध रोगों से देह हारती जाती है' मेरे मन में यह विचार आया कि ऋषि प्रवर वाल्मीकि प्रणीत राम के मर्यादा विधायक रूप का चित्रण मैं भी अपने क्षीण शक्ति शब्दों द्वारा करूँ।"[2]

मौलिकता :—

अधिकांश महाकाव्य में वाल्मीकि रामायण का ही कथानक लिया गया है किन्तु कुछ प्रसंगों को उन्होंने परिवर्तित करके प्रस्तुत किया है अथवा कुछ छोड़ दिया है। 'भगवान राम' में वर्णित कुछ प्रसंगों में मौलिकता निम्नलिखित है —

(1) गौतमऋषि की तपस्या से भयभीत इन्द्र उनकी तपःशक्ति को नष्ट करने के विचार से उनकी अनुपस्थिति में अहल्या के समीप आया जिससे उसने इन्द्र की भर्त्सना की असन्तुष्ट इन्द्र ने उस समय वहाँ आये हुए गौतम ऋषि से अपने द्वारा अहल्या का सतीत्व नष्ट करने की झूठी बात कही। क्रुद्ध ऋषि दोनों को शाप देकर तप के लिए हिमालय चले गये।[3] इस प्रसंग में कवि ने लोकप्रचलित इतिवृत्त को परिवर्तित करके अहल्या को लोक निन्दा से बचा लिया है।

(2) लंकाविजय के अनन्तर सीता राम के समक्ष लायी गयीं। तभी राम ने सीता के लिए बहुत ही कुत्सित बचन कहे। वे श्रीरामचन्द्र जी के कटु वचनों से आहत होकर योगाग्नि में अपने को जलाकर अपने सतीत्व की परीक्षा दी।[4] 'रामायण' के अनुसार

1-भगवानराम, पूर्वचरित, आत्मनिवेदन

2- भगवानराम, तपोवन विहार, प्रस्तावना

3- भगवानराम, पूर्वचरित, पृ0 80-81

4- वही, युद्धकाण्ड, 633

लक्ष्मण ने चिता तैयार की और फिर सीता ने अग्नि में प्रवेश किया किन्तु इस महाकाव्य में सीता का योगाग्नि में शुद्ध होना बताया गया है, जो अपने में मौलिक है।

कवि ने कथावस्तु के विषय में स्वयं भगवानराम के तृतीय खण्ड(विजयपर्व) के आरम्भ में प्राक्कथन शीर्षक के अन्तर्गत कथावस्तु के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है[3] कि —' महर्षि वाल्मीकि के महाकाव्य के आधार पर मेरा प्रयास स्थित है। अतः मानवेन्द्र श्री रामचन्द्र के जीवन की उन्हीं मुख्य घटनाओं का वर्णन किया गया है। जिनका प्रत्यक्ष ज्ञान के फलस्वरूप आदि कवि ने चित्रण किया है। गोस्वामी तुलसीदास के रामचरित मानस पर अवलम्बित कुछ हृदय स्पर्शी दृश्य, जो लोक प्रचलित हैं, इस काव्य में नहीं पाये जा सकते हैं। जैसे अंगद रावण सम्वाद तथा संजीवनी लाते समय हनुमान का भरत से अयोध्या में संलाप। लक्ष्मण शक्ति का लोक प्रचलित रूप भी यहाँ नहीं रखा जा सका। रावणवध के पश्चात् राम के औदासीन्य से क्षुब्ध होकर सीता का सतीत्व तेज प्रदर्शन तो बुद्धि संगत है, ~~लक्ष्मण के कुछ~~ द्वारा चिता निर्माण असम्भव प्रतीत होता है।यह अंश मुझे प्रक्षिप्त जान पड़ा। हनुमान की पुष्टि ऋषि भरद्वाज द्वारा वर्णित तथा भरत से हनुमान द्वारा कथित उन घटनाओं की श्रृंखलाओं से होती है, जिनमें आदि कवि ने सीता के चिता प्रवेश का उल्लेख हीनहीं किया। महर्षि ने रामकथा का अन्त युद्धकाण्ड में कर दिया था। अतः उत्तरकाण्ड परवर्ती क्षेपक है। मेरे इस विचार की पुष्टि युद्धकाण्ड के 131वें सर्ग श्लोक 104 से होती है :—

धन्यं यशस्यमायुष्यं तथा च विजयावहम्।
आदि काव्यमिदं त्वार्षं पुरा वाल्मीकिनाकृतम्।"

अर्थात् इसका पाठ कृतकृत्यता यश और आयु देने वाला है। यह आदिकाव्य आर्ष काव्य है और प्राचीन काल में वाल्मीकि मुनि द्वारा रचा गया है। इसतरह स्पष्ट है कि उक्त महाकाव्य में मौलिकता कम है अधिकांश कथानक वाल्मीकि रामायण से कतिपय परिवर्तनों के साथ ग्रहण किया गया है।

1- भगवानराम, पूर्वचरित, प्राक्कथन

अवस्थाएँ :—

'भगवान राम' की मूलकथा का श्रीगणेश 'पूर्वचरित' की "देखने का अवध-पुर का स्वर्ग सम श्रृंगार" पंक्ति से होता है। यही महाकाव्य की प्रारम्भ की अवस्था है जिसका प्रसार तपोवन विहार के षष्ठ सर्ग के 418 वें[1] छन्द तक सम्प्राप्त होता है। तदनन्तर वनगमन से लेकर सीता हरण[2] तक की घटना तक प्रयत्न की स्थिति का पता चलता है। अरण्य काण्ड के अन्तर्गत जटायु मिलाप के प्रसंग से लेकर उत्तर चरित में सेतु-बन्धन तक प्राप्त्याशा अवस्था का भान होता है। इसी प्रकार उत्तरचरित में सेतुबन्धन की सूचना से रावणवध के पहले तक नियताप्ति की प्राप्ति होती है और रावणवध से राम-राज्य की स्थापना पर्यन्त फलागम का प्रसार दिखायी देता है।

सन्धियाँ :—

रामजन्म[2] से लेकर वनगमन तक मुखसन्धि, वनगमन से सीताहरण तक की कथा में प्रतिमुख सन्धि, एवं राम हनुमान के मिलन से मेघनाद वध तक कथा में विमर्श सन्धि दृष्टिगोचर होती है। उत्तर चरित में रावण वध एवं राम राज्य की स्था-पना के साथ निर्वहण सन्धि का सौन्दर्य प्रस्फुटित होता है क्योंकि फलागम और कार्य के मिलन बिन्दु पर ही यह सन्धि होती है। इस प्रकार रावण वध के उपरान्त की समस्त कथा में निर्वहण सन्धि ही स्वीकार की जायेगी।

अर्थप्रकृतियाँ :—

भगवान राम महाकाव्य की कथा में अर्थप्रकृतियों के भी दर्शन होते हैं। पूर्व चरित में दशरथ के पुत्र हित हयमेध यज्ञ के संकल्प से ही बीज वपन होता दिखाई देता है। इसके अन्तर्गत अयोध्या नगर का वर्णन भी सम्मिलित है। सीता हरण की घटना के

1- विमुग्ध संज्ञाहत ज्ञान भूप ने, सुनी प्रतिज्ञा प्रणवीर राम की।
विलाप उच्चैः करने तदा लगे, अशक्तवाणी अवरुद्ध मूक थी। (तपो0वि0अयो06 /18

2- प्राणों को व्याकुल कर देती जो पीड़ा निःसीम, आज उसी ने विचलकर दिया धैर्य तुम्हारा भीम।
आँसू बहे चले जब सूनी पंचवटी को त्याग, हुआ विराग विजित करुणा से जीत गया अनुराग।
(तपो0वि0, पंचखण्ड, 6 /74)

3-शत प्रभाकर की प्रभा का द्वार सहसा खुल गया, तीव्र दिव्यालोक से ब्रह्माण्ड मण्डल धुल गया।
भूप दशरथ के प्रभा प्राज्वल्य अन्तर्हर्म्य से, सुत प्रसव सम्भूत सुख से दुख शोकाकुल गया।
(पूर्वचरित, पृ0 28)

साथ ही प्रयत्न प्रसार के रूप में 'विन्दु' की अवस्थिति का पता चलता है और हनुमान मिलन के साथ ही विन्दु का अवसान दृष्टिगोचर होता है। उत्तर चरित में हनुमान की भेंट से 'पताका' का उद्भव होता है। गंगावतरण कथा और अहल्या, ताड़का शर्वरी, खर-दूषण हनुमान आदि से सम्बन्ध रखने वाले छोटे-छोटे कथाप्रसंगों में प्रकरियों का अस्तित्व देखा जा सकता है। ये सभी प्रकरियाँ मुख्यकथा को लक्ष्य तक पहुँचाने में योग दे रही हैं। रावण वध के उपरान्त समस्त कथानक में 'कार्य' की स्थिति का पता चलता है।

'जानकी जीवन'

कथारम्भ में भगवान राम के आगमन की प्रतीक्षा में नन्दिग्राम में श्री भरत स्वपत्नी सहित विषण्ण मन आसीन हैं।[1] तभी पवनपुत्र हनमान प्रभु आगमन का संदेश सुनाते हैं।[2] श्रीराम अयोध्या में यथा समय पधारकर सभी को आनन्दित करते हैं।[3] पुरवासियों की उत्कण्ठा से प्रेरित होकर श्रीराम ने उन्हें सीताहरण से लेकर रावण वध तक की कथा सुनाई। कुछ समय पश्चात् कौशल्यादि मातायें वशिष्ठ जी के साथ[4] यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए श्रृंगी ऋषि के आश्रम गयीं।[5] गुप्तचर से सीता के चरित्र पर रजक द्वारा लगाए गये जनापवाद को श्रीराम ने सुना।[6] जिससे उनके आदेशानुसार लक्ष्मण ने जानकी जी को वाल्मीकि आश्रम के समीप भागीरथी गंगा के तट पर छोड़ दिया।[7] सीता की व्यथा कथा सुनकर वाल्मीकि उन्हें स्वाश्रम ले गये।[8] तदनन्तर सीता को दो पुत्ररत्न प्राप्त हुए। इसके बाद कौशल्यादि मातायें श्रृंगी ऋषि के आश्रम से लौटती हैं एवं राम के इस कार्य की निन्दा करती हुई विलाप करती हैं।[9] वशिष्ठ जी की आज्ञा से श्री राम अश्वमेध यज्ञ करने का विचार करते हैं। सभी राज्यों से होताहुआ श्याम कर्ण घोड़ा वाल्मीकि के आश्रम के पास पहुँचता है। लव कुश के द्वारा लक्ष्मणादिक वीर युद्ध में पराजित कर दिये जाते हैं अन्त में महर्षि वाल्मीकि श्रीराम को लव कुश का परिचय देते हैं और श्रीराम भगवती सीता को अयोध्या बुलाकर[10] उनके साथ अश्वमेध यज्ञ सम्पादित करते हैं।

1-जानकीजीवन, 1/2 वही, 2-वही, 1/30 3- वही, 1/58 4-वही, 10/3
5- वही, 10/37, 6- वही, 12/21, 7- वही, 13/50, 8-वही, 13/81
9-वही, 16/56 10- वही, 21/14 11-वही, 21/18

स्रोत :—

प्रस्तुत महाकाव्य के कथा का स्रोत भी वाल्मीकि रामायण' ही है, किन्तु किन्हीं-किन्हीं स्थलों को पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है कि 'जानकी जीवन' 'रामायण' से भी आगे है। डा0 मुंशी राम शर्मा के शब्दों में —" महाकवि वाल्मीकि ने रामायण लिखी थी परन्तु जानकी जीवन' का चित्रण वे भी इस रूप में नहीं कर पाये थे जिस रूप में राष्ट्रीय आत्मा जी ने किया है।"[1]

मौलिकता :—

'जानकीजीवन' का भी अधिकांश कथानक वाल्मीकि रामायण का ही है। कहीं कहीं उन्होंने 'भगवान राम' महाकाव्य की तरह प्रसंगों में परिवर्तन कर दिया है। यथा—

(1) वाल्मीकि रामायण में वाल्मीकि की आज्ञानुसार लव कुश श्री राम के यहाँ जाकर रामायण का गान करते हैं। वे लक्ष्मणादिक से युद्ध ~~कर~~ नहीं करते।[2] जबकि इस महाकाव्य में युद्ध करना दिखाया गया है। यह परिवर्तन सम्भवतः उन्होंने जनश्रुति के आधार पर किया होगा।

(2) वाल्मीकि रामायण के अनुसार भगवती सीता शुद्धि की परीक्षा देती हुई पृथ्वी में अन्तर्भूत हो गयी।[3] जबकि प्रस्तुत महाकाव्य में वे भगवान राम के साथ यज्ञ में सम्मिलित हुईं।[4] इस प्रकार भारतीय परम्परानुसार कवि ने इस महाकाव्य को सुखान्त बनादिया है।

कतिपय स्थलों पर पूर्ण मौलिकता के भी दर्शन होते हैं। यथा — सीता — निर्वासन के समय कौशल्यादि मातायें अयोध्या में नहीं थीं। वे वशिष्ठ जी के साथ श्रृंगी ऋषि के यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए उनके आश्रम चली गयी थीं।[5] यज्ञ समाप्ति पर जब वे वापस अयोध्या आईं तब उन्हें बहुत विषाद हुआ उन्होंने श्रीराम के इस कार्य की भर्त्सना की।[6] ~~यज्ञ समाप्ति~~ इस प्रकार कवि ने सीता निर्वासन के समय माताओं को अलग रखकर मानवीयता की रक्षा करते हुए रानियों के चरित्र को ऊपर उठाया है।

1- जानकीजीवन, भूमिका, पृ0 'ओ'

2- तौ रजन्यां प्रभातायां स्नातौ हुतहुताशनौ। यथोक्तमृषिणा पूर्वं सर्वं तत्रोपगायताम्। (वा0रा0 उ0का0 94/1)

3- तामासनगतां दृष्ट्वा प्रविशन्तीं रसातलाम्। पुष्पवृष्टिरविच्छिन्ना दिव्यां सीतामवाकिरत। वही, 97/21

4- जानकीजीवन, 21/18

5- जानकीजीवन, 10/63

6- वही 16/56

अवस्थाएँ :—

'जानकीजीवन' महाकाव्य की कथावस्तु में प्रारम्भ अवस्था प्रथम सर्ग के द्वितीय छन्द से ही आरम्भ हो जाती है, जहाँ समस्त अयोध्या वासियों सहित भरत नन्दिग्राम में राम की चौदह वर्ष की अवधि समाप्त हो जाने पर आगमन की प्रतीक्षा में विषण्ण मन स्वपत्नी सहित आसीन है।[1] इसका प्रसार राजमाताओं के श्रृंगी ऋषि के आश्रम से लौटने के पश्चात् राम द्वारा दिये गये गुरुपत्रिका के उत्तर तक दृष्टिगोचर होता है।[2] प्रयत्न अवस्था बारहवें सर्ग में गुप्तचर के द्वारा राम को रजक की कही हुई बात की सूचना की इस पंक्ति "दूत बोला देव मैं कैसे कहूँ"[3] से लक्ष्मण द्वारा सीता को भागीरथी गंगा के तट पर छोड़ने तक के प्रसंग में मिलती है।[4] जानकी को वाल्मीकि द्वारा गंगा में कूदने से बचाने के प्रसंग से[5] अश्वमेध यज्ञ के श्यामकर्ण घोड़े के वाल्मीकि आश्रम तक पहुँचने के सम्पूर्ण वृत्तान्त में प्राप्त्याशा का भान होता है और लवकुश द्वारा श्यामकर्ण घोड़े को पकड़ने[6] से वाल्मीकि द्वारा लवकुश परिचय के पहले तक के प्रसंग में 'नियताप्ति' दृष्टिगोचर होती है। लवकुश परिचय से अश्वमेध यज्ञ सम्पादित तक फलागम का प्रसार हुआ है।

सन्धियाँ :—

राम के आगमन के लिए प्रतीक्षारत भरत को हनुमान की प्रभु आगमन की सूचना से राजमाताओं के श्रृंगी ऋषि के आश्रम प्रस्थान तक के प्रसंग में मुख सन्धि, गुप्तचर से रजक द्वारा सीता पर लगाये गये लांछन को राम के जानने से सीता की वाल्मीकि भेंट ~~तक~~ तक के प्रसंग में प्रतिमुख, जानकी को दो पुत्ररत्न प्राप्ति से माताओं के श्रृंगी ऋषि के आश्रम से लौटने पर उनके द्वारा किये गये विलाप पर्यन्त गर्भ तथा अश्वमेध यज्ञ से लवकुश द्वारा लक्ष्मणादिक को परास्त करने तक के प्रसंग में विमर्श, सन्धि प्राप्त होती है। वाल्मीकि द्वारा लवकुश के परिचय से अश्वमेध यज्ञ सम्पादन तक के कथानक में निर्वहण सन्धि विद्यमान है।

1-दुर्दान्त प्रशान्त आदि दिन का शीतर्तु के मध्य में,
थे रामानुज नन्दिग्रामपथ में शोकार्द्र बैठे हुए।
दायीं ओर विराजमान उनकी छाया यथा माण्डवी,
बायीं ओर विचारतुल्य उनके शोकस्थ शत्रुघ्न थे। (जानकीजीवन, 1/2-3

2- वही, 11/97 3-वही, 12/19, 4-वही, 13/47, 5-वही, 13/48
6- वही, 20/10

अर्थप्रकृतियाँ :—

'जानकीजीवन' के कथानक में अर्थ प्रकृतियाँ भी विद्यमान हैं। बीजवपन का कार्य सीता द्वारा दोहद इच्छा से होता है किन्तु इसके अन्तर्गत प्रथम सर्ग तक की कथा भी ली जा सकती है। वशिष्ठ की आज्ञा से राम के अश्वमेध यज्ञ के विचार से बिन्दु की स्थिति का पता चलता है जिसका प्रसार श्यामकर्ण घोड़े का वाल्मीकि आश्रम के समीप पहुँचने तक होता है। लव कुश द्वारा अश्व के पकड़ने के प्रसंग से पताका का उद्भव होता है। वाल्मीकि द्वारा लवकुश के परिचय कराने के समय अश्वमेध यज्ञ सम्पादन तक 'कार्य' की समुद्भूति का भान होता है।

'उत्तरायण' :—

कवि शिरोमणि तुलसीदास जी के विषय में परम्परागत जनश्रुति कि — 'वे अपनी पत्नी रत्नावली के प्रेम में इतने आसक्त थे कि भाद्रमास की अँधेरी रात में शव के सहारे यमुना पारकर उसके पीहर में मिलने के लिए जब उपस्थित हुए तब उन्हें पत्नी ने बहुत धिक्कारा और कहा कि जितना प्रेम तुम मुझसे करते हो उतना यदि श्रीराम के प्रति करो तो सर्वदा ~~भक्तु~~ भयमुक्त रहो, यहीसे उनके अन्दर वैराग्य उत्पन्न हो जाता है और वे तुरन्त वापस होकर भगवान राम की आराधना में तल्लीन हो जाते हैं।"— इसे डा0 वर्मा ने अपने महाकाव्य 'उत्तरायण' में परिवर्तित करके अत्यन्त मर्यादित ढ़ग से ~~अपने~~ प्रस्तुत किया है।

तुलसीदास स्वपत्नी सहित अपने ही निवास गृह में आनन्दपूर्वक रह रहे हैं। पत्नी रत्नावली ने एक दिन परिहास में ही उनसे कह दिया कि मेरा नश्वर शरीर आपकी कामनाओं को पूरा करने में कहाँ तक समर्थ होगा? इतना प्रेम यदि राम के प्रति होता तो अपकी भवभीति विनष्ट हो जाती। उक्त हास्य व्यंग्य तुलसीदास को मर्माहत कर गया और उनके प्रसुप्त संस्कार जाग्रत हो गये। वे उसी समय अन्धेरी रात में ही सन्यासी बनकर घर त्याग देते हैं।[1] तदनन्तर प्रयाग चित्रकूट एवं काशी का भ्रमण करते हैं। काशी

1- उत्तरायण, पृ0 30

में शैवों द्वारा पीड़ित किए जाने पर[1] अयोध्या वापस चले आते हैं और सं0 1631 की चैत्र शुक्ल नवमी भौमवार को 'रामचरित मानस' की रचना प्रारम्भ करते हैं। कवि ने 'मानस' में भगवान राम के जन्म से आरम्भकर रावणवध तथा रामराज्य वैभव तक वर्णन किया है। श्री राम के राज्य में कोई भी दैहिक, दैविक तथा भौतिक तापों से पीड़ित नहीं था। ऐसे स्वर्णिम काल में भगवती सीता पर, जिनकी निष्कलंकता लंका में अग्नि परीक्षा द्वारा प्रमाणित हो गयी थी, रजक द्वारा दोषारोपण किये जाने का कोई आधार ही नहीं रहता। सीता निर्वासन का प्रसंग बौद्धों के द्वेषपूर्ण षड्यंत्र से भारतीय वाङ्मय में प्रविष्ट हुआ और वाल्मीकि रामायण के सातवें काण्ड में सम्बद्ध हुआ। यह काण्ड असंबद्ध कथाओं का संग्रह मात्र एवं प्रक्षिप्त है। सीता त्याग की सर्वप्रथम कथा गुणाढ्य कृत वृहत्-कथा[2] तथा उसके बाद सोमदेव कृत 'कथा सरित्सागर'[3] में प्राप्त होती है।

डा0 रामकुमार वर्मा ने तुलसीदास का स्वप्नावस्था में वाल्मीकि ऋषि की उपस्थिति दिखाकर उनके द्वारा (वाल्मीकि) रामायण के उत्तरकाण्ड को प्रक्षिप्त तथा सीता निर्वासन की कथा को बाद में जोड़ा हुआ प्रसंग बताया है।[4] उन्होंने काव्य के आमुख में सीता निर्वासन सम्बन्धी प्रसंग के प्रक्षिप्त होने के सम्बन्ध में अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये जो सत्य प्रतीत होते हैं। स्वयं वाल्मीकि के द्वारा तुलसी, के अन्तर्मन में सीता निर्वासन संबंधी द्वन्द्व का समाधान कराकर कवि ने समस्त मानवता का उपकार किया है।

<u>स्रोत :—</u>

महाकाव्य के सम्पूर्ण कथानक में इतिहास एवं कल्पना का मणिकांचन संयोग हुआ है। कथानक का स्रोत वाल्मीकि रामायण ही है। वैसे अधिकांश भाग उसका मौलिक है किन्तु कथा का आधार उसके 'उत्तरकाण्ड' को बनाया गया है, जिसे वर्मा जी कवि वाल्मीकि द्वारा विरचित नहीं मानते। उनका विचार है कि राम के चरित्र को गर्हित करने के लिए यह अंश जोड़ दिया गया है। डा0 वर्मा के शब्दों में —" इस भाँति मूल वाल्मीकि रामायण और प्रचलित वाल्मीकि रामायण में आठ-नौ-सौ वर्षों का अन्तर है। इन आठ-नौ सौ वर्षों में मूल वाल्मीकि रामायण में उत्तरकाण्ड जोड़कर प्रचलित वाल्मीकि रामायण

1- उत्तरायण, पृ0 62   2- उत्तरायण, पृ0 114

3- वही, पृ0 115   4- वही, पृ0 269

का रूप दिया गया जिसमें अनेक वही विकृतियाँ हैं जो बौद्ध और जैन धर्म की रचनाओं में पायी जाती है।"[1]

तुलसी के गृहत्याग की कथा भी मनगढन्त है जिससे उत्प्रेरित हो वर्मा जी ने उसे अतिकौशल से उचित रूप में अपने महाकाव्य में पिरोया।

मौलिकता :—

कवि डा० रामकुमार वर्मा ने रामकथा सम्बन्धी त्रुटिपूर्ण बातों का विरोध किया है। जनश्रुति के आधार पर तुलसीदास अपनी पत्नी द्वारा ससुराल में अपमान प्राप्त करते हैं और तब सन्यास ग्रहण करते हैं, इसको उन्होंने पूर्णतया परिवर्तित करके अपनीमौलिक बात बतायी।[2]

उनके आधार पर सीता निर्वासन का प्रसंग बौद्धों के द्वेषपूर्ण षडयंत्र से भारतीय वाङ्मय में प्रविष्ट हुआ और वाल्मीकि रामायण के सप्तम काण्ड में जो प्राय; प्रक्षिप्त एवं असंबद्ध कथाओं का संग्रह मात्र है, सम्बद्ध हुआ। सीता त्याग की कथा सर्व प्रथम गुणाढ्य कृत वृहत्कथा एवं तदनन्तर सोमदेव कृत कथा सरित्सागर[3] में उपलब्ध होती है।

उन्होंने स्वप्नावस्था में तुलसीदास जी से वाल्मीकि को यह कहते हुए दिखाया है कि उत्तरकाण्ड प्रक्षिप्त है एवं सीता निर्वासन प्रसंग बाद में जोड़ा गया है।[4]

इस प्रकार उत्तरायण में अनेक मौलिकताएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

अवस्थाएँ :—

'उत्तरायण' महाकाव्य की कथावस्तु में 'प्रारम्भ' अवस्था का श्रीगणेश -- 'बालकपन था — मेरे मन में थी भ्रान्ति-भूल'[5] पंक्ति से होता है जिसका अन्त प्रथम सर्ग में ही तुलसी के इस कथन से कि 'इस नश्वर शरीर से कभी प्रेम नहीं करूँगा और मेरा अनुराग सदा राम के प्रति रहेगा।[6] से हो जाता है। उनके गृहत्याग से पंचम सर्ग के अन्त

1- उत्तरायण, आमुख पृ0 12

2- वही, पृ0 32

3- वही, पृ0 114

4- वही, पृ0 118 5-- वही, पृ026 6—वही, पृ0 34

तक के कथानक में 'प्रयत्न' एवं षष्ठसर्ग के प्रथम छन्द[1] से सप्तम सर्ग की 'पुष्पक विमान पर बैठ अवधपुर आये' इस पंक्ति तक प्राप्त्याशा के दर्शन होते हैं। राम के तिलक वर्णन से अष्टम सर्ग की 'ऐसा कहते श्रीराम मुझे निश्चय है, वे पूर्ण पुरुष हैं, उन्हें न कोई भय है।"[2] पंक्तियों तक नियताप्ति का प्रसार दिखायी देता है और इस कथन से कि 'मेरा दृढ मत है कि किसी राम विरोधी ने उत्तरकाण्ड की रचना की'[3] से महाकाव्य के अन्त तक फलागम का भान होता है।

सन्धियाँ :—

तुलसी की पूर्व स्मृति से स्वपत्नी से बिदा मांगने तक के प्रसंग में 'मुख', उनके गृह त्याग से अयोध्या में निवास तक 'प्रतिमुख' एवं मानस की रचना के प्रारम्भ से राम के वन से अयोध्या लौटने तक के प्रसंग में 'सन्धि' दिखायी देती है। राम के तिलकोत्सव वर्णन से अष्टम सर्ग के अन्त तक 'विमर्श' तथा नवम सर्ग में तुलसी के स्वप्न दर्शन के साथ निर्वहण सन्धि का उदय हो जाता है। जिसका प्रसार महाकाव्य के अन्त तक चलता है।

अर्थप्रकृतियाँ :—

अर्थ प्रकृतियों में — बीज वपन का कार्य तुलसी की पूर्वस्मृति(तुलसी ने सोचा — राम कथा का सही अर्थ)[4] से हो जाता है। षष्ठ सर्ग में 'राम चरित मानस' की रचना के साथ ही प्रयत्न प्रसार के रूप में विन्दु की अवस्थिति का पता चलता है और राम के अवधपुर प्रत्यागमन के साथ इसका अवसान दिखायी देता है। राम राज्य वर्णन में अष्टम सर्ग के अन्त तक 'पताका' का भान होता है। प्रकरियों में त्रिवेणी में डूबती कन्या को बचाना, काशी प्रयागवास से सम्बन्धित वर्णन आदि लघु प्रसंग आते हैं जो कथावस्तु को आगे बढ़ाने में सहायक होते हैं। तुलसी की स्वप्नावस्था से कार्य की स्थिति का पता चलता है।

1- उत्तरायण, पृ0 68

2- वही, पृ0 91

3- वही, पृ0 102

4- वही, पृ0 103   5- वही, पृ0 20

'अरुण रामायण'

पोद्दार' जी ने 'अरुण रामायण' में भी परम्परागत चली आ रही राम कथा को ही लिया, जो लोक मानस में अत्यन्त प्रसिद्ध है।संक्षेप में कथा इस प्रकार है— पुत्रविहीन दशरथ की चिन्ता, वशिष्ठ जी की अध्यक्षता एवं विश्वामित्र के निर्देशानुसार पुत्रेष्टि यज्ञ सम्पादन,[1] चैत्र शुक्ल नवमी को चारों भाइयों का प्राकट्य, बाल लीला, ताड़का वध, धनुर्भंग, विवाह, वनयात्रा, सीताहरण, बालिवध, सेतुबन्धन, रावणादिक का विनाश श्री राम का अयोध्यागमन, राज्याभिषेक, रामराज्य वर्णन, एवं सीता निर्वासन की भी कथा का सन्निवेश किया गया है।

लव कुश नामक दो पुत्रों को सीता यथा समय वाल्मीकाश्रम में जन्म देती हैं। जिन्हें ऋषि वाल्मीकि, रामायण की कथा सुनाते हैं जिसे वे स्थान-स्थान पर सुनाते हैं।इसी के द्वारा ही सीता एवं महर्षि का आगमन अयोध्या हो जाता है। श्री रामचन्द्र जी की इच्छा का अनुसरण कर सती सीता पृथ्वी के गर्भ में विलीन हो जाती है[2] और इसी कारुणिक प्रसंग के साथ उक्त महाकाव्य की कथा समाप्त हो जाती है।

स्रोत :— श्री रामावतार पोद्दार द्वारा प्रणीत 'अरुण रामायण' की कथा का स्रोत भी 'वाल्मीकि रामायण' ही है।

मौलिकता :—

महाकाव्य के कथानक में कवि ने कुछ परिवर्तन किये हैं जिन्हें कवि की मौलिक उद्भावनाएँ कहा जा सकता है —

(1) पुत्र प्राप्ति के लिए राजा दशरथ का हरिद्वार में जपकरना एवं विश्वामित्र का राजा दशरथ से नवीन गृहस्थिति पर विचार करते हुये उन्हें वशिष्ठ जी के निर्देशन में पुत्रेष्टि यज्ञ करने को प्रेरित करना — यह कथानक लोक प्रचलित कथावस्तु से (श्रृंगी ऋषिद्वारा साधित[3] पुत्रेष्टि यज्ञ से श्री रामादिक का जन्म होना) सर्वथा भिन्न है।

(2) बालक्रीड़ारत श्री राम ने एक दिन दशरथ के सिर से मुकुट उतार दिया।[4] यह कहना उनकी मर्यादा पुरुषोत्तमता के विपरीत है।

1-अरुणरामायण, पृ0 8 बालकाण्ड,

2- वही, उत्तरकाण्ड, पृ0 642

3- वही, बालकाण्ड, पृ0 7-8   4- वही, पृ0 12

(3)श्रीरामचन्द्र जी के हृदय में बाल्यकाल में ही वैराग्य उत्पन्न हो गया। वे अहर्निश आत्मलीन रहने लगे। उन्होंने तपस्वियों का जीवन ग्रहण कर लिया।[1]

(4)इन्होंने परशुराम की जनकपुर में स्थिति धनुष टूटने के पहले प्रदर्शित की है और धनुष के तोड़े जाने के निर्णय से सहमत दिखलाया गया है।[2]

(5)कवि ने मंथरा के कुबड़ी होने में श्रीराम के चापल्य को कारण माना है।[3]

(6)मन्थरा अपने को रावण का गुप्तचर बताती है।[4]

अवस्थाएँ :–

अरुणरामायण' में प्रारम्भ की अवस्था का श्री गणेश –' सम्राट चक्रवर्ती दशरथ का चौथापन"[5] पंक्ति से होता है और अयोध्याकाण्ड में राम के वनगमन[6] तक इसकी उपस्थिति परिलक्षित होती है। वनगमन से सीताहरण की घटना तक[7] प्रयत्न तथा अरण्यकाण्ड में "देखा जटायु को प्रभु ने पथ पर क्षत-विक्षत' से लंकाकाण्ड में रावण द्वारा सेतुबन्धन की सूचना[8] तक प्राप्त्याशा अवस्था का भान होता है। सेतुबन्धन की सूचना से राम रावण युद्ध[9] तक नियताप्ति एवं रावणवध से लेकर महाकाव्य के अन्त तक फलागम का प्रसार दृष्टिगोचर होता है।

1-अरुणरामायण, बालकाण्ड, 15 2- अरुणरामायण, बालकाण्ड, 55, 3-वही, 118

4- वही, पृ0 122 5- वही, पृ0 5

6- हर्षित आँसू से सजल विदाई की वेला। अब लगा उजड़ने चित्रकूट का प्रिय मेला
× × × × ×
सब साथ साथ ही चले किन्तु रह गये राम।
रह गई जानकी, रुके रहे लक्ष्मण ललाम। – अरुणरामायण, पृ0 321)

7- मधुकर हे मधु बरसाने वाली कहाँ कहाँ?
हे सुमन सुगन्ध लुटाने वाले कहाँ गयी? (अरुणरामायण, पृ0 394)

8- कर लिया बन्दरों ने समुद्र को स्वयं पार?
सागर पर सेतु बनाकर आये वे गँवार। (वही, 498)

9- हे शक्ति सफल दुर्गे मैं वाण चलाता हूँ
तेरे माध्यम से भूमि कलंक मिटाता हूँ। (वही, 572)

सधियाँ :—

इसी प्रकार राम जन्म से वनगमन तक मुख सन्धि, वनगमन से सीता - हरण तक प्रतिमुख, जटायु मिलन से सीता के अन्वेषण अभियान तक गर्भ एवं हनुमान के समुद्रलंघन से लेकर मेघनाद वध तक विमर्श सन्धि दिखायी देती है। निर्वहण सन्धि के दर्शन लंकाकाण्ड में रावण वध के साथ ही होने लगते हैं।

अर्थप्रकृतियाँ :—

'अरुण रामायण' में बीजवपन का कार्य कौशिक द्वारा पुत्रेष्टि के लिए कहने से ही हो जाता है।[1] सीता हरण के साथ बिन्दु की अवस्थिति का पता चलता है जो हनुमान एवं राम के मिलन तक निरन्तर दृष्टिगोचर होता रहता है। हनुमान मिलन से ही 'पताका' उद्भूत होती है। अहल्या, ताड़का, शबरी, खरदूषण, हनुमान निषाद आदि से सम्बन्धित छोटी-छोटी कथाओं में प्रकरियों के दर्शन होते हैं। रावण वध के अनन्तर 'कार्य' की समुद्भूति का भाव होता है।

'सत्यकाम'

प्रस्तुत महाकाव्य की कथा का प्रारम्भ जाबाल के गौतम आश्रम पहुँचने से होता है। वह सान्ध्य वेला में जबकि सम्पूर्ण वनप्रान्त ध्यानावस्थित मुनि सदृश प्रतीत होता है, निखिल जगत् को परमेश्वर के चमत्कृत रूप में देखता हुआ उसी की समुपस्थिति प्रत्येक वस्तु में पाता है और इसी ऊहापोह में मातृ प्रेरित दीक्षा प्राप्त करने के लिए ऋषिवर गौतम के आश्रम में पहुँचता है।[2] और छात्रों के लिए हँसी का पात्र इसलिए बनता है क्योंकि उसे अपने गोत्र एवं पिता का ज्ञान नहीं है।[3] लौटकर माँ से वह अपने पिता के विषय में पूछता है। माँ ईश्वर को ही उसका पिता बताती है और गुरु के लिए संदेश देती है कि उन्हें प्रणाम करके कहना कि सोलह वर्ष व्यतीत हो गये जिससे उसे स्मृति नहीं

1- नृप ने सब कार्य किये कौशिक कथनानुसार
मिट गया एक दिन उनके दुखका अन्धकार
नवमी तिथि शुक्ल पक्ष, पावन प्रिय चैत्र मास
अभिजित मुहूर्त में हुआ अवतरित वह प्रकाश।— अरुणरामा0 पृ08

2- सत्यकाम, जिज्ञासा, पृ0 13 3- सत्यकाम, जिज्ञासा, 14

है जिसके कारण ही वह गोत्र बताने में असमर्थ है, किन्तु उसकी क्वाँरी कोख मुनि सेवा में ही भर गयी थी।[1]

उक्त सत्य को जानकर जाबाल को गौतम ऋषि अपना शिष्य बना लेते हैं। कुछ दिन दीक्षित करने के बाद उसे निर्जन में एक सहस्त्र गायें देकर अन्तर्दृष्टा बनने के लिए भेजते हैं। वह उसी निर्जन में गोसेवा करता हुआ, वृषभ, अग्निदेव, हंस, सिंह, मद्गु, गृद्ध आदि से अपने को दीक्षित करके गुरु आश्रम को लौटता है। इसी अवसर पर उसकी भेंट ऋचा नाम की युवती से होती है जो उसे अपना सर्वस्व देने को तत्पर रहती है। किन्तु उसके पिता आदि उसका विवाह अन्यत्र करके उसे भेज देते हैं जिससे जाबाल ऋचा के वियोग में अत्यन्त दुखी रहता है। बाद में जब गुरु द्वारा भेजने पर माँ के पास जाता है तो माँ उसका विवाह ऋता नाम की कन्या से कर देती है जिसमें वह ऋचा के दर्शन करता है।[2] तदनन्तर गुरु भी वहीं पहुच जाते हैंजिनके समक्ष ही माँ जाबाल को बताती है कि यही तुम्हारे पिता है क्योंकि गुरु ही वास्तविक पिता होता है और उन्हीं के समक्ष अपने प्राण त्याग देती है। इस प्रकार सत्यकाम की माँ की इच्छा मृत्यु के साथ ही कथा समाप्त हो जाती है।

स्रोत :–

सत्यकाम महाकाव्य की कथा छान्दोग्य उपनिषद से ली गयी है। पंत जी के शब्दों में –'' सत्यकाम में साधना का सत्य तथा काव्य का सत्य तदाकार हो गये हैं। कथा भाग का कृशपंजर मुख्यतः छान्दोग्य उपनिषद् से लिया गया है , जिसके अनुसार सत्यकाम निर्जन में वृष, अग्नि, हंस और मद्गु– चार देवों से भी दीक्षा देता है।''[3]

मौलिकता :–

छान्दोग्य उपनिषद् में जाबाल' (सत्यकाम) गौतम ऋषि से दीक्षा लेने के साथ वृष, अग्नि, हंस और मद्गु चार देवों से दीक्षित होता है। इसके अतिरिक्त शेष वर्णन उनका अपना मौलिक है।

1- सत्यकाम, जाबाला पृ0 26

2- वही, मातृभक्ति, पृ0 223   3– वही, विज्ञप्ति

जावाला द्वारा अपने अन्तर्मन में सत्यकाम के जन्म के विषय में सोचना[1] ऋचा का प्रेम प्रसंग[2] गृद्धों को लेकर लोभ, नर पशुओं को लेकर काम, पर उनका कड़ा प्रहार[3] जैसे वन में ~~एक~~ वनराज की गरिमा से सभी वन जीव त्रस्त रहते हैं वैसे ही मनुष्यों में राजा एवं धर्मानुयायी आदि से मानवों में एकता न उत्पन्न होना,[4] मातृ-शक्ति प्रसंग, षड्ऋतु वर्णन एवं जाबाला की इच्छा मृत्यु आदि अनेक प्रसंग उनके अपने मौलिक हैं जो कल्पना की पीठिका पर आधारित है।

अवस्थाएँ :—

'प्रारम्भ' अवस्था का उदय 'जिज्ञासा' सर्ग की 'कौन बड़ा न्यग्रोध वृक्ष के नीचे उन्मन[5] से होता है जिसका प्रसार गौतम ऋषि के आश्रम में छात्रों द्वारा हँसी[6] उड़ाये जाने के उपरान्त माँ जाबाला से अपने गोत्रादि पूँछ कर माँ से अभिप्रेरित गुरु आश्रम की ओर सत्यकाम के अग्रसर होने तक दृष्टिगोचर होता है। जब जाबाला तपोवन के तोरण पर पहुँचता है और उसे गुह्य प्रेम आकर्षित करने लगता है[7] यहीं से 'प्रयत्न' अवस्था का पता चलता है। 'दीक्षा' सर्ग की इन —

जैसी गुरु की आज्ञा, वह चरणों की रज ले,
~~एक~~ गदगद स्वर में कर कृतार्थता व्यक्त विनत सिर,
एक बार आश्रम पर उपकृत दृष्टि डालकर
सत्यकाम चल दिया निर्जन स्थल को।[8]

पक्तियों में 'प्राप्त्याशा' का भान होता है जिसकी अभिवृद्धि मन का निर्जन सर्ग के अन्त तक निरन्तर होती जाती है। 'नियताप्ति' अवस्था प्राण ब्रह्म सर्ग के प्रारम्भ से जीव-ब्रह्म सर्ग के अन्त तक मिलती है। तदनन्तर 'गुरुकुल' सर्ग की —

1- सत्यकाम, जावाला, पृ0 27
2- सत्यकाम, साक्षात्कार, पृ0 98-123
3- वही, जीवब्रह्म, पृ0 185
4- वही, पृ0 180
5- सत्यकाम, पृ0 4
6- वही, पृ0 15
7- वही, पृ0 35
8- वही, पृ0 47
9- उसने गुरुकुल का पथ पकड़ा पुलकित मन से।
चुम्बकीय आकर्षण से खिंच कर गुरुवर के। (सत्यकाम, पृ0 190)

"जब परिचित गोपुर में पहुँचा, देखा उसने

ऋषिवर को सामने खड़े निज पर्णकुटी के,"

पंक्तियों से फलागम प्रस्फुटित होता है और महाकाव्य के अन्त तक दिखायी देता है।

सन्धियाँ :--

जिज्ञासायुक्त सत्यकाम के परिचय से माँ जाबाला के समझाने तक के प्रसंग में मुखसन्धि, माँ से अभिप्रेरित सत्यकाम के तपोवन प्रवेश तक के वर्णन में 'प्रतिमुख' सन्धि दिखाई पड़ती है। गुरु से दीक्षा प्राप्त करने के साथ गर्भ सन्धि प्रस्फुटित होती है और सत्यकाम के सौ गायों के साथ निर्जन वन में प्रवेश करने तक चलती है। विमर्श सन्धि प्राण ब्रह्म सर्ग के प्रथम छन्द से जीव ब्रह्मसर्ग के अन्त तक दृष्टिगोचर होती है। तदुपरान्त दीक्षित सत्यकाम के गुरु आश्रम के प्रवेश के साथ 'निर्वहण' सन्धि दिखाई पड़ती है।

अर्थप्रकृतियाँ :--

कथावस्तु में बीज वपन का कार्य सत्यकाम के गुरु आश्रम में प्रथम प्रवेश के साथ हो जाता है। प्रयत्न प्रसार की दृष्टि से जाबाला द्वारा गुरु के समक्ष सत्य भाषण से विन्दु की स्थिति का पता चलता है, जब उसे गुरु स्वीकार कर दीक्षित करने लगते हैं। सहस्र गायों के साथ उसके निर्जन प्रवेश के साथ पताका का पता चलता है और यह अर्थप्रकृति जीव ब्रह्म सर्ग के अन्त तक दिखाई पड़ती है। दीक्षित सत्यकाम के गुरु आश्रम के प्रवेश के साथ कार्य की समुद्भूति का भान होता है।

'निषादराज'

प्रस्तुत महाकाव्य में रामकथा के अत्यल्प अंश -- राम के श्रृंगवेरपुर पहुँचने से लेकर भरत मिलाप तक की कथा का विन्यास है। अति लघु कथांश को शर्मा जी ने इतने सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है कि कथा की न्यूनता का आभास तक नहीं होता।

गुह को अपने सेवक के द्वारा विदित होता है कि श्री रामचन्द्र जी बिना राजसी ठाट-बाट के सीता एवं लक्ष्मण के साथ आ रहे हैं। वह उपहार तैयार कर और सबको साथ ले मिलने के लिए चल देता है।[1] राम ने अपने प्रिय सखा को हृदय से लगा

1- निषादराज, पृ0 16

कर उससे मिले एवं सीता से परिचय कराया। रात्रि में श्रीराम को कुश साथरी में सोते देख निषाद अत्यन्त दुखी हुआ।[1] एवं सम्पूर्ण रात्रि विविध चर्चायें होती रहीं।[2] प्रातः सुमन्त्र के विदाई के समय लक्ष्मण ने अत्यन्त क्रुद्ध हो दशरथ के लिए संदेश में अति कठोर शब्दों का प्रयोग किया और गुह भी श्रीरामचन्द्र जी के वनवास को निंदनीय कार्य बताया[3] श्रीराम के पद प्रक्षालन के बाद केवट गुह सहित राम लक्ष्मण एवं सीता को गंगा के पार उतार देता है। सीता प्रभु की इच्छानुसार उतराई में मुंदरी देना चाहती हैं किन्तु केवट यह कहते हुए वापस कर देता है कि जब लौटकर आप इस घाट से पुनः आयेंगी और उस समय जो आप देंगी मैं मुदित मन स्वीकार कर लूँगा।[4] वहाँ से राम भरद्वाज मुनि आश्रम आते हैं और उनके शिष्यों के साथ आगे बढ़ते हैं। प्रकृति की अनेक छटाओं का अवलोकन करते हुये वे यमुना को पारकर वाल्मीकि आश्रम में उनके स्वागत को स्वीकार करते हैं।[5] वहाँ से विदा हो राम के आदेशानुसार मंदाकिनी के किनारे लक्ष्मण और गुह द्वारा पर्णकुटी निर्मित की जाती है। राम की आज्ञा से गुह श्रृंगवेरपुर वापस लौट आते हैं।[6]

भृत्य के समाचार द्वारा यह ~~समाचार~~ जानकर कि भरत ससैन्य आ रहे हैं श्रृंगवेरपुर में निषादों की बैठक आहूत होती है एवं गुह यह समझकर कि भरत राम को मारने जा रहे हैं यहाँ तक उत्तेजित हो जाता है कि वह युद्ध के लिए तैयार हो जाता है किन्तु एक वृद्ध मंत्री की सुसम्मति से वह भरत से मिलने चल देता है।[7] किन्तु मिलने के बाद भी गुह की भ्रान्ति दूर नहीं होती और वह वापस लौटना चाहता है तभी भरत अपनी सम्पूर्ण बात गुह से बताते हैं जिससे गुह लज्जित होते हुए उनसे क्षमा याचना करता है।[8] तदुपरान्त सभी चित्रकूट के लिए प्रस्थान करते हैं।

चित्रकूट में धूल उड़ते देख श्रीराम कारण जानने को उत्सुक होते हैं। वन - वासियों से धूल उड़ने का कारण सुनकर लक्ष्मण क्रुद्ध होते हैं और राम उन्हें समझाते हैं क्योंकि वे भरत के स्वभाव से परिचित हैं। भायप भक्ति अनुरक्त भरत आकर राम के

1-निषादराज, पृ0 19
2- वही, पृ0 30
3- वही, पृ0 45
4- वही, पृ0 54
5- वही, पृ0 78
6- वही, पृ0 82
7- वही, पृ0 98-99
8- वही, पृ0 113

चरणों में गिर पड़ते हैं और इस प्रकार भरत मिलाप अत्यन्त करुणा एवं हर्ष के साथ सम्पन्न होता है। पितृ मरण सुनकर राम अत्यन्त दुखी होते हैं एवं मंदाकिनी के किनारे श्राद्ध क्रियाएँ करते हैं।[1]

कैकेयी भरत एवं अन्य अयोध्यावासियों के द्वारा अनुनय करने पर भी राम वापस नहीं लौटते। उनकी चरण पादुकाएँ लेकर भरत नन्दिग्राम में राम राज्य के प्रति - निधि के रूप में कार्य करने लगते हैं। निषाद विषादयुक्त स्वसभा में राम गुणगान करते हैं। इसी के साथ महाकाव्य की कथा विश्राम ले लेती है।[2]

स्रोत :—

डा0 रत्नचन्द्र शर्मा द्वारा प्रणीत 'निषादराज' महाकाव्य का कथानक वाल्मीकि रामायण से लिया गया है। शर्मा जी के शब्दों में —"निषादराज गुह का कथा - नक रामायण की एक छोटी-सी परन्तु प्रसिद्ध घटना है। वाल्मीकि तुलसी, अध्यात्म रामा- यण मैथिलीशरण गुप्त, सभी ने इसका उल्लेख किया है।"[3]

मौलिकता :—

कथानक वाल्मीकि रामायण से लेते हुए भी महाकाव्य में कुछ मौलिक उद् - भावनाएँ भी दृष्टिगोचर होती हैं जिनमें प्रमुखतः निम्नलिखित हैं —

(1)राम सीता से गुह को परम सखा बताते हुए कहते हैं कि ये तुम्हारे विवाह के समय समुपस्थित थे। परशुराम के कलहकाल में ये अत्यन्त उत्तेजित थे।[4]

(2)इन्होंने लक्ष्मण द्वारा सुमन्त्र के लौटते समय इतना कटु कहलवाया है कि रामायण में नहीं।[5]

(3)राम गुह से कहते हैं कि किसी केवट को बुलाओ जो हमें गंगापार कर दे।[6]

(4)राम एवं लक्ष्मण द्वारा गंगा स्तुति उनकी अपनी मौलिकता है।[7]

(5)सीता द्वारा न्यग्रोध वृक्ष की पूजा एवं तत्सम्बन्धी लक्ष्मण राम की बातचीत अपने में नवीन है।[8]

1- निषादराज, पृ0 133
2- वही, पृ0 50
3- वही, दो शब्द
4- वही, पृ0 20
5- वही, पृ0 45
6- वही, पृ0 50
7- वही, पृ0 56-57
8- वही, पृ0 77-78

(6) गुह का सुझाव कि राम चाहे जिसे राज्य दें या न दें किन्तु भरत उसके प्रतिनिधि के रूप मेंकार्य करेंगे जिसे सुनकर सभी ने उसकी युक्ति को बहुत सराहा।[1]

(7) चौदहवें सर्ग में गुह की सभा का लगना, राम का गुण कथन एवं गुह द्वारा भरत की भावप भक्ति वर्णन अति रोचक बन पड़ा है। वे अपने अश्रु जल द्वारा रामपद-क्षालन करना चाहते हैं।[2]

इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य में अनेकों प्रसंग मौलिक रूप से प्रस्तुत किये गये हैं।

<u>सन्धियाँ :—</u>

'निषादराज' महाकाव्य की कथा का आरम्भ निषादपति गुह के श्रृंगवेरपुर के दिव्य दृश्य अवलोकन से होता है।[3] यहीं से प्रारम्भ अवस्था का भी श्री गणेश हो जाता है। इसका प्रसार चौथे सर्ग के अन्त तक दिखायी पड़ता है। प्रयत्न की स्थिति पाँचवे सर्ग के 20 वें छन्द से दृष्टिगोचर होने लगती है जब राम गुह से किसी केवट को नाव लेकर आने के लिए कहते हैं। राम के लिए पर्णकुटी बनाकर जब गुह श्रृंगवेरपुर के लिए प्रस्थान करते हैं[4] तभी इस अवस्था का अवसान परिलक्षित होने लगता है। आठवें सर्ग के प्रथम छन्द से प्राप्त्याशा के दर्शन होने लगते हैं जो भरत के लिए किए गये गुह के आतिथ्य सत्कार के अनन्तर कैकेयी पश्चात्ताप तक निरन्तर दिखायी देती है।[5] नियताप्ति अवस्था भरतकेश्रृंगवेरपुर से चित्रकूट के लिए प्रस्थान से प्रारम्भ होती है और चित्रकूट की सभा में गुह के कथन तक [6] निरन्तर परिलक्षित होती है और भरत के इस कथन —

> "देवें प्रभु तब चरण पादुका "कहा भरत ने
> सपथ आर्य के चरणों की हूँ खाकर कहता —
> काटूँगा यह अवधि समय की सब दुख सहता।[7]

से फलागम दिखाईदेने लगता है।

1- निषादराज, पृ0 142
2- वही, पृ0 144-150
3- वही, पृ0 1/23
4- वही, 7/82
5- वही, पृ0 8/27
6- वही, 13/62
7- वही, पृ0 13/63

सन्धियाँ :—

प्रथम सर्ग के 23 वें छन्द से राम के कथन —

राम बोले " करो केवट त्यार नौ को

पार श्रु गंगा के पहुँचाओ सौम्य हमको। " [1]

तक मुखसन्धि, गंगा पार करने से पर्णकुटी बनाकर गुह के शृंगवेरपुर लौटने तक के प्रसंग में प्रतिमुख एवं भृत्य से भरत के आने के समाचार को गुह के अवगत करने से लेकर उसके द्वारा किए गये भरत के आतिथ्य सत्कार तक गर्भसन्धि दिखाई पड़ती है। गुह सहित भरत के शृंगवेरपुर से चित्रकूट प्रस्थान से भरत को राम की चरण पादुका प्राप्ति तक विमर्श और भरत एवं गुह के चित्रकूट लौटने से महाकाव्य की इति तक निर्वहण सन्धि दृष्टिगोचर होती है।

अर्थप्रकृतियाँ :—

गुह को अपने सेवक द्वारा बाल सखा श्री राम के आगमन की सूचना मिलती है। यहीं से बीजवपन का कार्य सम्पादित होता है। बिन्दु की स्थिति का भान भरत के शृंगवेरपुर ससैन्य सहित आगमन से होता है। शृंगवेरपुर से चित्रकूट को प्रस्थान से चरण पादुका याचना तक पताका परिलक्षित होती है। तदनन्तर गुह एवं भरत के चित्रकूट से आने से लेकर महाकाव्य के अन्त तक कार्य की स्थिति का पता चलता है।

'रामदूत'

प्रस्तुत महाकाव्य में भी वाल्मीकि रामायण का कथांश – हनुमान के सीता की खोज के लिए उद्यत होने से लेकर सेतुबन्ध तक की कथा का विनियोजन है। अपने सागर तरण के पहले का प्रसंग अर्थात् इक्ष्वाकु वंश उत्पन्न दशरथ का परिचय, राम जन्म, ताड़कावध, धनुर्यज्ञ एवं राम सीता परिणय, कैकेयी द्वारा अपने न्यास रूपमें स्थित दशरथ से दो वरदानों की प्राप्ति, राम वनगमन केवट संवाद, भरत मिलाप, पंचवटी प्रसंग शूर्पणखा का नाक कान हरण, मायामृग का पंचवटी में आगमन, शबरी प्रसंग, सुग्रीव

1- निषादराज, पृ0 5/25

मिताई बालिवध, सीता खोज, अभियान आदि प्रसंगों के साथ अपना परिचय हनुमान सीता से अशोकवन में देते हैं।

सीता अन्वेषण के समय हनुमान सबको आश्वासित करते हुए कहते हैं कि मैं राघव-कर-विनिर्मुक्त प्रकार शर के समान जाऊँगा और सीता को ले आऊँगा एवं रावण को बन्दी बना लूँगा। जामवन्त से उचित कार्य के लिए प्रेरित हनुमान सुरसा की परीक्षा में सफल हो एवं भयावह दानवी को अचेत कर लंका में प्रविष्ट हुए।[1] लंका के अनेक स्थलों को देखते हुए हनुमान रावण के स्त्रीगृह में मन्दोदरी को देखकर सीता की शंका करते हैं किन्तु दूसरे ही क्षण उनकी महिमा को ध्यान कर आगे बढ जाते हैं। वे सरमा एवं उनके पति विभीषण के परस्पर वार्तालाप से यह जान जाते हैं कि सीता अशोकवन में है।[2]

अशोकवन में आकर वे सीता अन्वेषण में लग जाते हैं और बहुत परिश्रम के बाद उन्हें अशोक वृक्ष के नीचे अत्यन्त देदीप्यमान वेदिका के ऊपर बैठी हुई विषाद युक्त देखते हैं।[3] हनुमान वहीं लता गुल्मों में छिप जाते हैं। इसी समय रावण अपनी नारियों सहित वहाँ आता है एवं सीता को अनेक प्रकार से समझाता है सीता उसे धिक्कारती है। अतः वह उन्हें दो मास का समय देकर चला जाता है।[4] राक्षसियाँ रावण के निर्देशानुसार उन्हें त्रास देने का प्रयास करती है किन्तु त्रिजटा द्वारा अपने स्वप्न की बात कहते हुए सबको भयभीत कर देती है जिससे सभी राक्षसियाँ चली जाती हैं एवं सीता विलाप करने लगती हैं। इसी बीच हनुमान राम नाम अंकित मुद्रिका उनके समीप डाल देते हैं।[5] हनुमान सुग्रीव मिताई तक रामकथा का वर्णन करते हुए अपना परिचय सीता को देते हैं। सीता के निर्देशानुसार वे फल खाने लगते हैं एवं सम्पूर्ण वन को नष्ट करने लगते हैं जिससे क्रुद्ध रक्षक उन पर प्रहार करते हैं किन्तु सभी को वे मार देते हैं। कुछ अधमारे व्यक्ति रावण को अशोक वन की खबर सुनाते हैं।[6] अनुमान जी रावण की अस्सी हजार सेना विनष्ट कर उसके पुत्र अक्षयकुमार को मार देते हैं जिससे कई हजार

1- रामदूत, पृ0 44-49
2- वही, पृ0 11
3- वही, पृ0 23-32
4- वही, पृ0 35
5- रामदूत, पृ0 38
6- वही, पृ0 43
7- वही, पृ0 55

सेना के साथ सप्त महाराथियों को भेजता है जो तुरन्त ही मारेजाते हैं।* महाबली राक्षसों एवं अक्षयकुमार के वध से क्रुद्ध रावण ने मेघनाद को भेजा, जिसके साथ घनघोर युद्ध करते हुए हनुमान स्वयं को बंधा दिया जिससे वह हनुमान जी को दरबार में ले गया। वहाँ उनके दण्ड का विधान किया गया जिसमें विभीषण ने अंग भंग की सलाह दी अतः पवनपुत्र की पूँछ में आग लगा दी गयी। हनुमान तुरन्त घर घर में जागर सम्पूर्ण लंका में आग लगा दी और अन्त में समुद्र में कूदकर अपनी पूँछ की आग बुझाई। तद-नन्तर सीता से चूड़ामणि लेकर वानर समूह में आ मिले और उनको सारा वृत्तान्त सुनाया। वे सभी मिलकर मधुवन के फल खाकर राम जी से मिलते हैं एवं जाम्बवान द्वारा हनु-मान के पौरुष की कथा उनसे बताई जाती है, जिससे राम हनुमान की प्रशंसा करते हुए पूर्ण वृत्तान्त को अवगत करते हैं। तदनन्तर वे युद्ध के लिए प्रस्थान कर देते हैं और तुरन्त ही सम्पूर्ण सेना समुद्रके किनारे पहुँच जाती है।[1] श्री राम सेना सहित महेन्द्र महा-गिरि में विश्राम करनेलगते हैं जिसकी सूचना रावण पाता है जिससे विचलित होकर सभा आहूत करता है। रावण को माल्यवंत मंत्री एवं विभीषण ने समझाया जिससे क्रोधित रावण ने विभीषण को लंका से निकाल दिया।[2] विभीषण राम सेना में सम्मिलित हो जाता है और उससे लंका के बल पौरुष से अवगत होते हैं।[3]

स्रोत :—

रामदूत महाकाव्य की कथावस्तु भी वाल्मीकि रामायण से ली गयी है। कुँवर चन्द्र प्रकाश सिंह जी के शब्दों में —

"भगवान राम के चरित्र के महान गायक पुण्यश्लोक महाकविद्वय वाल्मीकि और तुलसी मेरे प्रमुख प्रेरणा स्रोत रहे हैं। उन महिमाशाली महाकवियों की वाणी की सुरसरिता में निरन्तर अवगाहन करते रहने के कारण ही मुझे रामदूत के परम पवित्र व्यक्तित्व का कुछ प्रकाश मिल पाया।"[4]

मौलिकता :—

कवि ने कथानक में कहीं-कहीं परिवर्तन करके महाकाव्य को मौलिकता प्रदान करने का प्रयत्न किया है जिनमें से कुछ उदाहरण निम्नलिखित है —

1- रामदूत, पृ0 131 3- रामदूत, पृ0 180

2- वही, पृ0 163 4- रामदूत, आत्मनिवेदन,

(1) हनुमान लंका में पहुँचकर विभीषण से मिलने नहीं बल्कि उनके एवं उनकी पत्नी के सीता सम्बन्धी वार्तालाप से उनके सन्धान का पता लगाते हैं।[1]

(2) सीता द्वारा हनुमान से फल खाकर क्षुधा मिटाने के लिए कहने से[2] बहुत बड़े मानवीय आचरण की रक्षा हुई है। राम चरित मानस आदि में हनुमानस्वयं फल खाने के लिए कहते हैं, जिसमें आतिथ्य आचारण के साथ वात्सल्य का ह्रास होता है। यहाँ पर कवि ने इन सबकी रक्षा की है।

(3) हनुमान के बँधने पर रावण के राजदरबार में रावण हनुमान से स्वयं नहीं पूँछता बल्कि उसकी आज्ञा पा प्रहस्त पूछता है।[3] इससे राजा की गरिमा की रक्षा होती है।

(4) हनुमान के लंका जला जाने के उपरान्त जब रावण सुनता है कि राम की सेना समुद्र के समीप आ गयी है तो वह जनसभा का आह्वान करता है, जिसमे कुम्भकर्ण की उपस्थित दिखाया गया है।[4] यहाँ रावण के कथन में आधुनिक सामान्य नेता के भाषण के दर्शन होते हैं।

इनके प्रसंगों के अतिरिक्त हनुमान जन्म एवं उनकी बाल्यावस्था के चित्रण का अधिकांश भाग मौलिक है।

अवस्थाएँ :—

कथावस्तु में प्रारम्भ अवस्था का श्री गणेश प्रथम सर्ग के प्रारम्भ से होता है, जब हनुमान कहते हैं कि मैं समुद्र के उस पार प्रभु श्री राम चन्द्र के निर्मुक्त प्रखर शर की तरह पहुँच जाऊँगा।[5] इस अवस्था का प्रसार सरमा तथा विभीषण के परस्पर वार्तालाप तक होता है जहाँ हनुमान को सीता की निवास स्थिति का पता चलता है —(हर्षित थे हनुमान जो मिला संधान उन्हें सीता का)[6] पवनपुत्र द्वारा अशोक वाटिका में सीता अन्वेषण के प्रसंग से प्रयत्न अवस्था प्रादुर्भूत होती है जिसके अन्तर्गत रावण सीता वार्तालाप त्रिजटा का स्वप्न दर्शन वर्णन, हनुमान द्वारा सीता के समक्ष राम जन्म से सुग्रीव के मिलाप वर्णन एवं पवनपुत्र परिचय समाहित हैं। इस अवस्था के अवसान के साथ प्राप्त्याशा का उदय इन पंक्तियों से होता है —

1- रामदूत, पृ0 32
2- वही, पृ0 54
3- वही, पृ0 75
4- रामदूत, पृ0 150
5- वही, पृ0 1
6- वही, पृ0 32

'ठहरो सुत कुछ क्षण और यहाँ विश्राम करो
इस उपवन के फल खाकर अपनी क्षुधा हरो।'[1]

यह अवस्था हनुमान के रावण दरबार में पहुँचने तक जान पड़ती है। सप्तमसर्ग की प्रथम पंक्ति -'कपिवर ने देखा दशमुख के ज्वलित प्रतापानल को'[2] से लंका दहन के अनन्तर सीता के पवित्र अभिज्ञान को ग्रहणकर हनुमान के लौटने तक के प्रसंग में नियताप्ति परिलक्षित होती है और नवम सर्ग की -

पद रज धारण कर सीता की कपिवर सिंधु तीर फिर आये
और अरिष्ट शृंग पर आस्फालन हित अपने पैर जमाये।[3]

पंक्तियों से महाकाव्य के अन्त तक फलागम का प्रसार दिखायी देता है।

सन्धियाँ :--

समुद्रलंघन के लिए तत्पर हनुमान के कथन से मुख सन्धि, अशोक वन में हनुमान द्वारा सीता अन्वेषण से प्रतिमुख, सीता द्वारा अभिप्रेरित हनुमान के फल खाने वृक्ष तोड़नेएवं रक्षकों के हनन से गर्भ सन्धि दिखायी देती है। तदनन्तर रावण द्वारा हनुमान के दण्ड विधान से विमर्श सन्धि का प्रारम्भ होता है और लंकादहन के उपरान्त सीता से हनुमान के मिलने से निर्वहण सन्धि दृष्टिगोचर होने लगती है।

अर्थप्रकृतियाँ :--

बीज वपन का कार्य सीता के अन्वेषण में हनुमान के समुद्रलंघन सम्बन्धी वार्तालाप से हो जाता है। प्रयत्न प्रसार की दृष्टि से विन्दु की स्थिति का पता सरमा-विभीषण वार्तालाप से मिले जानकी के पते से चलता है। पताका का उद्भव जानकी हनुमान मिलाप के अनन्तर होता है जिसका प्रसार लंका दहन तक होता है। प्रकरियों में सुरसा, भयावह दानवी, त्रिजटा, सरमा - विभीषण वार्तालाप आदि से सम्बन्धित प्रसंग प्रमुख हैं। लंका दहन के उपरान्त सीता हनुमान के मिलने के प्रसंग से कार्य की समुद्भूति का पता चलता है।

1- रामदूत, पृ0 54

2- वही, पृ0 74

3- वही, पृ0 98

'सीता-समाधि'

प्रस्तुत महाकाव्य में वही परम्परागत 'रामकथा' को ग्रहण किया गया है। कथारम्भ हलकर्षण द्वारा जानकी जन्म से होता है।[1] वे बचपन में धनुष बाण चलाना, शिकार करना एवं गृह कार्य सीखती हैं। इधर दशरथ के यहाँ चार पुत्र अयोध्या में जन्म लेते हैं। कुछ समय पश्चात् राम और लक्ष्मण विश्वामित्र के साथ जाकर ताड़का आदि का वध करते हैं।[2] तदनन्तर अहल्या उद्धार धनुष यज्ञ रामसीता विवाह, एवं चारों दशरथ पुत्र स्वपत्नियों सहित अयोध्या में आमोद-प्रमोद के साथ प्रवेश करते हैं।

कुछ समय पश्चात् न्यास के रूप में स्थित कैकेयी द्वारा दशरथ से दो वरदानों की प्राप्ति, राम लक्ष्मण सीता वनगमन, केवट प्रसंग चित्रकूट में भरत मिलाप अत्रि, अगस्त्य आदि मुनियों से भेंट, पंचवटी आश्रम निवास, शूर्पणखा प्रसंग, मायामृग का पंचवटी में आना, सीता हरण, जटायु से राम की भेंट, सुग्रीव राम मित्रता, सीता की खोज, लंका दहन रावण का सम्पूर्ण परिवार सहित वध, सीता का पुनरागमन, अग्नि-परीक्षा, राम का अयोध्या प्रत्यागमन, राम को राजगद्दी, रजक द्वारा सीता चरित्र पर आक्षेप, सीता निर्वासन, लवकुश की शत्रुघ्न आदि से वार्तालाप, उनका सेना सहित अयोध्या आना, रामायण का गायन, वाल्मीकि द्वारा उनका परिचय, प्रजा के साथ राम का सीता के पास आना, सीता का निर्वाण आदि प्रसंग स्तम्भ कथानक के आधार हैं।

स्रोत :—

प्रस्तुत महाकाव्य की कथावस्तु वाल्मीकि रामायण एवं रामचरित मानस से ली गयी है।

मौलिकता :—

सीता समाधि महाकाव्य में वाल्मीकि रामायण एवं राम चरित मानस में वर्णित प्रसंगों को कुछ परिवर्तित करके प्रस्तुत किया गया है जिन्हें कवि की मौलिक उद्-भावनाएँ कह सकते हैं।

(1) 'रामचरित मानस' के कथानक के अनुसार जनक के राज्य में अकाल पड़ा और वह 12 वर्ष तक रहा जिससे जनता त्राहि-त्राहि कर उठी। तब जनक ने विद्वानों की सम्मति

1- सीतासमाधि, पृ0 6

2- वही, पृ0 18

से हल कर्षण किया जिससे भूमि से सीता का जन्म हुआ। इसके विपरीत सीता समाधि में जनक के राज्य में प्रजा अत्यन्त सुखी समृद्ध दिखायी गयी है। राजा जनक ने यज्ञ किया, जिसमें वे एक दिवस भक्ति एवं बड़ी लगन से धरती को जोत रहे थे कि अचानक हल में अवरोध आ जाने से बैल आगे नहीं जा सके। जब उन्होंने ध्यान से निरीक्षण किया तो हल की रेखा पर हाथ पाँव हिलाकर एक शिशु खेल रहा था।[1]

(2) रामचरित मानस आदि में ताड़का का वध यज्ञ प्रारम्भ करने से पहले होता है एवं सुबाहु आदि का वध ताड़का के मरणोपरान्त यज्ञ के समय होता है।[2] जबकि 'सीता - समाधि' में ताड़का सुबाहु आदि की शक्ति पर निर्भर बताई गयी है एवं उसका वध सुबाहु आदि के वध के अनन्तर बताया गया है।[3]

(3) सीता समाधि के आधार पर पंचवटी में केवल राम सीता एवं लक्ष्मण का ही निवास नहीं था, वहाँ युवक भी थे युवतियाँ भी थीं जो शूर्पणखा के नित्यप्रति के श्रृंगार को देख कर आकर्षित होते थे। वह उस तपोभूमि को विलासवन बनाना चाहती थी।[4] जब लक्ष्मण ने शूर्पणखा के नाक कान काट दिये तब अविवेकी व्यक्ति सहम उठे थे और जन-बल एकत्र करने लगे थे।[5]

(4) हनुमान निर्भयता पूर्वक वृक्ष तोड़ते हुए जा रहे थे। रक्षक गणों ने उन्हें शत्रु समझ कर रोकना चाहा किन्तु वे सभी व्यवस्थाएँ कुचल रहे थे। इतने में रावण सुत ने छिपकर शर संधान द्वारा हनुमान को बाँध लिया। हनुमान जब राजदरबार में पहुँचे तो वहाँ के वैभव से चकित रह गये। वहाँ पर देश-विदेश के राजा गण अपनी अपनी विचित्र वेष भूषा में सिंहासनों पर विराजमान थे।[6]

(5) सीता समाधि में हनुमान की पूँछ में आग नहीं लगायी जाती बल्कि वे कमर में बंधे पट्टे को खोलकर चारों तरफ घुमाते हैं जिससे ही अग्नि उत्पन्न होती है और चारों ओर आग ही आग फैल जाती है। यहाँ पर उन्हें बन्दी गृह की सजा मिलती है जिससे सैनिक उन्हें पकड़ने दौड़ते हैं किन्तु सावधान हनुमान अपने पट्टे को कमर से खोल देते हैं।[7]

1- सीतासमाधि, पृ0 6
2- रामचरित मानस, गोरखपुर, टीका, पृ0 1[illegible]।
3- सीतासमाधि, पृ0 18-19
4- वही, पृ0 131
5- सीतासमाधि, पृ0 133
6- वही, पृ0 200-201
7- वही, पृ0 203

(6)सीतानिर्वासन के समय राम अत्यन्त दुखी होते हैं और सिंहासन त्यागना चाहते हैं वे अपनी प्रजा के लिए अपने मनमें सोचते हैंकि उनकी प्रजा उन्हें (राम को) चाहे जितना कष्ट दे पर सीता को न सताये।[1]

अवस्थाएँ :—

प्रस्तुत महाकाव्य की मूलकथा काश्रीगणेश 'उदयश्री' की "एक दिवस अति ध्यान लगन से जोत विदेह रहे थे धरती।'[2] पंक्ति से होता है। यहीं से प्रारम्भ अवस्था है, जिसका प्रसार'विवाहश्री' के अन्तिम छन्द तक दिखायी देता है। तदनन्तर वनगमन से लेकर सीता हरण[3] तक प्रयत्न की स्थिति का पता चलता है। 'मृग श्री' के अन्तर्गत जटायु राम मिलाप से रावण वध तक[4] प्राप्त्याशा का भान होता है। सीता की अग्निपरीक्षा[5] से सीता परित्याग तक[6] के प्रसंग में नियताप्ति के दर्शन होते हैं। तदनन्तर सीता को वाल्मीकि द्वारा गंगा में कूदने के प्रयास से बचाने के प्रसंग से महाकाव्य के अन्त तक फलागम का प्रसार है।

सन्धियाँ :—

जानकी के जन्म से लेकर राम के साथ वनगमन तक मुखसन्धि,वनगमन से सीताहरण तक प्रतिमुख , जटायु मिलाप से रावण वध तक गर्भ तथा अग्निपरीक्षा से सीता परित्याग तक विमर्श सन्धि विद्यमान है। वाल्मीकि के सीता को आत्महत्या के प्रयास से बचाने के प्रसंग से निर्वहण सन्धि का पता चलता है।

अर्थप्रकृतियाँ :—

महाकाव्य में जनक द्वारा हलाकर्षण से ही बीजवपन का कार्य हो जाता है। सीता हरण के साथ विन्दु का पता चलता है। पताका का उद्भव हनुमान के सीता अन्वेषण प्रसंग से होता है। अहल्या, ताड़का, मारीच, सुबाहु, केवट, हनुमान, लवकुश आदि से सम्बन्धित छोटे- छोटे प्रसंग प्रकरियों का कार्य करते हैं। सीता परित्याग से कथावस्तु की इति तक कार्य स्थिति का पता चलता है।

1- सीतासमाधि, पृ0 218-220
2- वही, पृ0 6
3- वही, पृ0 139
4- वही, पृ0 209
5- वही, पृ0 210
6- वही, पृ0 226

'अश्वत्थामा'

अश्वत्थामा' का कथारम्भ द्रोणाचार्य के भीषण युद्ध चर्चा से होता है। जिसे संजय अपनी दिव्य दृष्टि से देखकर धृतराष्ट्र को सुना रहे हैं। द्रोण ने अपने शर प्रहार से पाण्डव सेना के लोगों को मार डाला था एवं पाँचों पाण्डवों को पकड़ कर छोड़ दिया था, जिससे क्षुभित दुर्योधन ने उनसे कहा कि यह अनीति एवं कायरता है।[1] द्रोण दुर्योधन के कहे गये वचनों से क्रोधित हो जाते हैं एवं उसके द्वारा की गयी अनीति को कहते हुए उसे युद्ध के लिए ललकारते हैं जिससे दुर्योधन उनकी अनुनय विनय करके उन्हें समझाते हैं तब वे इतना भीषण युद्ध करते हैं कि पाण्डव सेना में भगदड़ मच जाती है।[2] सभी पाण्डव कृष्ण से द्रोण के मारने का उपाय पूछते हैं। कृष्ण ने कहा कि उनके मारने का उपाय यह है कि अश्वत्थामा के मरने की खबर उन्हें दी जाय जिससे पुत्र वियोग में वे मरणासन्न हो जायेंगे तब चाहे जो उनका शिर धड़ से अलग कर दे किन्तु समस्या यह खड़ी होती है कि द्रोण पुत्र अश्वत्थामा भी उनसे कम नहीं एवं चिरजीवी हैं जिससे उसे मारा नहीं जा सकता। अतः दूसरे दिन घोर युद्ध में जबकि द्रुपद आदि मार दिये जाते हैं। भीम ने अश्वत्थामा नामक हाथी को मार डाला। और शोर कर दिया कि अश्वत्थामा मारा गया। द्रोण द्वारा युधिष्ठिर से पूछा गया तो उन्होंने कहा कि अश्वत्थामा मारा गया चाहे वह हाथी हो अथवा गुरु पुत्र, किन्तु द्रोणाचार्य केवल अश्वत्थामा के मरने की ही बात सुन सके जिससे उन्होंने तुरन्त अपने प्राण त्याग दिये। पितृ वध से क्रुद्ध धृष्टद्युम्न ने उनका शिर मारने पर भी धड़ से अलग कर दिया।[3] धृष्टद्युम्न के इस कृत्य को सुनकर अश्वत्थामा का अत्यन्त क्रोधित हो जाना स्वाभाविक ही था और उसे संहार का अत्यन्त भीषण युद्ध करने की प्रतिज्ञानुसार अश्वत्थामा युद्ध करने लगा। कृष्ण ने सभी पाण्डवों को समझाया और आहत भीम को अपने रथ में डालकर अर्जुन आदि सभी को युद्ध भूमि छोड़ना पड़ा।[4]

1- अश्वत्थामा, पृ० 5

2- वही, पृ० 7

3- वही, पृ० 21

4- वही, पृ० 31

कृपाचार्य के समझाने पर भी द्रोण के बाद कौरव सेना का सेनापति अश्वत्थामा को न बनाकर कर्ण को बनाया जाता है किन्तु वह भी छल से मरवा दिया जाता है। बाद में दुर्योधन भी अनीति द्वारा मार दिया जाता है जिसको सोचकर अश्वत्थामा सोचने लगते हैं कि कृष्ण न्याय के लिए प्रयासरत हैं और उनका यही न्याय है कि पिता द्रोण भीष्म, कर्ण एवं दुर्योधन आदि सभी छल से मरवा दिये।[1] दुर्योधन द्वारा कृष्ण को शाप दिया जाता है और वे सहर्ष स्वीकार भी करते हैं। इसी बीच बलराम भी आ जाते है और कृष्ण को भलाबुरा कहते हुए भीम को मारने दौड़ते हैं किन्तु कृष्ण द्वारा भीम एवं अर्जुन भगा दिये जाते हैं।[2] इस बात को भी अश्वत्थामा देख चुका था जिससे वह और अधिक कुण्ठित था।

विदुर बताते हैं कि भीम अपनी विजय से इतना घमण्डी हो गया है कि उसे अपने से बड़ों का ध्यान नहीं है उसने धृतराष्ट्र को अपमानित कर दिया है।कृपाचार्य बताते हैं कि कौरव वधुओं के यहाँ जाकर भीम ने किसी के वस्त्र खींचे किसी को आलिंगन में लिया।[3] वहाँ से तभी भागा जब स्त्रियों ने कृष्ण से कहने के लिए कहा।वह वृद्धों से कह रहा था कि जब युवा चले गये तो इन्हें भी यमपुर जाना चाहिए।[4] उसने निर्धन कृषकों के खेत जला दिये। यह सब सुनकर अश्वत्थामा बदले के लिए तत्पर हो जाता है एवं शिवोपासना के लिए जाता है। शिवमन्दिर मेंपहुँचने पर उसे कुन्त नामक शैव से युद्ध करना पड़ता है युद्ध में कुन्त अन्तर्धान हो जाता है तभी वह शिव की आराधना करके उन्हें प्रसन्न करता है। वे उसे वरदान देते हैं कि तुम अपनी सफलता का भेद रात्रि में वन में पाओगे, किन्तु कभी भी कृष्ण से वैर न करना।[5]

दुर्योधन पत्नी भानुमती अश्वत्थामा से बताती है कि भीम उसका सतीत्व नष्ट करना चाहता है तब अश्वत्थामा उन्हें अपनी कुटिया में आश्रय दे पृथूदक के किनारे पहुँचा देता है।[6]

1- अश्वत्थामा, पृ0 44-45
2- वही, पृ0 47
3- वही, पृ0 53
4- वही, पृ0 55
5- वही, पृ0 63-64
6- वही, पृ0 71-75

अपनी विजय से उत्साहित सभी पाण्डव युधिष्ठिर से अपने अपने पराक्रम का बखान कर रहे हैं किन्तु युद्ध के परिणाम से युधिष्ठिर अत्यन्त दुखी हैं। कृष्ण उन्हें समझाते हैं एवं बताते हैं कि आप लोग सभी मात्र निमित्त है। वे तो सभी पहले से मरे हुए थे। कृष्ण भीम के कार्य की भर्त्सना करते हैं और कहते हैं कि इतने वीर बनते हो तो सभी लोग जाकर अश्वत्थामा को रोको जो भानुमती को पकड़कर लिए जा रहा है, यदि सभी न मरे जाओ तो मेरा नाम बदल देना।[1] भीम को अपनी त्रुटियों का आभास होता है और वह ग्लानि से भर उठता है एवं क्षमा याचना करने लगता है। अश्वत्थामा रात्रि में उल्लू द्वारा कौवे को मारते देख रात्रि में सोते समय पाण्डवों को मारना चाहता है। दूसरे दिन रात्रि में उसने पाण्डवों के सोते हुए पाँच पुत्रों की हत्या करके बहुत सी सेना का संहार किया एवं शिविरों को जला दिया। पाण्डव कृष्ण की दूरदर्शी बुद्धि के कारण बच बच गये।

तदनन्तर पाण्डवों एवं अश्वत्थामा में भयंकर युद्ध होता है एवं अर्जुन तथा अश्वत्थामा के दोनों ब्रह्मास्त्र आकाश में टकराकर नष्ट हो जाते हैं। इसी बीच जब अर्जुन एवं अश्वत्थामा दोनों ब्रह्मास्त्रों के परिणाम देखने में संलग्न थे तभी नकुल एवं भीम द्वारा अश्वत्थामा को पकड़ लिया जाता है। कृष्ण अश्वत्थामा से उनकी मणि युधिष्ठिर को दिलवा देते हैं।[2]

गहन कानन में अश्वत्थामा एक अहेरी के पीछे उत्सुकता वश जा रहे थे कि व्याध ने वृक्ष के नीचे लेटे कृष्ण पर बाण चला दिया। कृष्ण अचेत हो गये। अश्वत्थामा उस व्याध को तुरन्त पकड़ कर कृष्ण के समीप ले आये और दण्ड देने के लिए कहा, किन्तु कृष्ण ने भील को क्षमा करते हुए उसे घर भेज दिया एवं अश्वत्थामा को उपदेश देते हुए स्वर्ग-धाम चले गये।[3] अश्वत्थामा कुरुक्षेत्र में ब्रह्म सरोवर के तट पर संसार की मंगलकामना सहित निवास करने लगते हैं।

स्रोत :—

'अश्वत्थामा' महाकाव्य का कथानक 'महाभारत' से लिया गया है। शर्मा जी के शब्दों में —" भारतीय साहित्य के लिए प्रमुख उपजीव्य काव्य रहे हैं - रामायण, महा-

---

1- अश्वत्थामा, पृ0 84

2- वही, पृ0 112 3- वही, पृ0 120

भारत, गुणाढ्य की बृहत्कथा और जैन तथा बौद्ध साहित्य। × × × प्रस्तुत लेखक का ध्यान श्री रामायण के कथानक से सम्बद्ध तीन महाकाव्यों निषादराज, अग्निपरीक्षा और राम राज्य तथा तीन खण्डकाव्यों शबरी, त्रिजट-टेक रथा और यक्ष पंचाशिका की रचना के बाद महाभारत की ओर प्रवृत्त हुआ और अश्वत्थामा महाकाव्य उसी का परिणाम है।[1]

मौलिकता :—

अन्य महाकाव्यों की भाँति इसमें भी कुछ प्रसंग परिवर्तित करके अथवा कवि नेअपने आधार पर प्रस्तुत किये हैं जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं —

(1) भीम का धृतराष्ट्र के प्रति व्यंग्य वचन, कुरुवंश की नारियों के साथ अमर्यादित व्यवहार[2] एवं वृद्धों के लिए यह कहना कि जब युवा व्यक्ति स्वर्गलोक चले गये तो वृद्धों का यहाँ पर क्या कार्य है? कवि ने अपने आधार पर प्रस्तुत किया है।[2]

(2) विजयी पाण्डवों द्वारा इतना गर्वोद्धत होना कि वे महाभारत में वर्णित अर्जुन भीम नकुल सहदेव के स्थान पर आज कल के साधारण जन प्रतीत होने लगते हैं। वे कुरुवंश के नष्ट होने से इतने प्रसन्न हैं कि अपनेको देवताओं से भी अधिक पराक्रमी बता रहे हैं।[4]

(3) सम्पूर्ण पन्द्रहवां सर्ग उनका अपना मौलिक है।

अवस्थाएँ :—

प्रस्तुत महाकाव्य में प्रारम्भ अवस्था का श्रीगणेश धृतराष्ट्र के संजय से युद्ध समाचार श्रवण[5] से होता है। यहीं से कथावस्तु का भी आरम्भ हुआ है। इसका प्रसार द्वितीय सर्ग के अन्तिम छन्द तक मिलता है। तृतीय सर्ग के प्रारम्भ से प्रयत्न अवस्था दिखायी पड़ने लगती है, जब अश्वत्थामा पितृवध को सुनकर क्रोध से संध्याकालीन सूर्य की भाँति रक्तवर्ण हो जाते हैं।[6] यह अवस्था पाँचवे सर्ग के 68 वें छन्द तक प्राप्त होती है। छठे सर्ग में किन्तु विदुर भीम के दुराचार का वर्णन करते हैं[7] यहीं से प्राप्त्याशा के दर्शन होने लगते हैं और —

चले हर्ष भर हृदय में अश्वत्थामा वीर
मानो उनको मिल गया संशय नद का तीर।[8]

1- अश्वत्थामा, दो शब्द
2- अश्वत्थामा, पृ 53
3- वही, पृ0 55
4- वही, पृ0 78
5- वही, पृ0 1/14
6- वही, 3/1
7- वही, 6/17
8- वही, 11/14

इन पंक्तियों से इस अवस्था का अन्त हो जाता है। नियताप्ति अवस्था बारहवें सर्ग के 7वें छन्द से प्राप्त होने लगती है जब पाण्डुपुत्र सन्ध्यावन्दन के लिए जाते हैं जिसका प्रसार तेरहवें सर्ग के अन्तिम छन्द तक मिलता है। यदुवंशियों के विनाश वर्णन से महाकाव्य के अन्त तक फलागम का भाव होता है।

सन्धियाँ :—

संजय द्वारा द्रोण के भीषण युद्ध वर्णन से मुखसन्धि, अश्वत्थामा के पितृवध श्रवण से प्रतिमुख सन्धि एवं भीम द्वारा किए गये अनाचार से दुखित विदुर के कथन से गर्भ सन्धि का उदय होता है जो अश्वत्थामा द्वारा शिव से वरदान प्राप्ति तक निरन्तर दिखायी देती है। विमर्श की स्थिति उस समय दृष्टिगोचर होती है जब कृष्ण पाण्डुपुत्रों को सन्ध्यावन्दन के उपरान्त अपने शिविर में ले जाते हैं। यदुकुल के नाश वर्णन से निर्वहण सन्धि का उदय होता है जो महाकाव्यान्त तक चलती है।

अर्थप्रकृतियाँ :—

बीजवपन का कार्य संजय द्वारा द्रोणाचार्य के भीषणयुद्ध वर्णन से होता है। बिन्दु की स्थिति का पता अश्वत्थामा के कृपाचार्य से पितृवध सुनने से चलता है। विदुर के भीम से सम्बन्धित कथन से पताका का उद्भव होता है जिसका अन्त तेरहवें सर्ग में अन्तिम छन्द से होता है। प्रकरियों में भानुमती, भीम, कर्ण आदि से सम्बन्धित प्रसंग प्रमुख हैं। चौदहवें सर्ग के 8 वें छन्द से महाकाव्य के अन्त तक कार्य की स्थिति का पता चलता है।

सत्यमेवजयते :—

सर्वथा मौलिक महाकाव्य ~~की~~ 'सत्यमेव जयते' की कथा नाना, तात्या, लक्ष्मीबाई, तिलक, गोखले, गाँधी नेहरू, पटेल, आजाद, भगतसिंह, ह्यूम आदि महान नायक नायिकाओं से सम्बन्धित होते हुए भी वस्तुतः उनकी नहीं है वरन् यह हमारे देश की उभरती हुई जन-चेतना का छन्दोबद्ध इतिहास है। कविवर ने बड़े परिश्रम से इस काव्य में हमारे इतिहास के ज्वलंत तत्व संजोये हैं। सत्तावनी क्रान्ति का उभारना फिर अपनी ही कमजोरियों से टूट जाना इस देश के लिए एक प्रकार से वरदान ही सिद्ध हुआ क्योंकि पराजित भारत ने इसी कारण से अपना हृदय-मंथन करना प्रारम्भ किया—

यह नव जागृति ही भारत का सम्बल थी,
भर रही राष्ट्र में चतुर्मुखी हलचल थी।
सामाजिक आर्थिक -- राजनयिक गतिविधियाँ
थीं खींच रही हर ओर नवीन परिधियाँ।[1]

सन् 1857 की स्वतंत्रता क्रान्ति को इन शब्दों में स्मरण करते हुए कथा आरम्भ होती है--

उठा धुआँ साम्राज्यवाद की छाती लगी दहलने
सोते सिंह जगाए अगणित 'रोटी और कमल' ने।[2]

किन्तु ब्याजी राव सिंधिया तथा पटियाला -- चरखारी राजाओं जैसे जयचन्दों के कारण क्रान्ति मात्र आहुति बन कर रह गयी एवं पहले से भी अधिक भारतवासियों के ऊपर अँग्रेजों का दमनचक्र चलने लगा। विक्टोरिया के शासन काल में जब लार्ड लिटन शासक थे देश की अत्यन्त दयनीय दशा थी, किन्तु एक अँग्रेज 'ह्यूम' महोदय जो साक्षात् करुणा के अवतार थे, उनके प्रयास एवं दयानन्द सरस्वती विवेकानन्द, रामकृष्ण परम हंस जैसे विद्वानों ने तथा उनकी रचनाओं ने पुनः जनता का जागरण प्रारम्भ किया। 1880 में लिटन शासन के अन्त के साथ रिपन आये किन्तु इनका शासन भी ठीक नहीं था। जनता पिसी जा रही थी। वैसे ये बहुत सहृदय एवं जन-जागरण के प्रतीक एवं उदार साबित हुए। ह्यूम के प्रयत्नों से राष्ट्रीय काँग्रेस का गठन हुआ जिसके प्रथम सभापति वोमेश बनर्जी हुए। बम्बई में इसके अधिवेशन के साथ अँग्रेजों का और कड़ा रुख हो गया।[3]

वायसराय डफरिन लैन्सडाउन एवं एल्गिन भारत आये। एल्गिन बहुत ही क्रूर था इसने अनेकों अधिनियम गढ़े एवं बंग-भंग अधिनियम बनाया जिससे लोग विक्षुब्ध हो उठे। एवं जनता विद्रोह कर उठी, रवीन्द्र, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य शुक्ल, भारतेन्दु, इकबाल, प्रसाद, निराला, आदि कवियों की वाणियाँ गूँज उठीं। भारत स्वतंत्रता के लिए छटपटाने लगा। काँग्रेस में दो नेता उभरे -- प्रथम थे गोखले, जो शान्ति के प्रतीक थे दूसरे तिलक जो ईंट का जवाब पत्थर से देना चाहते थे जिससे ये बहुत दिनों तक इस पार्टी में न रह सके। इन्होंने दूसरी पार्टी का निर्माण किया किन्तु तिलक की तरफ अँग्रेजों का ध्यान अधिक गया और वे बन्दी बनाकर छै वर्षों के लिए देश से निष्कासित

1- सत्यमेव जयते, पृ0 9

2- वही, पृ0 31-32

3- वही, पृ0 44

कर दिये गये[1] इनका नारा था कि —

है जन्मसिद्ध अधिकार स्वराज्य हमारा।

जैसे भी हो लेकर निज राज्य रहेंगे

भारत में अब न विदेशी ताज सहेंगे।[2]

लार्ड कर्जन के इस शासन काल में दुर्भिक्ष, बंग-भंग एवं विश्वविद्यालय ऐक्ट तथा तिलक आदि के देश निष्कासन से लोग उग्र हो उठे। विनायक, गणेश, सावरकर जैसे क्रान्तिकारी उद्भूत हुए। अंग्रेज अपने घरों में भी स्वयं को असुरक्षित समझने लगे। 1910 में किंचित् अनीति के नाशक सम्राट जार्ज पंचम भारत आये।[3] इसी समय संसार को हिला देने वाली घटना हुई। फ्रांस एवं जर्मनी में युद्ध छिड़ गया जिसमें गाँधी आदि की सम्मति से भारत ने इस शर्त पर उसमें भाग लिया कि उसे युद्धोपरान्त स्वतंत्र कर दिया जायेगा, किन्तु वह केवल आश्वासन मात्र सिद्ध हुआ।

1915 में गोखले की मृत्यु के साथ एनीबिसेण्ट का कांग्रेस में नेता के रूप में आगमन हुआ और उन्होंने 'होमरूल' का नारा बुलन्द किया।[4] अंग्रेजों का रुख और कड़ा हो गया अधिकांश नेता बन्दी बना लिए गये। तत्पश्चात् माण्टेगुने का आगमन हुआ और उन्होंने कुछ बन्धनों में शिथिलता दी। गाँधी का सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ हुआ किन्तु डायर की क्रूरता ने सबको हिला दिया। उसने जलियाँ वाले बाग(पंजाब) में एक सभा में जहाँ लगभग 20,000 व्यक्ति थे गोली चलवा दी और सबको भून कर रख दिया, किन्तु गाँधी के शान्ति उपदेश से उग्र भारतवासी तनिक शान्त हुए। हन्टर जाँच कमीशन द्वारा सरकार को दोषी ठहराने एवं खलीफा के साथ विश्वासघात करने से बच्चा-बच्चा बिफर पड़ा। इसी बीच सुभाष चन्द्र बोस एवं जवाहर का उदय हुआ।सन् 1920 में गाँधी द्वारा सन्मार्ग का भारत को उपदेश देकर अहिंसा पथ मे चलने को प्रेरित किया। 1931 में तिलक अपनी मृत्यु[5] के पहले गाँधी के हाथों 'होमरूल' की बागडोर थमा दी जिससे उद्बुद्ध हो गाँधी, जवाहर, सरदार वल्लभ भाई पटेल, शौकत, मौलाना आजाद के साथ देश को जाग्रत करने के लिए निकल पड़े। विदेशी सभी वस्तुओं का बहिष्कार, स्कूल न्यायालय आदि का बहिष्कार शुरू हुआ। चेम्सफोर्ड के पदमुक्त होने के साथ

1- सत्यमेवजयते, पृ0 54 2- सत्यमेवजयते, पृ0 52

3- वही, पृ0 56 4- वही, पृ0 61

5- वही, पृ0 91

र ीडिंग आये।[1] कुछ दिनोंपरान्त जिन्ना आदि नरम दल का अलगाव हो गया। खादी का प्रचार हुआ एवं गाँधी जी ने वस्त्र त्यागकर दिया।[2] इसी बीच मालावार में मोपल जाति द्वारा दंगा एवं चौरा-चौरी में पुलिसों के जलाये जाने से गाँधी ने आन्दोलन से मुँह मोड़ लिया। नवागन्तुक युवराज के आगमन पर उसका स्वागत न किये जाने से रीडिंग क्षुब्ध था अतः गाँधी को जेल भेजकर[2] छः वर्ष की सजा दे दी गयी।

रीडिंग ने यह सोचकर कि गाँधी प्रिय जनता विद्रोह न कर दे उसने महात्मा गाँधी को अवधि से पहले ही मुक्त कर दिया। कौंसिल के असहयोग के साथ गाँधी एवं उनके अनुगमन कर्ताओं द्वारा झोपड़ियों में रहने वाली जनता को जाग्रत करने का अभियान चलाया। मुसलमानों की धार्मिक भावना के उग्र रूप ने आर्यसमाज एवं उनमें दंगा उत्पन्न करना प्रारंभ कर दिया जिससे महात्मा गाँधी को 21 दिन का प्रायश्चित उपवास करना पड़ा और जिससे प्रेरित हो सभी वर्ग एक हो गये। 1925 में चन्द्रशेखर आजाद, बिस्मिल आदि के द्वारा ट्रेन डकैती के कारण सभी क्रान्तिकारी बन्दी हो गये। 1925 में लार्ड इर्विन का आगमन हुआ जिनसे प्रेरित साइमन कमीशन भारत आया और उसका डटकर विरोध हुआ बरडोली से वल्लभ भाई की अध्यक्षता में सत्याग्रह शुरू हुआ जिससे क्षुब्ध अंग्रेज भारतवासियों को प्रत्येक प्रकार से प्रताड़ित करने लगे। साइमन कमीशन जहाँ जाता लोग यों पुकार उठते —

'वापस जा साइमन अरे वापस जा रे,
भारत जनता के खातिर यह भारत है
यहाँ विदेशी शासन की न जरूरत है।

और गो बैक'साइमन' के नारे गूँजने लगते। लाहौर में सैंडर्स की लाठी चार्ज से घायल 'लाला लाजपत राय की मृत्यु हो गयी जिससे ही सैंडर्स का वध कर दिया गया। अंग्रेजों ने उपनिवेशवाद थोपना चाहा एवं साथ ही पब्लिक सेफ्टी-बिल के पास होते ही क्रान्तिकारियों द्वारा अनेकों स्थानों में उग्र कार्य किये गये, भगतसिंह एवं बटुकेश्वर द्वारा सदन में बम विस्फोट हुआ एवं दोनों अपने को बन्दी करा दिया। तथा 12 मार्च,

---

1 - सत्यमेवजयते, पृ0 92

2- वही, पृ0 94

3 - वही, पृ0 101

1930 में स्वतंत्रता दिवस मनाने का निश्चय किया गया एवं नमक आन्दोलन 12मार्च से सत्याग्रह शुरू हुआ जिससे गाँधी सहित अनेक नेता बन्दी हो गये तत्पश्चात् बैंक, बीमा आदि का बहिष्कार किया गया । गाँधी की कैद के बाद सरोजनी नायडू के नेतृत्व में नमक भंडार में कब्जे के प्रयत्न से सभी पुलिस द्वारा आहत हुए। इसी बीच भगतसिंह राजगुरू एवं सुखदेव आदि को फाँसी दे दीगयी एवं एक भारतीय की ही नीचता ने चन्द्रशेखर आजाद को मृत्यु के अंक में पहुँचा दिया । भगत सिंह की फाँसी से जनाक्रोश बढ़ा और दंगे के बीच ही गणेश शंकर विद्यार्थी की मृत्यु हो गयी।

1931 में लार्ड इर्विन के विदाई के साथ लार्ड विलिंगडन के समय जो नौकरशाही बेड़ी दब गयी थी पुनः उभर कर अपना दमन चक्र प्रारम्भ कर दियाजिससे गाँधी ने गोलमेज (लंदन) जाने से इन्कार कर दिया। किन्तु लार्ड विलिंगडन की वार्ता एवं उसके प्रयत्नों से गाँधी वहाँ गये। वहाँ से असन्तुष्ट गाँधी पुनः भारत आकर द्वितीय सविनय अवज्ञा प्रारम्भ कर दी एवं मुसलमानों के विघटन को देखकर गाँधी जी का आमरण अनशन प्रारम्भ हुआ जिससे प्रभावित होकर मुसलमानों को अपनी नीति बदलनी पड़ी। और गाँधी पुनः स्वदेश प्रचार में जुट गये। 1937 में इंगलैण्ड से नया संविधान आया एवं इसी बीच जिन्ना का मुस्लिम लीग स्थापन एवं नेता सुभाष चन्द्र के 'फार्वर्ड ब्लाक' कमेटी के निर्माण से देश काफी प्रभावित हुआ एवं इसी समय कमला नेहरू का निधन हो गया। 1939 में विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ जिसमें भारतवासी भाग नहीं लेना चाहते थे किन्तु दो अंग्रेज शासकों ने देश के कुछ व्यक्तियों के सहयोग से उसे युद्ध में धकेल दिया किन्तु गाँधी जी का कहना था कि --

युद्धकाल का हर आश्वासन हर वादा झूठा होता है
जिन इंसानी अधिकारों की आप दे रहे आज दुहाई
जिस मानव आजादी के प्रति रोप चुके हैं कठिन लड़ाई
वे अधिकार वही आजादी क्या भारत को भी दे देंगे।[1]

और उनका कहना काफी सीमा तक सत्य ही था। अतः अंग्रेजों को मजबूर होना पड़ा और गाँधी से वार्ता के लिए तैयार होना पड़ा, किन्तु जिन्ना की दुर्बुद्धि सदा नीचा

1- सत्यमेव जयते, पृ0 240

दिखाती रही। उसकी पाकिस्तान की माँग ने भारत की स्वतंत्रता की माँग को पीछे छोड़ दिया परन्तु इसी बीच क्रिप्स-मिशन आया जिससे भारतवासी अलग रहे। 1940 में प्रधान मंत्री चर्चिल एवं भारतमंत्री एमरी की दृढ़ता ने सबको मात कर दिया परन्तु भारत की दृढ़ता को देखकर ही उन्हें क्रिप्स मिशन बुलाना पड़ा था। इसी बीच जापान के पूर्व से आक्रमण के कारण भारतीय शासक तिलमिला उठे साथ ही भारतीय जनता भी भयभीत हो उठी। अतः वह भी युद्ध के लिए इच्छुक तो हुई परन्तु मौका अच्छा समझ कर सत्याग्रह के लिए निश्चय किया गया जिससे सभी नेता सूर्योदय से पहले बन्दी बना लिए गये फिर भी सत्याग्रह सब कुछ सहते हुए हुआ एवं अधिकांश क्षेत्र में क्रान्ति फैलगयी। गाँधी ने आमरण अनशन प्रारम्भ किया जिससे सब शान्त हो गये किन्तु जिन्ना की पृथकता वादी नीति ने उन्हें व्यथित करती रही। इसी बीच नेता सुभाष सिंगापुर से अंग्रेजों को ललकारा अतः भारतवासी प्रसन्न हो उठे किन्तु पुनः अंग्रेजों की विजय हुई। कस्तूरबा की मृत्यु के बाद सन् 1944 में गाँधी जेल से मुक्त हो गये। अंग्रेजों ने एक परिषद की बात उठाई जिसमें कुछ भारतीय रखे जाने थे, किन्तु जिन्ना के कारण सफल नहीं हुई। इसी बीच लन्दन में लेबरल पार्टी सत्ता में आई जो अत्यन्त उदार थी उसने तीन व्यक्तियों की समिति शासन के हस्तांतरण के लिए भारत भेजा, परन्तु जिन्ना के कारण वह न कार्यान्वित हो सकी और इसी की दुर्नीति के परिणाम से ही नोआखाली, पंजाब एवं बिहार में हृदय विदारक दंगे हुए। जिससे गाँधी को पुनः आमरण अनशन करना पड़ा। गाँधी एवं जिन्ना को लार्ड माउण्टबेटन ने अपने निवास में बुलाया और दोनों को समझाकर 14 अगस्त को मुक्ति देने की घोषणा कर दी।

14अगस्त 1947 को माउण्टबेटन ने 12 बजे स्वतंत्र भारत की घोषणा की जिससे अभिभूत हो भारतवासी उनकी जाय-जयकार करने लगे। हिन्दू मुस्लिम दंगा निर्बाध गति से चलता रहा और उसी के परिणाम स्वरूप महात्मा गाँधी को अपने प्राण भी उत्सर्ग करने पड़े। 30 जनवरी 1947 को नाथूराम गोडसे द्वाराउनकी हत्या कर दी गयी। व्याकुल भारत ने राजघाट में उनका दाह संस्कार किया। अति संक्षिप में यही 'सत्यमेव जयते' महाकाव्य का कथानक है।

स्रोत :—सम्पूर्ण महाकाव्य ऐतिहासिक आधार पर प्रणीत किया गया है। कवि ने कल्पना का प्रयोग बहुत कम किया है। बनारसीदास चतुर्वेदी के शब्दों में —" यह सम्पूर्ण महाकाव्य ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर लिखा गया है। फलतः इसमें कवि कल्पना की उड़ान की भी गुंजाइश हो ही नहीं सकती थी।"

1-सत्यमेवजयते, पृ06

मौलिकता :-

'सत्यमेव जयते' आलोच्य महाकाव्यों में ऐसी कृति है जिसे पूर्णरूपेण मौलिक ग्रन्थ कहा जा सकता है। इस प्रकार का छन्दबद्ध कथानक हिन्दी वाङ्मय में दुर्लभ है। नरेशचन्द्र चतुर्वेदी के शब्दों में —"सत्यमेव जयते' श्री रविशंकर मिश्र की ऐसी रचना है जो अपनी विषयवस्तु के कारण हिन्दी काव्यजगत की सर्वथा नई, मौलिक और श्लाघनीय कृति कही जा सकती है।" [1]

सन्धियाँ :-

प्रारम्भ — जब से मलिका ने लिया हाथ में शासन
मिल गया देश को उन्नति का आश्वासन। [2]

पंक्तियों से होता है। यहीं प्रारम्भ अवस्था की उत्पत्ति होती है जो निरन्तर द्वितीय सर्ग के गोपाल कृष्ण गोखले की मृत्यु तक दिखाई देती है। एनीबिसेण्ट के आगमन से चतुर्थ सर्ग के अन्त तक प्रयत्न का पता चलता है। पंचम सर्ग की —

गूँज थे 'गो बैक साइमन' के नारे
वापस जा साइमन अरे वापस जा रे।' [5]

से प्राप्त्याशा का भान होने लगता है। अभियान सर्ग की —

लक्ष्य है अपना पूर्ण स्वराज्य' [6] पंक्ति से नवे सर्ग में लंदन के इस वक्तव्य

चौदह अगस्त की मध्यरात्रि —
को भारत होगा मुक्त राष्ट्र। [7]

तक नियताप्ति के दर्शन होते हैं। तदनन्तर संवैधानिक घोषणा एवं लार्ड माउन्टवेटन के द्वारा सत्ता के हस्तांतरण से महाकाव्य के अन्ततक फलागम का प्रसार हुआ है।

1- सत्यमेव जयते, पृ0 17
2- वही, पृ0 36
3- वही, पृ0 60
4- वही, पृ0 61
5- वही, पृ0 136
6- वही, पृ0 163
7- वही, पृ0 360

सन्धियाँ :--

विक्टोरिया के सत्ता सम्भालने से गोखले की मृत्यु तक मुख सन्धि, एनीबिसेण्ट के आगमन से चतुर्थ सर्ग के अन्त तक प्रतिमुख एवं साइमन कमीशन के विरोध से गर्भ सन्धि दिखायी पड़ती है। अभियान सर्ग के प्रारम्भ से विमर्श सन्धि का उदय होता है जिसकी अभिवृद्धि नवें सर्ग में लंदन की घोषणा तक दिखायी पड़ती है तदनन्तर स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के प्रसंग से महाकाव्य के अंत तक निर्वहण सन्धि का प्रसार हुआ है।

अर्थप्रकृतियाँ :--

अर्थप्रकृतियों में बीजवपन का कार्य ह्यूम महोदय के परिचय से होता है एनीबिसेण्ट के आगमन के बाद 1915 में बम्बई नगर के कांग्रेस अधिवेशन के साथ बिन्दु की स्थिति का पता चलता है। साइमन कमीशन के विरोध से 'पताका' का भान होने लगता है। सुभाष प्रकरियों में चन्द्र शेखर आजाद तिलक, लाला लाजपतराय सुभाष चन्द्र बोस, जिन्ना आदि से सम्बन्धित प्रसंग प्रमुख हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के अनन्तर महाकाव्य के अन्त तक कार्य की स्थिति का पता चलता है।

'कृष्णाम्बरी'

कथारम्भ कंस द्वारा मुदित मन अपनी बहन देवकी को वसुदेव सहित भेजने जाने के के समय आकाशवाणी कि 'जिस भगिनी को तू इतने प्यार से भेजने जा रहा है उसी की आठवीं संतान से तेरा वध होगा' से होता है। कंस यह सोचता है कि मुझ जैसे पराक्रमी जिसने जरासंध जैसे वीर को हराकर उसकी दो पुत्रियों से विवाह किया अपने पिता को बन्दी बना स्वयं राजा बना एवं मेरे इशारे ही से तो यह संपूर्ण प्रकृति गतिमान है, उसे कौन संशय में डाल रहा है। मैं किसी की भी बात नहीं मान सकता, किन्तु कई बार आकाशवाणी होने से वह भयभीत हो देवकी को मारने को उद्यत हो जाता है। वसुदेव की विनय पर देवकी वसुदेव सहित कठोर कारागार में डाल दी जाती है।

1- सत्यमेवजयते, पृ0 363

2- कृष्णाम्बरी, पृ0 5

3- वही, पृ0 12

देवकी के सात पुत्र उसी के सामने मार दिये जाते हैं। कंस की अनीति के कारण सभी त्राहि-त्राहि करने लगते हैं। रोहिणी जो वसुदेव की प्रथम पत्नी थी गर्भावस्था में ही गोकुल में नंद के यहाँ शरण लेती है।[1] देवकी के गर्भ से आठवें पुत्र कृष्ण का जन्म होता है जिसे वसुदेव वर्षायुक्त अँधेरी रात में गोकुल नंद के यहाँ लिटाकर योगमाया कन्या को ले आते हैं। योगमाया के रोने से सभी सोये हुए प्रहरी जग जाते हैं फाटक बंद हो जाते हैं एवं वातावरण सामान्य हो जाता है। कंस कन्या को निर्ममता से पछाड़ना चाहता है किन्तु वह हाथ से छूट जाती है। एवं कंस को पुनः आकाशवाणी द्वारा कृष्ण के जन्म की सूचना मिलती है।[2]

कृष्ण बाल्यावस्था में कंस द्वारा भेजे गये पूतना, तृनावर्त, शकटासुर, वत्सासुर, बकासुर, अघासुर आदि का वध करके कालीदह में नाग को नाथ लिया। राधा सहित अनेक गोपिकाओं को मोह लिया, ग्वाल कृष्ण के अनुरक्त बन गये। गोकुल में प्रतिक्षण वसन्त जैसी छटा विद्यमान रहने लगी एवं कृष्ण के साथ रास में गोपिकाएँ परमानन्द का अनुभव करने लगीं। उसी समय अक्रूर कृष्ण को लेने आ गये। इससे सभी व्याकुल हो उठे, कृष्ण के विदा होते ही गोकुल में करुणा का प्रवाह उमड़ पड़ा, सभी अचेत एवं व्याकुल दिखायी देने लगे।[4]

मथुरा पहुँचते ही कुवलयापीड हाथी का वध एवं तदनन्तर कंस के अनेक योद्धाओं के साथ मल्लयुद्ध। अनन्तर कंस का कृष्ण द्वारा संहार कर दिया जाता है। देवकी- वसुदेव की कारागार से मुक्ति के साथ उग्रसेन को मथुरा का राज्य दे दिया गया।[5]

वसुदेव ने दोनों पुत्रों का यज्ञोपवीत कराकर सान्दीपनि गुरु के पास भेज दिया जहाँ वे अनुशासन एवं गुरु भक्तियुत रहकर चौसठ दिनों में ही सम्पूर्ण विद्याएँ ग्रहण कर लेते हैं।[6]

1- कृष्णाम्बरी, पृ0 25

2- वही, पृ0 37

3- वही, पृ0 99

4- वही, पृ0 107

5- वही, 115

कृष्ण उद्धव को गोकुल भेजते हैं और भेंट के लिए नील कमल के साथ नंद एवं यशोदा के लिए प्रणाम कहते हैं। गोपियाँ उद्धव से उलहना देती हैं किन्तु राधा, राधा तो मौन हैं वह कृष्ण के कर्मपथ को जानती है उसके हृदय में कृष्ण का सानिध्य छिपा है तो वह उलहना दे कैसे? वह तो इतने से ही आनन्दित है कि जो सबको नचाता है व उसे उसने स्वयं नचाया है।[1]

तदनन्तर कृष्ण ने अक्रूर को हस्तिनापुर भेजा जहाँ वे महीनों रहे, [illegible] देवी एवं भीष्म, द्रोण, कर्ण, युधिष्ठिर अर्जुन कर्ण आदि से भी मिले और लौटते समय धर्मपालन का कृष्ण संदेश भी धृतराष्ट्र से कहा।[2] धृतराष्ट्र का संदेश लेकर अक्रूर लौट आये। इसी बीच जरासन्ध ने कंस के वध से क्रुद्ध मथुरा पर आक्रमण कर दिया। उसने सत्रहबार मथुरा में चढ़ाई की एवं हारता रहा किन्तु कृष्ण को मथुरा छोड़कर सम्पूर्ण मथुरावासियों सहित द्वारिका में निवास करना पड़ा।[3] रुक्मिणीहरण के पश्चात् उसका कृष्ण से विधिवत विवाह सम्पन्न हुआ। कृष्ण सखा सुदामा के स्वागत के पश्चात् धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को जिस दिन से राज्य दिया था उसी दिन से उसके मन में राजसूय यज्ञ की कामना हो रही थी किन्तु जरासंध की शक्ति के कारण सभी निष्क्रिय थे। फिर भी कृष्ण की चातुरी से भीम ने जरासंध को बीच से चीर दिया। राजसूय यज्ञ प्रारम्भ में कृष्ण पूजा से खिन्न शिशुपाल के वध के बाद शाल्व का संहार हुआ।[4]

पाण्डवों की बढ़ती जनप्रियता से खिन्न दुर्योधन ने शकुनि की सहायता से सब कुछ जीतकर द्रौपदी को अपमानित किया एवं पाण्डवों को वनवास में असीम दुख भोगने पड़े। अन्तिम वर्ष में अभिमन्यु एवं उत्तरा के विवाह के साथ धृतराष्ट्र पुत्रों से न्यायोचित संधि के लिए संदेश दिया किन्तु अन्त में समर ही निश्चित हुआ जिसमें अकेले पाण्डवों की तरफ एवं उनकी समस्त सेना कौरवों की तरफ रही। कृष्ण ने बार बार समझाने का प्रयत्न किया पर सब व्यर्थ रहा अन्त में उन्होंने युधिष्ठिर से युद्ध के पहले दुर्गा पूजा की सलाह दी।[5]

अर्जुन कृष्ण के साथ दोनों सेनाओं के मध्य उपस्थित हुए जहाँ उन्हें मोह उत्पन्न हो गया। अतः कृष्ण द्वारा गीता उपदेश से वह रण उद्यत हुआ। चारों

1- कृष्णाम्बरी, पृ0 136 2- कृष्णाम्बरी, पृ0 147

3- वही, पृ0 151 4- वही, पृ0 164

5- वही, पृ0 181

तरफ कुरुक्षेत्र में मारकाट मच गयी। भीष्म, दुःशासन, अभिमन्यु, द्रोण, कर्ण, शल्य द्रुपद, धृष्टद्युम्न, लक्ष्मण, जयद्रथ, दुर्योधन आदि के वध के साथ असंख्य सेना का संहार हुआ।

युद्ध के समाप्त होतेही सर्वत्र कृष्ण की चर्चा फैल गयी। गान्धारी कुरुक्षेत्र में अपने पुत्रों को देखने गयी एवं वहाँ उसने महासंहार को देख अपने पुत्रों की लाशों एवं पुत्रवधुओं की करूण चीत्कार से क्रोधित हो कृष्ण को शाप दे दिया कि जिस तरह मैं अपने मृत कुटुम्ब को देखकर व्याकुल हूँ वैसे ही एक दिन तुम्हारा सम्पूर्ण परिवार कलह युद्ध में समाप्त हो जायेगा एवं आज की तरह तुम्हारे परिवार की कुलवधुयें भी करूणक्रन्दन करेंगी और तुम भी व्याध के हाथ से मारे जाओगे।[1] कृष्ण के उपदेश एवं उनके विचार से गांधारी का मोह दूर हो गया एवं वह उनकी विनय करने लगी। इस प्रकार गांधारी के मंगलमय एवं प्रेमयुक्त वचनों के साथ कथा की इति हो जाती है।

<u>स्रोत</u> :-

प्रस्तुत महाकाव्य की कथा महाभारत से ग्रहण की गयी है। प्रो0 श्रीरंजन सूरिदेव के शब्दों में —"दूसरे शब्दों में यह काव्य महाभारतीय कृष्णकथा का पुनराख्यान है जिसकी मूल विषयवस्तु के विस्तार को समसामयिक संदर्भों में जोड़कर उसे प्रासंगिकता प्रदान करने की भी कवि चेष्टा परिलक्षित होती है।"[3]

<u>मौलिकता</u> :--

कृष्णाम्बरी में भी कुछ प्रसंगों में कवि की स्वयं की उद्भावनाएँ परिलक्षित होती हैं। यथा-

(1) उद्धव जब गोकुल पहुँचते हैं तो गोपियाँ उलाहना देती है किन्तु राधा कुछ भी नहीं कहतीं। वह कृष्ण के भविष्य से परिचित हैं। वह उनके कर्मयोग को जानती है। राधा अपूर्ण नहीं है, मिलन तो एक क्षण का 100 वर्षों से अधिक होता है। उसे सन्तोष है अपनी सफलता पर कि जो संसार को नचाता है उसे राधा ने स्वयं नचाया है।[4]

(2) कृष्ण कुब्जा के यहाँ जाकर उद्धव के सामने ही प्रत्यक्ष प्रणय करते हैं एवं तदनन्तर उसे योग की दीक्षा देते हैं।[5]

1- कृष्णाम्बरी, पृ0 234   2- कृष्णाम्बरी, पृ0 234

3- वही, कृति और कृतिकार, पृ0 'ब'

4- कृष्णाम्बरी, पृ0 125-136

5- वही, पृ0 111

(3) बारहवें सर्ग में गन्धारी एवं कृष्ण के परस्पर वार्तालाप, गांधारी द्वारा कुरुक्षेत्र का दर्शन, कृष्ण को शाप एवं अन्त में अनुनय विनय आदि इस ढंग से प्रस्तुत किये गये हैं कि यहाँ कवि की पूर्ण मौलिकता झलकती है।

अवस्थाएँ :— प्रस्तुत महाकाव्य में कथारम्भ —

कि मथुरापति कंस ने अपनी चचेरी बहन देवकी का
किया विवाह वृष्णि:वंशी वसुदेव से।'[1]

पंक्तियों से होता है। यहीं से प्रारम्भ अवस्था का भी उदय होता है। इसका प्रसार छठे सर्ग के अन्त तक दिखायी देता है जहाँ कंस के वध के अनन्तर कृष्ण देवकी-वसुदेव से मिलते हैं।[2] कृष्ण के यज्ञोपवीत संस्कार के अनन्तर गुरुकुल प्रस्थान[3] से नवम सर्ग में कृष्ण संदेश के रूप में धृतराष्ट्र के कथन[4] तक के प्रसंग में प्रयत्न तथा जरासन्ध द्वारा कृष्ण से युद्ध के लिए प्रस्थान[5] एकादश सर्ग में उत्तरा अभिमन्यु के परिणय महोत्सव[6] तक के प्रसंग में प्राप्त्याशा के दर्शन होते हैं। कृष्ण के पास अर्जुन एवं दुर्योधन सहयोग मांगने एक साथ पहुँचे।[7] इस प्रसंग से महाभारत युद्ध के अनन्तर महर्षि व्यास के साथ कृष्ण के धृतराष्ट्र के समीप पहुँचने तक के प्रसंग में नियताप्ति दृष्टिगोचर होती है। द्वादश सर्ग के प्रारम्भ से ही फलागम का भान होने लगता है जो महाकाव्य के अन्त तक मिलता है।

सन्धियाँ :—

देवकी के विवाह से कंस वध के बाद देवकी वसुदेव से कृष्ण बलराम के मिलन तक के प्रसंग में मुखसन्धि, कृष्ण बलराम के यज्ञोपवीत संस्कार से कृष्ण के संदेश वाहक अक्रूर से धृतराष्ट्र के कथन तक के प्रसंग में प्रतिमुख, जरासंध के युद्ध के लिए प्रस्थान से उत्तरा अभिमन्यु परिणय तक गर्भ एवं कृष्ण के समीप अर्जुन दुर्योधन के एक साथ सहयोग मांगने के प्रसंग से महाभारत युद्ध के बाद कृष्ण के धृतराष्ट्र से मिलने के प्रसंग में विमर्श सन्धि दिखायी देती है। तदनन्तर युद्ध के महानाश के वर्णन के साथ निर्वहण सन्धि मिलती है।

1- कृष्णाम्बरी, पृ0 4
2- वही, पृ0 108
3- वही, पृ0 109
4- वही, पृ0 148
5- वही, पृ0 149
6- वही, पृ0 174
7- वही, पृ0 175

<u>अर्थप्रकृतियाँ :—</u>

महाकाव्य की कथावस्तु में बीजवपन का कार्य कृष्ण जन्म से होता है। प्रयत्न-प्रसार की दृष्टि से अक्रूर के हस्तिनापुर से लौटने एवं कृष्ण से वहाँ की स्थिति के वर्णन से ~~बिन्दु~~ बिन्दु की स्थिति का पता चलने लगता है। कृष्ण से अर्जुन एवं दुर्योधन के सहयोग माँगने से पताका का उद्भव होता है। पूतना, तृणावर्त, शकटासुर बकासुर, अघासुर, शिशुपाल, जरासन्ध, गोपियों आदि से सम्बन्धित लघुकथानक प्रकरियों के रूप में सामने आते हैं जो कथावस्तु को अपने अभीष्ट की ओर अग्रसर करने में सहयोग देते हैं। महाभारत युद्ध के विनाशवर्णन के साथ ही कार्य की स्थिति दिखायी पड़ने लगती है।

—

चतुर्थ अध्याय

आलोच्य महाकाव्यों में भावपक्ष एवं कलापक्ष

(1) भावपक्ष — रस, — श्रृंगार, वीर, करुण, रौद्र, भयानक, वीभत्स, अद्भुत, हास्य, शान्त, वत्सल आदि।

(2) कलापक्ष — भाषा, अलंकार, गुण, रीति, छन्द, शब्द शक्तियाँ, दोष आदि।

आलोच्य महाकाव्यों में रस

रस की विशद व्याख्या प्रथम अध्याय में की जा चुकी है। अतः इसका पुनः विवेचन पिष्टपेषण ही होगा। इसीलिए यहाँ पर रसों की व्याख्या नहीं की गयी है। आलोच्य महाकाव्यों में श्रृंगार से लेकर वात्सल्य तक सभी रसों की व्यंजना की गई है। अधिकांश महाकाव्यों में रामकथा को ही लिया गया है जिसमें सभी रसों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसीलिए कवियों ने अपने मन के अनुकूल स्थलों का चयन कर तत्सम्बन्धी रसों की विशद विवेचना की है। यहाँ पर अत्यन्त संक्षिप्त में रसों की व्यंजना का स्वरूप दिखाया जा रहा है।

(1) श्रृंगार रस :-

इसे रसराज की अभिधा से अभिहित किया गया है। श्रृंगार रस के संयोग एवं वियोग दोनों पक्षों का वर्णन महाकाव्यों में निहित है जिसे अति संक्षिप्त में कुछ उद्धरणों द्वारा प्रस्तुत किया गया है। प्रियतम को देखकर प्रेयसी उसका चुम्बन पाने को आतुर है — " फड़के ओष्ठ-युगल प्रेयसि के

पाने को प्रिय-चुम्बन

सहसा थिरक उठे कुच दोनों

पाने प्रिय-आलिंगन।[1]

संयोग के समय रात दिन की अवधि एक क्षण सी प्रतीत होती है —

" उन्मुक्त मिलन बन जाता था वेसुध बसन्त

मधु रजनी का क्षण एक-उसी में निशा अन्त।

दिन हुआ कि जैसे किसी पुष्प का हो विकास

कट गयी रात जैसे कि प्यास में भरी प्यास। "[2]

1- निषादराज, पृ0 10

2- उत्तरायण, पृ0 30

विरहावस्था में भी संयोग की अनुभूति दृष्टव्य है —

आँखों में अखिलेश वेश अलेक्ष्य है,

कानों में 'रस राशि शब्द है गूँजते

प्राणों में प्रणयेश प्राण प्यारा रमा

मैं संयोगिनी हूँ वियोगिनी हूँ कहाँ।'[1]

श्रृंगार का एक और रूप देखिए —

आलोकित स्तूपों के नीचे, फूल सजाये बैठी बाला।

मिला रही थी सरस तंबोलन मृदुवाणी चितवन की हाला।

खाने की अति वस्तु सुहानी, मुख में सबके लाती पानी।[2]

यदा कदा संयोग श्रृंगार के निकृष्ट रूप भी आये हैं। सूर्पणखा का प्रणय निवेदन देखिए—

कौन अछूते हो तुम मनहर जिसने मेरा चित्त चुराया।

तज व्यवहार असद तुम देखो नैन पियासे उर अकुलाया।

यौवन मदिरा मदिर मदिर सी पीकर देखो मधुर मधुर सी।[3]

इसी परम्परा में कहीं-कहीं ~~इससे~~ नग्न चित्र भी प्रस्तुत किये गये हैं —

(1) और, और ...वह ~~व~~ अकथनीय ~~क्षण~~ | अनजाने ही

मेरे अंगों से ज्वाला सी कूद पड़ी तब

क्षुब्ध तपोधन के अन्तर को मन्थित करती

मुग्ध आत्म विस्मृति के पंखों की छाया में

कब सखि! सो गई तल्प पर मादन सुख के

पूर्ण समर्पण कर ही यौवन की विह्वलता

शांत हो सकी सत्य का रोप गर्भ में।[4]

1- जानकीजीवन, पृ0 15/81

2- सीतासमाधि, पृ0 26

3- वही, पृ0 129

4- सत्यकाम, जाबाला, पृ0 28-29

(2) बिठा लिया उसे अपने पास-सटा तन से तन

झनझना उठी तत्क्षण तत् क्षण कंकण किंकिणी

मिली नयन निकटता नयनों को

प्राण पुलकित प्राणों के प्रणय स्पर्श से।

लिपटी बाहों में बाँहें।

× × ×

विलोक प्रत्यक्ष प्रणय लीला।

आँखें मूँद लीं उद्धव ने।[1]

<u>(2) वियोग श्रृंगार :—</u>

इस पक्ष का वर्णन लगभग सम्पूर्ण आलोच्य महाकाव्यों में उपलब्ध है। सीता अनुभव कर रही हैं कि श्वास अनिल से विरहानल प्रज्वलित होकर शरीर को भस्म कर देगा और तब आत्मा प्रभु पद दर्शन स्वयमेव कर लेगी, तभी तो नयन रूपी बादलों से कहती हैं कि अश्रु रूप में आप न बरसें जिससे यह अग्नि मंद न पड़े —

विरहानल से प्रज्वलित हो रहा श्वास अनिल से क्षण-क्षण

जल जाओ ओ देह! खेह बन पाओ प्रभु पद पावन।

नयनों के घन तुम न बरस कर तन की तपन बुझाओ

प्रिय दर्शन हित उद्यत प्राणों का पथ मुक्त बनाओ।[2]

सीता निष्कासन में जब वे अपने बीते हुये समय को ध्यान करती हैं तो वे संज्ञाहीन हो जाती हैं —

दृगों के सामने सब दृश्य आये, सुशोभी दृश्य सुस्मृति ने दिखाये

न रोके से रुकी दृग अम्बुधारा, गमायी चेतना वपु भान भूले।[3]

श्री रामचन्द्र की विरह व्यथा भी जानकी से कम नहीं। उनका विरह वर्णन पाठक के मन को व्यथित किये बिना नहीं रहता —

1- कृष्णाम्बरी, पृ0 14।

2- रामदूत, पृ0 4।   3— जानकीजीवन, पृ016/116

(1) मेरे मन में आसक्ति विरह की लहराती,
सौ-सौ सुधियाँ मानस पथ पर आती जाती।
जड़ चेतन में तू ही तू दीख रही केवल,
मैं प्रथम बार मैं प्रथम बार चंचल-चंचल।[1]

(2) दुखी शोकातुर विकल हो राम उद्भ्रान्त से
वैदेही को द्रुतगति से लगे ढूँढने व्यग्रता से
कोना-कोना निमि भवन के क्षेत्र का छान डाला
छाया देखी उटज भर में किन्तु श्री-हीनता।
रोते-रोते विकल स्वर में प्रिया को,
बुलाते सीते आओ अप्रकट क्यों हो रही हो?
एकाकी क्या भय-व्यथित हो कुंज में जा छिपी हो
क्या पूजा के सुमन फल को दूर लेने गई हो।[2]

(3) उस वस्त्र खण्ड को देख राम के नयन सजल
पोंछा उससे ही आज उन्होंने अश्रु विमल
सीता के स्मृति अँचल को उर में सटा लिया
उस प्राण वस्त्र को प्राणों पर ही चढ़ा लिया।[3]

राम को सीता का वियोग प्रतिक्षण दुखित करता रहता है वे अपने को धिक्कारते हैं –

जीवित है या मृत है न पता कुछ आँख मींच कर घर से काढ़ी
हाथ राम के रंगे पाप से, कैसे छूटे कालिमा गाढ़ी
मुत पाप से होऊँ कैसे लगे दाग को धोऊँ कैसे।[4]

राधा कृष्ण के वियोग में कातर है किन्तु वह जानती है कि कृष्ण को महानतम कार्य करने हैं। अतः कहती हैं कि गोपियाँ भले ही उपालम्भ दें किन्तु मैं नहीं दूँगी –

1- अरुण रामायण, अरण्यकाण्ड, पृ0 394

2- भगवान राम, तपोवन विहार, पृ0 374

3- अरुण रामायण, किष्किंधा काण्ड, पृ0 405

4- सीता समाधि, पृ0 244

राधा न तन न मन
बीत गये वे प्रतिक्रियात्मक क्षण
उस समय भी मैं बोली बहुत कम?
पायल ने अवश्य बिखराये अधिक स्वर
रुनुन-झुनुन-झम
दुहराऊँ अतीत की सुधि मैं?
छिपी ही रहने दो स्मृति की रत्नराशि प्रेमाम्बुधि में!
राधा स्मृति मणि नहीं उगलेगी –
उपालम्भ नहीं देगी।
गोपियाँ चाहे जो कहें तुम्हें
मैं नही कहूँगी जैसी तैसी बात।[1]

वियोग श्रृंगार में निम्नलिखित अंगों को भी आलेख्य महाकाव्यों में व्यंजित किया गया है —

(1) चिन्ता :–

(1) लगा सोचने संभव अब वह नहीं आ सके
उसे बुलाने का आशय ही यही पिता का।[2]

(2) जैसे ये घनश्याम नित्य रोते यहाँ
वैसे वे घनश्याम हाय रोते न हों
मेरा जीवन जीवनेश के हेतु हा
जैसे वाड़व वन्हि दुःखदायी रहा।[3]

(3) नहीं ठिकाना होगा उनका, गिरि के खोहों बहला मन का।
घाम शीत आँधी पानी से छिपा हृदय में रखना उनको।
पुष्प संजोना पूजन थाली, रंग विरंगी रोली डोली।[4]

1- कृष्णाम्बरी, पृ0 125

2- सत्यकाम, पृ0 119

3- जानकी जीवन, पृ0 15/83   4— सीतासमाधि, पृ0 165

(2) अभिलाषा :-

विनती सुन ले गोदा मैया, करती व्याकुल चरणों में गिर।
डुबा शत्रु अभिमानी को दो, देखूँ देवर प्रीतम को फिर।
एक बार उनको देखूँ बस, अंक समाऊँ फिर तेरे हँस।[1]

(3) गुणकथन :-

उसने बनाये चित्र नये-नये दृश्यों के,
मैंने कहा- इनमें विवाह चित्र खींचो न
बोली वह प्रेम से अवश्य ही बनाऊँगी
पीछे से हमारे नेत्र बार-बार मींचो न।

(4) स्मरण :-

(1) शिलायें देखते अनुमान होता अहल्या सी पड़ी परित्यक्त सीता।
करूँ उद्धार संचित शक्ति खोई, प्रिया की ओर से मुँह मोड़ने से।[3]

(2) स्मरण उसे आती थी फिर फिर सरल प्रिय ऋचा
गहन निराशा मेघों में स्मित विद्युत असि सी।[4]

(5) उन्माद :-

उद्भ्रान्तों के सदृश करते अंग विक्षेप रोते,
आते जाते मृगगण तथा व्योमचारी खगों से।
वैदेही को करुण स्वर में दुख से पूँछते
बोलो मेरी चिर सहचरी प्राण प्यारी कहाँ है?[5]

1- सीतासमाधि, पृ0 166

2- उत्तरायण, पृ0 41

3- जानकीजीवन, पृ0 16/128

4- सत्यकाम, पृ0 122

5- भगवान राम, तपोवन विहार, पृ0 375

(6) व्याधि :--

(1) हृदय खोजता पुनः ऋचा को विह्वल होकर।[1]

(2) गहन व्यथा से क्रोध क्षोभ से भर उसका मन
उसको डसने लगा सर्प सा उठा क्षुब्ध फन।[2]

(3) लीन ध्यान में स्वामि चरण के जल में थी उतराती जाती
कहाँ जायेगी बचकर कहती, झट भीषण छाया मंडराती
चीखा उठी लखा पंजा भीषण छिड़क रही जल त्रिजटा क्षण-क्षण।[3]

(7) प्रलाप :--

(1) लगता कि नयन में तू मन में तू तन में तू
लगता कि साँस में तू मेरे क्षण में तू
प्रियतमे सकल भूतल निस्सीम गगन में तू
है मेरी प्राण वल्लभे निखिल भुवन में तू।[4]

(2) सर्व ग्रासिनी अपनी ज्वाला मुझ पर भी बरसालो
व्योम वासिनी अनल शिखाओं आओ आओ आओ।[5]

(3) इन नयनों से बहकर कजरा, झंझा नहिं उर सिंधु उठाना।
जल स्वाती का बरसा बरसा, सागर तल में सीप लुकाना।
नहीं दामिनी तड़प सुहाना, बरस सुधा शशि उन्हें लुभाना।[6]

(8) जड़ता :--

सत्यकाम का अन्तर्मन निःस्तब्ध हो गया
खींच ले गया हो सार तत्व हो उसका कोई।[7]

1- सत्यकाम, पृ० 139
2- वही, पृ० 167
3- सीतासमाधि, पृ० 168
4- अरुणरामायण, पृ० 395
5- रामदूत, पृ० 43
6- सीतासमाधि, पृ० 166
7- सत्यकाम, पृ० 167

(9) मूर्छा :--

हीना शोक विषाद कंटक फँसी मीना समा उर्मिला
होती थी हत चेतना आती कभी चेतना।[1]

(10) मरण :--

बिखर गये केश श्रृंगार।
रुदन ही रुदन
क्रन्दन ही क्रन्दन
छटपटाते प्राण
जलहीन मीन सी अन्तर्दशा
व्यापक विकलता चरम सीमा पर।[2]

करुण रस :--

आलोच्य महाकाव्यों में राम सम्बन्धी कथानक में इस रस का सर्वाधिक महत्व है। कैकेयी की वर याचना, कौशल्या का शोक, राम वन गमन, दशरथ मरण भरत-आगमन, लक्ष्मण शक्ति, सीता-परित्याग, सीता का स्वर्ग-आरोहण आदि अनेकों स्थल करुण रस से आप्लावित हैं जिनके कुछ उद्धरण निम्नवत हैं --

(1) राम-वनगमन का दृश्य अत्यन्त करुणापूर्ण बन पड़ा है --

जाते आँखों के तारों को देख रहे थे दशरथ व्याकुल
निकल रहे थे अश्रु वेग से फोड जीर्ण से कगार दुर्बल
देख-देख सीता सुकुमारी, अही पटकते सिर को भारी।[1]

दशरथ-मरण के समय का करुण क्रन्दन देखिए --

(2) कौशल्या थी विकल शव के सीस को अंक में ले,
रोती थी भूतल पतित हो धैर्य विना सुमित्रा।[4]

1- जानकीजीवन, 1/14
2- कृष्णाम्बरी, पृ0 99
3- सीता समाधि, पृ0 79
4- भगवान राम, तपोवन विहार, पृ0 177

अशोक वन में सीता की स्थिति दृष्टव्य है --

(3) तरु सी छिन्न हुई शाखा-सी वे अशोक उपवन में,

डूब रही हैं भग्न तरिणी सी महाशोक सागर में।

× × × ×

लख उनकी वेदना गगन भी भग्न हृदय लगता है।

धरती शत-शत प्रस्रवणों में विगलित हो रोती है।

मलय पवन उनके निःश्वासों से प्रतप्त होता है।[2]

लक्ष्मण शक्ति में राम का भ्रातृ-प्रेम करुणा से अत्यन्त निखरा हुआ सा प्रतीत होता है —

राम ने अनुज के मुख को फिर देखा

मन के मर्मस्थल पर उभरी दुख की रेखा।

आँखों से झरने लगा अचानक स्नेह नीर

भरभरा उठा, थरथरा उठा कोमल शरीर।[2]

सीता वनवास में उनके करुण क्रन्दन से चेतन क्या जड़ भी दुख से कातर बन जाते हैं —

(1) अभागी हाय मैं अति ही अभागी, न धो पाई अभी निज कालिमा को।

चलायेंगे चराचर आज चर्चा सुधा संजी विष बेलियों में थी

मरूँगी व्यर्थ जीकर क्या करूँगी? भरूँगी कर्म का फल भोग सारा।

न रो हा हा न रो प्रिय लाल मेरे न शोकागार रोदन से बुझेंगे।[3]

(2) दुर्दश्य पश्य पश्य हाय मैं मरी नहीं दुर्भावना दुरन्त की भरी नहीं।

देखूँ अशेष क्या विशेष देखता रहा, प्राणेश त्याग आज पुत्र शोक भी सहा।

दुर्भाग्य क्या कुयोग और क्या अनन्त हो, पृथ्वी करे तुरन्त देह का दुरन्त हो।

रोती हुई अधीर माँ अचेत हो गई, उत्ताप में त्रिताप के समीप हो गयी।[4]

'उत्तरायण' में जब तुलसीदास अपनी पत्नी को छोड़कर सन्यास ग्रहण करते हैं, एवं जब एक लड़की नदी में डूबते हुए तुलसी दास जी द्वारा बचा ली जाती है, दोनों प्रसंग करुणा से प्लावित हैं —

1- रामदूत, पृ० 26-27

2- अरुणरामायण, लंकाकाण्ड, पृ० 538

3- जानकीजीवन, पृ० 294 4- जानकीजीवनः पृ० 378

(1) तुम मत जाओ मत जाओ ओ प्रियतम उदार।

देखो इन चरणों पर है मेरी अश्रुधार।

सौभाग्य रहे पर क्या हो इतना भाग्य क्रूर?

मस्तक तो हो पर उसका हो सिन्दूर दूर?[1]

('अश्वत्थामा' में भानुमती का करुण क्रन्दन पाठक को द्रवित कर देता है —

लिए वेदना छाया मुख पर

मूक गिरा से क्रन्दन करती

अपनी प्रतिमा बन करुणा की

नयन सलिल की वर्षा करती।

× × ×

दुर्योधन की धर्मपत्नी की

चुपचुप मन में थी अति रोती

आँखों में आते आँसू को

आँखों में ही बरबस धोती।[2]

अक्रूर के साथ बलराम एवं कृष्ण के मथुरा जाते समय का चित्र अत्यन्त करुणामयहै —

कृष्ण बलराम ने —

स्पर्श किये मातृचरण

कि हो गईं वह मूर्छित

ज्यों ही किया पितृ चरणों का स्पर्श

कि फफक-फफक कर रोने लगे वे।

राधिका नयनों में अनन्त अश्रु भर कर

बैठ गये प्रशान्त कृष्ण रथ पर

बैठे बलराम।[3]

1- उत्तरायण, पृ0 35

2- अश्वत्थामा, पृ0 68

3- कृष्णाम्बरी, पृ0 99

'सत्यमेव जयते' में भगत सिंह की फाँसी ~~को~~ ~~अवसर~~ सम्पूर्ण भारतवर्ष कराह उठा --

समुद्र गाते वन्देमातरम्
गए थे वे फन्दे में झूल
सभी पत्रों में था यह वृत्त
समर्पित थे श्रद्धा के फूल
खबर आते ही टूटा व्योम
धरा पर जैसे बनकर आह
आँसुओं में उमड़ा जन-शोक
उठा पीड़ा से देश कराह।[1]

वीर रस :--

इस रस का स्थाई भाव उत्साह है जो कार्य सम्पादित करते समय मन में विद्यमान रहता है। इसके चार भेद हैं -- युद्ध वीर, कर्मवीर, धर्मवीर, एवं दान-वीर, जिनका वर्णन आलोच्य महाकाव्यों में समग्र रूप से हुआ है। इसे कुछ उद्धरणों के माध्यम से इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है --

युद्ध वीर :-

भरत के चित्रकूट जाते समय राम के मित्र गुह को आशंका हुई कि भरत के मन में कहीं ऐसा तो नहीं है कि श्री राम को मार कर मैं अकंटक राज्य करूँ। अतः वह अपने बाल सखा श्री राम की रक्षा के लिए भरत से रास्ते में ही युद्ध करना चाहता है। वह कहता है --

आज गुह के चण्ड धनुष से
निकलेंगे शर आग उगलते
भीषण नागिनियों के सदृश
रिपुओं के प्राणों को हरते।[2]

1- सत्यमेव जयते, पृ0 199

2- निषादराज, पृ0 98

किन्तु भरत की विमल मति जानकर वह स्वयं राम को मनाने चल देता है। चित्रकूट पहुँचने पर राम एवं लक्ष्मण को जब ज्ञात होता है कि भरत ससैन्य आ रहे हैं तब लक्ष्मण का वीरोचित कथन दृष्टव्य है —

मेरे रोषानल प्रबल से दग्ध होगी दिशाएँ
काँपेंगे दिक्पति शरण त्रैलोक्य में भी न होगी।
वाणों से आहत भरत के शूर योद्धा गिरेंगे,
सेना सूखे तृण निचय सी भस्म तत्काल होगी।[1]

लंकादहन के पहले जब रावण द्वारा प्रेषित राक्षसों एवं हनुमान के बीच युद्ध होता है तब हनुमान का शौर्य अत्यन्त सुन्दर बन पड़ा है —

था प्रमोद-वन बीच अवस्थित स्वर्ण सौध उच्छ्रित अभिराम,
उसके तोरण पर संस्थित था मन्दर-सा गुरु परिधि प्रकाम।
लेकर कर में उसे घुमाने लगे महाकपि बारम्बार,
शत स्फुलिंग मालायें प्रकटीं हुआ चतुर्दिक अनल प्रसार।
जैसे पन्नगारि पन्नगदल को कर देता है निःशेष,
कपि द्वारा प्रबल किंकरों का दल मारा गया अशेष।[2]

अश्वमेध प्रसंग में राम सेना तथा लव का उत्साह, आवेश, क्षिप्रता, बल, शक्ति, प्रताप दृढ़ता से वर्णित हुआ है।[3] इसी प्रकार अश्वत्थामा का युद्धोत्साह भी बहुत सुन्दर चित्रित किया गया है —

अथवा जैसे सिंह महाक्रम,
गज यूथप के सम्मुख आता।
देख गरजने लगता सहसा,
युद्धोत्साह न हृदय समाता।[3]

<u>कर्मवीर</u> —

मनुष्यत्व ही सौरभ सृष्टि सरोरुह उर का।
देवों को भी आत्मसात् कर सकता मानव।[4]

1- भगवान राम, तपोवन विहार, 37
2 रामदूत, पृ० 57
3- जानकीजीवन, पृ० 20/48 4- अश्वत्थामा, पृ० 4
5- सत्यकाम, पृ० 90

(2) वीरो बढ़ो बुला रही है प्रबुद्ध वीरता,

सम्बद्ध हो बंधा रही सुधैर्य वीरता।

सौभाग्य से सुयोग प्राप्त अश्वमेध का,

हो रक्ष्य, रक्ष्य लक्ष्य लक्ष्य शब्द वेधा का।[1]

(3) हे पार्थ!

इसी महोद्देश्य से कार्य कर रहा मैं

जान लो भली भांति

कि समस्त कर्म समस्त ज्ञान में ही,

ज्ञान ही संशय विनाशक

श्रेष्ठ कर्मयोग, कर्म सन्यास की अपेक्षा

जल में कमल पत्र सा आसक्ति रहित कर्म

ज्ञानी समदर्शी मनुष्य ही

समताभाव में स्थित मन ही विजयशील

जिसे प्रिय प्रप्ति में हर्ष अप्रिय प्राप्ति में विषाद न हो

वही ब्रह्म वेत्ता मोहहीन।[2]

धर्मवीर :-

हो सिद्ध एक के साथ अनेकानेक कार्य

है राजदूत के हेतु नीतिपथ वही आर्य

अतएव राक्षसों से छेडूँगा रणदारुण

विध्वस्त विपिन कर इसे बना दूँगा पितृवन।[3]

(2) वीर पुरुष दे वचन किसी को

सदा पालते उसको मन से

नहीं तोड़ते वचन कभी वे

निकले प्राण भले ही तन से।[4]

1- जानकीजीवन, 18/62 2- कृष्णाम्बरी, पृ0 150

3- रामदूत, पृ0 54 4- अश्वत्थामा, पृ0 5

चित्रकूट में भरतागमन के समय गुह धर्मयुद्ध के लिए लालायित हो उठता है —

धर्मयुद्ध समझो यह वीरो
धर्म-प्राप्ति-हित युद्ध करेंगे
धर्महेतु हैं राम गये बन
धर्महेतु हम यहाँ मरेंगे।[1]

महात्मा गाँधी का धर्मयुद्ध दर्शनीय है —

एक हाथ में आओ सब हाथ मिला दो
युद्ध घोष में सब अपनी आवाज मिला दो
सत्याग्रह संगर में भारत का रथ मोड़ो
अंग्रेजों से कह दो बढ़कर भारत छोड़ो
[illegible]
नहीं युद्ध के बारे में है कुछ बतलाना,
अपना तो है वही अहिंसा-अस्त्र पुराना।[2]

दानवीर :—

क्षेत्रज्ञों को कृषि हित बलिवर्द की दक्षिणा दे
दुग्धा गौ वाहन धन दिया राम ने दानप्रीत्या।[3]

रौद्र रस :—

लक्ष्मण परशुराम संवाद, कैकेयी वरयाचना, अंगद रावण संवाद, राम-रावण युद्ध तथा अन्य युद्धों में रौद्र रस की सफल व्यंजना हुई है। आरक्त नेत्र भ्रकुटि विक्षेप, रोमांच ललकारना, परुष वचन, गर्व, उग्रता आदि से यह रस पुष्ट हुआ है। कुछ उदाहरण देखिए —

(1) दुर्धर्ष वीर दर्प का अमर्ष जो तुझे
तो तू तुरन्त ही दुरन्त दे बता मुझे
भेजूँ अभी अवश्य शीघ्र अन्य लोक में
माता-पिता कुटुम्ब को न डाल शोक में।[4]

1- निषादराज, पृ० 98
2- सत्यमेव जयते, पृ० 275
3- भगवानराम, तपोवन विहार, पृ० 109
4- जानकीजीवन, 20/18

(2) लक्ष्मण बोले — हे विप्र! न निर्बल देख लेखो
है नहीं कुम्हड-बतियाँ कि तर्जनी देखो
सुनकर भर आया क्रोध बने अंगारे
पर देखा राम की महाशक्ति वे हारे।[1]

(3) बालक ढीठ खड़ा निशंक है, जाने नहि नादान कौन मैं।
काल नृपों का परम भयंकर क्षात्र रक्त का करूँ पान मैं।
क्षत्री शिर की पहने माला, परशुराम मद हरने वाला।[2]

(4) धारण कर ज्वालामुखियों की माला सी कपि महाविराट्
रण मण्डल में प्रकट हुताशन सदृश हुये वे भट सम्राट।
छिन्न भिन्न कर दीर्ण शीर्ण कर ध्वस्त त्रस्त कर असुर व्यूह।
× × × × ×
कभी उठाकर नभ में ऊँचा अजगव सा लांगूल कराल
शोभित होते महारुद्र से अर्जित पावक भाल विशाल।[3]

(5) और कभी था क्रोध उग्र का
भाव दीखता मुख पर उनके
फड़क फड़क थे उठते भुजयुग
भुजमूलों से रह रह उनके
विकट धमनियाँ कस जाती थीं
रक्त नयन थे भीषण लगते
रद पुट फड़क फड़क थे उठते
कुछ करने को पग थे बढ़ते।[4]

गुह का रौद्र रूप देखते ही बनता है —

आज पाट दूँगा पृथ्वी को
भरत सैनिकों के रुण्डों से
किलक किलक कर काली देवी
आज सजेगी वर मुण्डों से।[5]

1- उत्तरायण, 78
2- सीतासमाधि, पृ0 4।
3- रामदूत, पृ0 58
4- अश्वत्थामा, पृ0 68
5- निषादराज, 98

भयानक रस :-

भयदायक वस्तु को देखने से व सुनने से अथवा प्रबल शत्रु के विद्रोह आदि करने से जब हृदय में वर्तमान भय स्थायी भाव होकर पुष्ट होता है, तब भयानक रस उत्पन्न होता है।[1] हिंस्र प्राणी, अपशकुन, वध, शस्त्रास्त्र, झंकार विभाव हैं और कम्प वैवर्ण्य, स्तम्भ, रोमांच, स्वेद, मरण, वेपथु, नेत्र विस्फारण अनुभाव हैं तथा शंका आवेग, दैन्य इत्यादि इसके संचारीभाव हैं।

परशुराम के आगमन से भयभीत राजाओं में, वरदान प्रसंग में कैकेयी के क्रोध को देखकर दशरथ में, चित्रकूट में भयानक आँधी से, लक्ष्मण के क्रोध से सुग्रीव की भीति एवं रावण के सम्मुख भयभीता सीता में भयानक रस देखा जा सकता है। कुछ उद्धरण दृष्टव्य हैं —

(1) धेनु रंभाती अज मिमियाते, श्वान भूँकते
वन छायाएँ कोलाहल से कँप कँप उठतीं।
उस पर मरुतों के अश्वों की टापों की ध्वनि
झंझा मथित, धूल धूसरित दारुण वन को
बधिर बनाती रहती भू की धुरी हिलाकर।[1]

(2) न कोई दृश्य थे पथ के सुहाते, रथों से थी मनोरथ अग्रगामी,
थकी सी देह थी जिसकी शिराएँ न क्यों साकेत का वर वृत्त पाया।
उडी जो धूलि थी रथ चक्र द्वारा दिशाएँ उन्मना विमना मलीना,
किये थी धूल धूसर पादपों को लताएँ छिन्न हो महि लुण्ठिता थीं।[2]

(3) बहु गुहाविष्ट सत्वों का विकृत चीत्कार
क्रन्दन धन सा छा गया गगन में हाहाकार
विदलित विगलित जल स्रोतों में गिरि विशाल
क्षण-क्षण मदस्रावी गज सा लगता था कराल।[3]

1- काव्यदर्पण, रामदहिन मिश्र, पृ0 52-53

2- सत्यकाम, जिज्ञासा, पृ0 ~~288~~ 10

3- जानकीजीवन, पृ0 288

(4) भूत प्रेत डाकिनियाँ मिलकर
उनके मग को रोक रही थीं,
और शिवाएँ आग उगलतीं
मृत वीरों को नोच रही थी।[1]

(5) कहीं अँधेरा गहन भरा है, सर सर सर्प विषैले जाते।
गर्जन करते भालूकुंजर मांस चबाते केहरि आते।
अन्दर अन्दर दाँत बजाते, बाहर शूकर गुर्र् गुर्राते।[2]

(6) प्रबल प्रबल आसुरी अग्नि अभियान
अँधेरी रात
किन्तु रक्तानल धरती रक्तिम आसमान
झंझावात चक्र धूमचक्र
चिनगारियाँ ज्यों चूर्ण प्रज्वलित अभ्रक
वातासी वन्हि शिखा
विनाश विकराल सन्ध्या सी सर्व दिशा।[3]

वीभत्स रस :-

वीभत्स रस का स्थायी भाव जुगुप्सा है जो किसी अनभिगत, गर्हणीय अथवा उद्वेजक वस्तु को देखकर या सुनकर अथवा गन्ध रस तथा दोष के कारण उत्पन्न होती है। कहीं कहीं ऐसी वस्तु को सूँघकर जो महा सड़ी गली और दुर्गन्धपूर्ण हो, किसी ऐसी वस्तु को चखकर जो स्वाद विचित्र और तुरन्त त्यागने की इच्छा उत्पन्न करने वाली हो अथवा कहीं ऐसी वस्तु का स्पर्श जो छूने में गन्दी प्रतीत हो, जिससे चित्त विकृत होने लगे, ऐसे सब पदार्थ जुगुप्सा उत्पन्न कर सकते हैं और यह जुगुप्सा विभावादि से परिपुष्ट होकर वीभत्स रस के रूप में व्यक्त हो सकती है।[4]

आलोच्य महाकाव्यों के कुछ उद्धरण निम्नलिखित हैं ---

1- रामदूत, पृ० 2
2- अश्वत्थामा, पृ० 2
3- सीता समाधि, पृ० 117
4- कृष्णाम्बरी, पृ० 77
5- रस सिद्धान्त, स्वरूप विश्लेषण, पृ० 372

(1) ऐसी श्रृगाल श्वान खान पान में लगे, आह्वान गान तान मान दान में लगे।
निशंक अंक अंक लोच काक कंक थे, चिल्लादि चिल्लपों मचा छके अशंक वे।[1]

(2) नर औ कुंजर रथ औ वाजी
सब मिश्रित थे भू पर ऐसे
मांस सभी का मिला दिया हो
विधि-अघोरी के सरभस जैसे।[3]

(3) काक गिद्ध गेमायु मिलकर
मनुज मांस का भोज करेंगे
रजनीचर आहार विपुल पा
मन में मोद भरे विचरेंगे।[3]

(4) बिखरे हैं इधर उधर मुकुट आभूषण
गिरे हैं धनुष बाण खड्ग यहाँ वहाँ
शव ही शव चारों ओर
कहाँ से गिद्ध आ गये इतने -
असंख्य कौए सियार कुत्ते
तीन गीध दुर्योधन वक्षा पर
नोच रहे चतुर सियार चरण मांस
निडर काग निकाल रहा आँख की पुतली।[4]

अद्भुत रस :—

इसका स्थायी भाव आश्चर्य या विस्मय है। महाकाव्यों में इसका सुन्दर वर्णन है। विशाल धनुष को तोड़ना, सूर्पणखा का सौन्दर्य वर्णन, हनुमान का समुद्रोल्लंघन रावण का दरबार, संजीवनी आनयन के लिए आकाश मार्ग में उड़ना अद्भुत रस के स्थल हैं।

1- जानकीजीवनः पृ0 19/96
2- अश्वत्थामा पृ0 50
3- निषादराज, पृ0 98
4- कृष्णाम्बरी, पृ0 230
5- सत्यमेव जयते, पृ0 342

(1) ऐसा भंजन काण्ड भीम धनु का चैतन्यहारी हुआ
मूर्छा प्राप्त सभा अनेक क्षण को निस्तब्ध सी हो गयी।
गूँजा घोर मराज नाद नभ में पृथ्वी लगी काँपने
श्रद्धा से नत राम पाद पर थे आचार्य ब्रह्मर्षि के।[1]

(2) गढ़ की चूडाओं पर दिनकर लगते थे शमान
ध्वजराजि विराजित अट्ट कलित गृह पंक्ति वितत
लगती थी शरद घनों सी इन्द्र धनुष शोभित
कांचन प्रभ प्राकारों से परिवृत्त सभी ओर
शत शत तोरण प्रतोलियों से भूषित अछोर
अगणित आशीविष श्वसित राक्षसों से रक्षित
थी नक्र नागपुरी सी लंका अपराजेय अमित।।[2]

(3) जिधर उठाओ नेत्र चमकते, देखा कामनी कंचन माया।
नहीं स्वर्ग सुख सुर को उतना जितना लगता वहाँ लुभाया
दुर्लभ भोगों की सुख ? सुविधा ज्ञान प्राप्ति की नहि थी दुविधा।
एक एक सी वस्तु अनोखी एक एक से भवन मनोहर
एक एक से धनी अमित थे, एक एक से नारी सुन्दर
माया का वह नगर मनोहर लगता अद्भुत अति विस्मय कर।[3]

एकाएक
चाँदी की सहस्रों चिड़ियों की तरह
रुपहली किरणों के तारों की विद्युती झिलमिली
फुलझड़ी झालर पर
जगमगाहट का सुनहला जादू
तुरत लाल लाल- लाल
आसमान में सर्वत्र लालिमा की झिलझिलाहट।[4]

1- भगवान राम, पूर्वचरित, पृ0 91

2- रामदूत, पृ0 10

3- सीतासमाधि, पृ0 185   4- कृष्णाम्बरी, पृ0 30

हास्य रस :-

इसके लिए विकृत वेशभूषा, रूप, वाणी, अंग, भंगी आदि का देखना या सुनना अपेक्षित है।

आते ही सजाया घर जो कि अस्त व्यस्त था
कहीं कहीं कोने बीच मकड़ी के जाले थे।
उसने कहा था कुछ हँस-हे दया निधान
बिना खान पान वाले अच्छे जन्तु पाले थे।[1]

सूर्पणखा अपने को ऐसा सजाया है कि वह हास्यास्पद लगने लगी। उसके रंजित नख, घोसले सरीखे बाल एवं नाम मात्र के वस्त्र उस पर मटकती देह अत्यन्त हास्यास्पद प्रतीत होती थी —

रंजित नख थे बड़े बड़े से, बालों का था सजा घोंसला।
नाम मात्र के वस्त्र वदन पर, मुख पर था निर्लज्ज हौसला।
फैली काम गंध की मादक, लगती थी वह प्रवीण साधक
मटक चाल चल मतवाली अति, नारी निकट गर्व से आई
अपलक देखे युवा मनोहर, मन में उसने युक्ति रचाई
चली अहेरी दृग कमान पर, प्रत्यंचा सी भौंह तान कर।[2]

शृं. और हास्य —

कंचुकी खो गयी किसीकी
कि फुलझड़ी छुटी हँसी की।
मछली ने नीवी खोल दी किसीकी
कि फूल उड़ने लगे अट्टहास के
सटे भीगे वस्त्र श्वेत शरीर में
प्रणाम कर सच्चिदानन्द को
सखी घर की ओर
सौरभ सुगन्धित चन्द्रस्तिमित चमकीली भोर।[3]

1- उत्तरायण, पृ० 41

2- सीतासमाधि, पृ० 128

3- कृष्णाम्बरी, पृ० 91

शान्त रस :—

शान्त रस के स्थायी भाव के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है। धृति, निर्वेद, उत्साह, आत्मरति, राग इत्यादि माने गये हैं।

(1) है दानि शिरोमणि, प्रभु हे अन्तर्यामी !
है एक लालसा बड़ी हृदय में स्वामी !
मैं कहूँ प्रभो किस तरह शब्द सुलझाऊँ ?
प्रभु क्षमा करें, प्रभु सदृश पुत्र मैं कब पाऊँ ![1]

(2) दृश्य चित्र बन गया उसी क्षण
सारे ही उस रण आँगन में
द्वेष कोप से रहित सभी थे
शान्ति राजती सबके मन में।[2]

रामचन्द्र के वन आगमन से सम्पूर्ण प्रकृति एवं मानव ऋषिगण आनन्दित हैं। वहाँ सभी सुख शान्ति से परिपूर्ण हैं —

(3) ऋषियों के आश्रम में थी प्रातः की वेला
खेल रहा था मचल मचल कर पावन पवन अकेला
मुस्काता था अरुणा प्रभात
चली गयी थी काली रात
कुमुद बन्धु थे पश्चिम पथ पर
लगे हँसने देव दिवाकर
चक्रवाक युग मिलते फिर से
पर चकोर दुखित थे लखाते
विहग मनोहर लगे चहकने था प्रातः की वेला
सुषमा का आया जैसे था एक अनूपम रेला।[3]

1- उत्तरायण, पृ0 73

2- अश्वत्थामा, पृ0 20

3- निषादराज, पृ0 92

महात्मा गाँधी की वाणी कितनी शान्तिदायक लगती थी —

(4) एक दिव्य सी शान्ति छा गई उस विशाल अधिवेशन में।
गूँज रही थी कान कान में मंगलमय गाँधी वाणी,
कूज रही थी कान कान में वह भारत भू-कल्याणी
सबने मन ही मन में इस वाणी को बारम्बार सुना
सबने मन ही मन में इस वाणी का सारा सार चुना।[1]

वात्सल्य रस :—

बालक्रीड़ाओं में इस रस की अभिव्यक्ति हुई है। रामादि चारों भाइयों का डोलना, कूदना, ठुमुक ठुमुक कर चलना आदि देख माता-पिता आह्लाद से गद्गद हो जाते थे —

(1) शिशु सहित खड़ी हो जाती वह दर्पण सम्मुख
प्रतिबिम्बित छवि को देख उसे मिलता है सुख
इस ओर राम उस ओर भरत दो नील कमल
वात्सल्य भाव से कैकेयी प्रतिदिन विह्वल
कौशल्या चारों पुत्रों से रस भर देती
निज चुम्बन से अधरों को उज्ज्वल कर देती।
× × × ×
पुत्रों की शिशु लीला विलोक कर नृप विभोर
गोदी में लेकर उन्हें प्राप्त प्रिय सुख अछोर।[2]

(2) धरा में धूल धूसर लोटने से
जड़े हीरे नयी विधि के निराले।
उठा लेती उन्हें तब जानकी यों
निराशा रंकिनी युग रत्न पाये।[3]

1- सत्यमेव जयते, पृ0 79
2- अरुणरामायण, बालकाण्ड, पृ 11
3- जानकीजीवन, पृ0 344

(3) चिपकी थी ऐसी गोदी मेंजैसे लोभी पकड़े धन को
परमानन्द लीन वे दोनों भूले तन को भूले मन को
वह चिपके वह चिपकाते उर उमगे झिलमिल प्रेम सरोवर।[1]

(4) मुस्करा कर ही
देखता है सबको वशीकरणी विलोचन से।
कला निपुण है अभी से ही,
यशोदा तन्मय हो गयी?
डूब गईं वात्सल्य समुद्र में?
ऐसी ही होती है मातृत्व समाधि।[2]

इस प्रकार से आलोच्य महाकाव्यों में रसों के सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्व का अत्यन्त समीप से अवलोकन किया गया है।

---

(1) सीता समाधि पृ० 6
(2) कृष्णाम्बरी पृ० 40

काव्य में रीति, वृत्ति एवं गुण की भाँति अलंकारों का भी बड़ा महत्व है। अलंकारों के विषय में प्रथम अध्याय के अलंकार सम्प्रदाय नामक शीर्षक में विषद् वर्णन प्रस्तुत किया गया है। अतः इनके विषयमें यहाँ पर कहना पिष्टपेषण होगा। अलंकारों के दो मूल विभाजन किये गये हैं — शब्दालंकार और अर्थालंकार, जिनका रूप आलोच्य महाकाव्यों में निम्न प्रकार से देखा जा सकता है।

अनुप्रास अलंकार

(क) छेकानुप्रास अलंकार :- जहाँ व्यंजनों की एक बार आवृत्ति हो, यथा —

(1) कृष्ण कर्ण के स्वेत वर्ण हमने मरुतों का
वेग छीन जीता स्पर्धापण, अद्भुत जब था।[1]

(2) तारणी वारिणी बनी जह्नु की कन्या।[2]

(3) अवगत कर प्रस्ताव क्रिप्स के भारत जन भी क्षुब्ध हो उठे,
पहले जितना लुब्ध हुये वे उतने ही अब क्रुद्ध हो उठे।[3]

(4) निर्मल पोखर पर्वत सुन्दर चितली तितली भ्रमर मनोहर।[4]

(ख) वृत्यनुप्रास अलंकार :-

जहाँ व्यंजनों की अनेक बार आवृत्ति हो। वहाँ वृत्यनुप्रास अलंकार होता है —

(1) कलि लता कवि कोविद क्या कहे, ललितता लजाती ललचा रही।[5]

(2) जय जन्मभूमि जननी जय हे भारत महान।[6]

1- सत्यकाम, पृ0 14

2- उत्तरायण, पृ0 72

3- सत्यमेव जयते, पृ0 265

4- सीता समाधि, पृ0 119

5- जानकी जीवन, पृ0 8/45

6- अरुण रामायण, बालकाण्ड, पृ0 1

(3) अधोभाग को!केशों की कोमल रजनी को
अकलुष सस्मित शशि मुख के पीछे छिटकाकर।[1]

(4) पक्षी रुक रुक चित्त चकित चुरा चुरा।[2]

(5) छैल छबीले नारि छबीली, छवि ही छवि रही उजागर।[3]

(ग) श्रुत्यनुप्रास :— जहाँ एक ही स्थान से उच्चरित होने वाले व्यंजनों का प्रयोग हो—

(1) साध्वी सुधन्य सुव्रता सुमुखी सुशीला
सीता समस्त शुभ सद्गुण गेयगीता।[4]

(2) भय क्षीण करें सब इनका अभिनन्दन वन्दन।[5]

(3) वन लक्ष्मी सी छिटकाती छवि प्रमुदित करती कानन आनन।[6]

यमक :— जहाँ भिन्न अर्थ वाले सार्थक व्यंजनों की आवृत्ति हो —

(1) तप इधर आपका और ~~ब~~ उधर उसका तपना।[7]

(2) तीखे शिलीमुख शिलीमुख से मनोज के,
काले महा विषय के विष में बुझे हुये।
गुंजारते गहन से फुसकारते चले
पाये अचेत जिसको उसको डसे।[8]

(3) आई जान जान में जीवित, जान जानकी को धरती पर।[9]

(4) कुछ घड़ियों में ही शिव आसन
डगमग डगमग डोला
आशुतोष के आशुतोष का
द्वार और वर खोला।[10]

1- ~~अरुण~~ सत्यकाम, पृ0 101
2- उत्तरायण, पृ0 50
3- सीता समाधि, पृ0 25
4- जानकी जीवन, पृ0 109
5- रामदूत, पृ0 2
6- सीता समाधि, पृ0 119
7- अरुण रामायण, पृ0 33
8- जानकी जीवन, पृ0 124
9- सीता समाधि, पृ0 152
10- अश्वत्थामा, पृ0 63

श्लेष :— श्लिष्ट शब्दों के द्वारा अनेक अर्थों का ज्ञापन श्लेष अलंकार है।[1]

(1) सहेज दे जीवन जीवनेश को, रखे न आशा निज नाम धाम की
तरंग माली इसको समेट ले, सप्रेम दोनों मिल एक रूप हों।[2]

(2) धन्यउठो दिव दुहते, दुहो प्रकाश धेनुएँ
भुवनों के पात्रों में भर चेतना दुग्धनव।
देव जननि तुम अदिति मुखा श्री यज्ञ ध्वजा को
दीपित करो गगन में फहरा गंध धूम मद।[3]

(3) वृद्ध हो रहा है तम झाँकती स्वेतता,
और अब बीत रहा रजनी का याम है।[4]

(4) जाग उठी थी तड़प राधिका, प्रेमी मीरा में मतवारी।
खेले घुटनों बचपन भोला, सूर हृदय के अजिर मुरारी।
भोग्या बनकर नारी आर्त थी, वाणी श्याम श्याम पुकारती।[5]

वक्रोक्ति :— जहाँ श्रोता वक्ता के कथन को श्लेष या काकु के कारण अन्य अर्थ ग्रहण करे —

(1) देखी नहीं रूपसी तुमसी, शोभा क्यों कर जाये वरनी।
मैं नीरस जंगल का वासी प्रणय प्रीति क्या जानूं करनी।[6]

(2) मैं धन्य तुम्हारे दर्शन से हो गया आज
सचमुच लाखों बाजों में तुम हो एक बाज।[7]

उपमा — जहाँ गुण धर्म की समानता के कारण दो वस्तुओं में तुलना की जाये —

(1) मंजुल मृणाल-सी बाँह, कण्ठ की बनी माल।[8]

1- डा0 वचनदेव कुमार, रामचरित मानस में अलंकार योजना, पृ0 60
2- जानकी जीवन, पृ0 2/95
3- सत्यकाम, पृ0 72
4- उत्तरायण, पृ0 38
5- सीतासमाधि, पृ0 266
6- सीता समाधि, पृ0 128
7- अरुण रामायण, पृ0 510
8- उत्तरायण, पृ0 29

(2) चकोरियाँ सी कर मुग्ध नारियाँ
विदेह जा राजित चन्द्र की कला।[1]

(3) पश्चिम नभ में शुक्र विहँसता शिशु शशि सा।[2]

(4) ठहरो गुह विश्राम तनिक दो
अपनी जिह्वा को हे प्रियवर
इन्दीवर सा तनिक उठाकर
शान्त भाव से बोले रघुवर।[3]

(4) किन्तु आन्दोलन का प्रारूप
नहीं था अब तक कुछ स्पष्ट
झेलते थे चिन्ता मग्न,
रात-दिन प्रसव-पूर्व सा कष्ट।[4]

रूपक :— उपमेय और उपमान में भेद मिटाने पर उपमा ही रूपक अलंकार हो जाता है—

(1) भूतल पर रूप कमलिनी मिली नहीं।[5]

(2) अधोभाग को केशों की कोमल रजनी को,
अकलुष सस्मित शशिमुख के पीछे छिटकाकर।[6]

(3) काव्य की काव्यावली वाणाली
वेधतीं थीं मानवों के मर्म को।[7]

(4) हो समुत्कंठित प्रतीक्षा कर रही
अंक में ले जगतशिशु को फिर रही।[8]

(5) ज्योति मधुर लख जन खिंच आते, नयन शलभ मंडराते जाते।[9]

1- जानकी जीवन, पृ0 2/95
2- सत्यकाम, पृ0 13
3- निषादराज, पृ0 21
4- सत्यमेव जयते, पृ0 166
5- अरुण रामायण, बालकाण्ड, पृ0 14
6- सत्यकाम, पृ0 101
7-जानकीजीवन, पृ0 332
8- निषादराज, पृ0 30
9- सीतासमाधि, पृ0 6

(5) शैशव स्वाईं कहाँ
विकसित बालचन्द्र अब
पैजनियाँ रुनुन झुनन।[1]

उत्प्रेक्षा :—

जहाँ उपमेय में उपमान की संभावना की जाये। जैसे --

(1) सुनते ही सन्देश अवधपति, हुये प्रकम्पित गात।
शुष्क प्राण पादप ने पाया, मानो सुधा प्रपात।[2]

(2) दीना शोक विषाद कंटक फँसी, मीना समा उर्मिला।
होती थी हत चेतान वह कभी आती कभी चेतना।
मानो व्याकुल प्राण त्याग उसको पूज्याग्रयी पास हो
आते थे फिर लौट ज्येष्ठ भगनी या लोक लाज से।[3]

(3) भक्त तुलसी थी प्रेम मग्न हो सुनाते कथा,
जाता हुआ श्रोता फिर लौट-लौट आता है।
मानो तुलसी है मेघ मन्द मन्द घोषकर
विद्युत सा हँसता है, रस बरसाता है।[4]

(4) जिधर दृष्टि थी पड़ती उनकी
उधर वीर भू लुण्ठित होते
प्रलय सूर्य के प्रखर करों से
मानो थे वे कुण्ठित होते।[5]

(5) क्रिस्म मिशन सा तीर सुहावन, सिद्ध हुआ जलन्दस्यु-निलय था,
वरस रहा दुर्भाग्य मेंह था, मानो होने चला प्रलय था।[6]

1- कृष्णाम्बरी, पृ० 48
2- भगवान राम, पूर्व चरित, पृ० 94
3- जानकी जीवन, पृ० 2
4- उत्तरायण, पृ० 61
5- अश्वत्थामा, पृ० 12
6- सत्यमेव जयते, पृ० 266

अपन्हुति :— जहाँ प्रस्तुत का निषेधकर अप्रस्तुत की स्थापना की जाये।[1]

चेटिं चलीं चटकती कलियाँ नहीं खिलीं
छूटे महाप्रहार शायक पंचवाण के।
भागे बचो अब वियोगिनियों वियोगियो
फैले सुधांशु कर ग्राहक प्राणि प्राण के।[2]

सन्देह :-- प्रकृत में अप्रकृत के प्रति संशय को संदेह कहा गया है।[3]

(1) मायारूपी नियति छलना कीश के रूप आई,
किं वा भाग्योदय मम हुआ दूत स्वीस्वर्गीय आया।[4]

(2) था समुदित अपर सूर्यमण्डल विथकित खगोल
शत पर्व कुलिश की अथवा नभ में खचित धार
किंवा सुपर्ण उक्षिप्त नाग वह महाकार
या व्योम सिन्धु को स्वयं शेष ही महाकार।[5]

(3) दिखा रही हो रूप दिव्य अति, छवि सीकर में आत्मा उज्वल
या चातक के शुष्क कण्ठ को आई देने सुधा स्वाति फल।[6]

भ्रान्तिमान :—

सादृश्य के कारण प्रस्तुत वस्तु में अप्रस्तुत वस्तु के निश्चयात्मक ज्ञान को भ्रान्तिमान कहते हैं।[7]

(1) कहो कौन तुम नव प्रभात की सुन्दरता सी
नग्न निरावृत लिपटी सी सौन्दर्य क्षौम में
स्वर्गिक शोभा सृष्टि देख तुमको निर्जन में,
भूल गया हूँ मैं अपने को तन्मय तुममें।[8]

1- साहित्य दर्पण, पृ० 10/38
2- जानकी जीवन, पृ० 6/55
3- साहित्य दर्पण 10/35
4- भगवान राम, पृ० उद्योग, 3/181
5- रामदूत, पृ03
6- सीतासमाधि, पृ06
7-रामचरितमानस में अलंकार योजना, 110
8- सत्यकाम, पृ0 102

(2) तिमि, नक्र, कूर्म, झष, दंदशूक, भुजगादि प्रबल
मानकर गरुड़ कविवर को थे भय भीत विकल।[1]

(3) सजल जलद सा श्यामल तन
आर्य पुत्र का कोमलतम
देख भ्रांति से समझ इसे
सुन्दर घन जो जल बरसे
मोर नाचते मोद भरे।[2]

(4) दूसरे दिन सूर्योदय काल में
पूछेंगी परस्पर व्रजांगनाएँ कि किसका है रथ?
एकाएक तुम्हें मेरे ही वेश में देख
चकित चितवन फड़फड़ाएँगी पपनियाँ।[3]

अतिशयोक्ति :—

प्रस्तुत वस्तु को असाधारण रूप में बढ़ा-चढ़ाकर कहना अतिशयोक्ति कहलाता है --

(1) उस पर मरुतों के अश्वों की टापों की ध्वनि
झंझा मथित धूल धूसरित दारुण वन को
बधिर बनाती रहती भू की धुरी हिलाकर।[4]

(2) रुचिरता प्रियता इस चित्र की,
चरम चारु न चित्रित हो सकी।
चतुरता इतनी कवि में कहाँ,
चटक वाहक रंग न तरंग में।
× × × ×
कलितता कवि कोविद क्या कहे
ललितता लखाती ललचा रही।[5]

1- रामदूत, पृ० 5
2- निषादराज, पृ० 60
3- कृष्णाम्बरी, पृ० 120
4- सत्यकाम, जिज्ञासा, पृ० 10
5- जानकी जीवन, पृ० 164

(3) विक्षुब्ध महानागों से दंशित बार-बार
जल उठा तूल सा वह महेन्द्र पर्वत अपार।[1]

तुल्ययोगिता :—

जहाँ अनेक उपमेयों अथवा उपमानों काएक धर्म वर्णित हो —

(1) '---सीते! यह कुण्ड कुतूहल में
तुम्हें देख नारी बना ओढ हरा उत्तरीय
देखो हँसी फूट रही उसकी कमल में।[2]

(2) मद्‌वियोग में पूज्य पिता को
जल निष्कासित मछली के सम
होगी दशा विपन्न अतिशय
छिन्न मणि या मणिधर के सम।[3]

दीपक :—- जहाँ प्रस्तुत और अप्रस्तुत में एक ही धर्म या क्रिया का वर्णन हो —-

सीता वियोग दुख थी अब कष्टदायी
ऐसा नहीं कि जितना इस मृत्यु का है।[4]

दृष्टान्त :— जहाँ उपमेय उपमान तथा साधारण धर्म में प्रतिबिम्ब भाव हो --

(1) है अन्धकार का ही प्रसार, डूबे तरुओं के हैं समूह
जैसे समस्त इस जीव जगत को लीन किये हैं मोह व्यूह।[5]

(2) जैसे तटवर्ती तरुओं को नदियाँ ढहा देती हैं,
उसी भाँति दुर्नीति नृपों का सर्वनाश करती हैं।[6]

1- रामदूत, पृ02
2- उत्तरायण, पृ0 64
3- निषादराज, पृ0 42
4- भगवानराम, ऋष्यमूक खण्ड, पृ0 54
5- उत्तरायण, पृ0 108
6- रामदूत, पृ0 26

(3) जैसे प्रलय-मेघ जलवर्षा
से विनाश कमलों का रचता,
वैसे ही वह सेनानी था
रिपुओं पर शरवर्षा करता।[1]

(4) दृश्य दिव्य के अवलोकन में
गुह निमग्न था ऐसे,
ज्योति ब्रह्म के अवलोकन में
लीन मती हो जैसे।[2]

निदर्शना :--

जहाँ वस्तुओं का परस्पर सम्बन्ध सम्भव अथवा असम्भव होकर अर्थ की संगति के लिए आपस में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव का बोध करे, वहाँ निदर्शना अलंकार होता है।[3]

जुगनू इनको समझ नहीं तू, ये पूजा के दीप सुहाने।[4]

व्यतिरेक :— जहाँ उपमेय का उत्कर्ष या उपमान का अपकर्ष सकारण बताया जाये।

(1) कृष्ण कर्ण के श्वेत वर्ण हमने मरुतों का
वेग छीन जीता स्पर्धा पण! अद्भुत जब था।[5]

(2) आह शोभा की ऋचा ज्ञान की शुष्क ऋचा से
तुम महार्घ हो! दृष्टि मूर्त चेतना रूपसी।[6]

परिकरांकुर :— जहाँ विशेष्य का साभिप्राय प्रयोग हो। यथा --

अशोक नाम्नी वह शोकवाटिका।[7]

1-अश्वत्थामा, पृ० 12
2- निषादराज, पृ० 12
3- साहित्यदर्पण, पृ० 10/51
4- सीता समाधि, पृ० 167
5- सत्यकाम, पृ० 14
6- सत्यकाम, पृ० 103
7- जानकी जीवन, पृ० 2/85

__अर्थान्तरन्यास__ :— जहाँ सामान्य का विशेष से या विशेष का सामान्य से समर्थन किया जाये —

सुसाधनों का जग में अभाव क्या
असाध्य कोई शुभ साध्य है नहीं।
अड़ी खड़ी हैं करबद्ध सिद्धियाँ,
उन्हें सुधी साधक सिद्ध चाहिए।[1]

__विरोधाभास__ :— जहाँ दो वस्तुओं में वस्तुतः विरोध न हो पर उसका आभास हो —

(1) पशु स्तर पर हिंसक भी प्रेम अहिंसक लगता।[2]

(2) सुधा संजीवनी विष वेलि में थी।[3]

(3) थी कमल कुलिश साधना और भोगों से था निर्वाण प्राप्त।[4]

(4) मृगया में मृगियाँ लख मनहर
अखेटक क्यों होंगी त्रासित ?
सुन्दर हाथी मुक्त शरों से
मरने को होंगी लालायित।[5]

(5) अंगरेजों को वरदान स्वरूप अपनाकर,
या कालकूट के पान सदृश अपनाकर।
निश्चित भाव में डूबे भारतवासी,
इस भाँति नाव में डूबे भारतवासी।[6]

1- जानकीजीवन, पृ0 2/32

2- सत्यकाम, पृ0 79

3- जानकीजीवन, पृ0 294

4- उत्तरायण, पृ0 117

5- निषादराज, पृ0 25

6- सत्यमेव जयते, पृ0 36

परिसंख्या :—

जहाँ किसी वस्तु को सब स्थानों से हटाकर एक स्थान पर स्थापित किया जाये —

टेढी मेढी विरल टहनियों से बहुनिर्मित
चतुष्कोण । षटकोण त्रिकोण गवाक्षों में नव
दृश्य दूर का अंकित करते क्षितिज रेखा को।[1]

समुच्चय :—

जहाँ कार्य के एक साधक के साथ दूसरा साधक या एक साथ दो गुणों या क्रियाओं का वर्णन हो वहाँ समुच्चय अलंकार होता है।[2]

बोली सीता-सुत जो तुमने संदेश दिया
है अमृत और विष मैंने दोनों साथ पिया।[3]

प्रतीप :—

जहाँ उपमेय को उपमान या उपमान को उपमेय बना दिया जाय या उपमान की निन्दा की जाय वहाँ प्रतीप अलंकार होता है।

(1) दायीं ओर विराजमान उनकी छाया यथा माण्डवी।[4]

(2) देखो कुरंग जब जृम्भ सवेग लेता
नीलाभ युक्त मुक्त मुख निःसृत लोल जिह्वा
दीप्ता शिखा सदृश रचित दृष्टि आती
विद्युल्लता जलद की जिससे लजाती।[5]

(3) दृश्य चित्र बन गया उसी क्षण,
सारे ही उस रण आँगन में।
द्वेष कोप से रहित सभी थे,
शान्ति राजती सबके मन में।[6]

1- सत्यकाम, पृ0 95
2- साहित्यदर्पण, 10/84-85
3- रामदूत, पृ0 50
4- जानकीजीवन, पृ0 1/3
5- भगवान राम, पृ0 520
6- अश्वत्थामा, पृ0 20

(4) नववधू सी सज गई सारी पुरी
निम्न मुख सी देखा जिसको सुरपुरी।[1]

परिणाम :- किसी कार्य के करने में असमर्थ उपमान जहाँ उपमेय से अभिन्न रूप(एकरूप) होकर उस कार्य के करने को समर्थ होता है, वहाँ परिणाम अलंकार होता है।[2]

(1) देख यह कपोत कण्ठ बाहु बल्ली कर सरोज
छूट जाता धैर्य ऋषि मुनियों का।[3]

(2) शुभ्रपीत पुष्पों से चंपक तन की शोभा
जब सँवार कर मैं निकला करती वन पथ पर
ध्यान भंग हो जाता ऋषि मुनियों का सहसा।[4]

पर्यायोक्त अलंकार :-- अभीष्ट अर्थ का भंग्यन्तर से कथन किये जाने के पर्यायोक्त अलंकार कहते हैं।[5]

सुस्पष्ट वन्धु कहना उस भ्रष्ट धी से
निर्वाध मार्ग अब भी उस देश का है।
नाराच से नित बालि जहाँ गया है,
क्या बालि से मिलन इष्ट उसे हुआ है।[6]

मुद्रालंकार - जहाँ काव्य शास्त्रीय अनेक पारिभाषिक शब्द आ जायें वहाँ मुद्रालंकार होताहै--

(1) कल्पनाएँ भी न थीं वक्रोक्तियाँ
पूर्णिमा के पूर्ण ध्वन्यालोक में।
सारगर्भी सत्य यथा तथ्य से
भासता वाच्यार्थ ही व्यंग्यार्थ सा।[7]

(1) उमड़ने लगी भीड़
कोलाहल करुण करुण
करुण सागर में कभी कभी
रौद्र वीर लहर
कभी सन्नाटा शान्त रस का
कभी श्रृंगार सबल स्मृति उमंग।[8]

1- निषादराज, पृ0 36
2- सेठ कन्हैयालाल पोद्दार, संक्षिप्त अलंकारमंजरी, पृ0 78
3- जानकीजीवन, पृ0 225
4- सत्यकाम, जाबाला, पृ0 28
5- सेठकन्हैयालाल, सं0अ0मं0 149
6- भगवानराम, अध्या0 6/592
7- जानकी जीवन पृ. 323
8- कृष्णाम्बरी पृ. 96

काव्य रस स्निग्ध, भावमूलक होने से उत्तम वस्तु है किन्तु वह भाषा के द्वारा ही उत्कृष्ट एवं सौन्दर्य सम्पन्न हो सकता है। दूसरे शब्दों में कलात्मक, कल्पनात्मक, भावात्मक भाषा ही काव्य का प्रायोगिक अस्त्र है। कविता का प्राण भाव अवश्य है किन्तु उसकी कलात्मकता, आकर्षण सम्पन्नता, प्रभविष्णुता उसके भावगाम्भीर्य की शक्ति तथा संप्रेषणीयता भाषा द्वारा ही सिद्ध होती है।

सप्तम दशकोत्तर हिन्दी महाकाव्यों में कलात्मक एवं परिनिष्ठित खड़ीबोली प्रयुक्त हुई है जिसका शब्द भाण्डार संस्कृत के अक्षम बोध से समृद्ध हुआ है। संस्कृत के प्रति अतिशय आग्रह के कारण कुछ काव्यों मेंइस प्रकार के शब्द भी प्रयुक्त हुये है जो हिन्दी के लिए अपरचित एवं क्लिष्ट हैं। यथा --

रुज, अध्वर्यु, उत्क्षत, आश्वस्थ(रामावतार पोद्दार) समितिपाणि, मातरिश्व, सवितृ, तिग्म, शिंशिपा, खदिर, बिल्व, चूकों, श्येनो, दृषद्वती, रेभा, कृच्छ्र, स्तिमित, श्लक्ष्ण, दंष्ट्र, तडिल्लिप, (सुमित्रानंदन पंत) जह्नु, फूत्कार, अकुलाकिलात, (डा0 राम कुमार वर्मा), चिज्जोतिर्घन, विशंकित, बालधी, व्यादान, महाजव, प्रस्रवणों, चमीकर, गंधोत्कर, अभ्रलिह, समुद्घुष्ट, (कुंवर चन्द्रप्रकाश सिंह), वितर, काकुत्स्थ, न्याग्रोध, प्राशूदक, (डा0रत्नचन्द्र शर्मा)।

कहीं दीर्घ समासान्त पद यथा — कल्पना-स्वर्ग-सोपान, पुष्पपुष्पित-चिहुंकती-छिटकती-विद्युत-मुस्कान, शीत कम्पितव्यथा व्यंजित सिसिआहट, उद्यान-निकुंज कलागृह, (रामावतार पोद्दार) तृण-शष्प रचित शय्या, भावोद्वेलित नव आषाढ़ के मेघों सी, कृष्ण-गुहापीनगौरस्तन, प्राणोज्ज्वल सौन्दर्य, (पंत), चिबुक कूप, मृत्तिका-क्षीण-काय, रविरश्मिरेखा (डा0रामकुमार वर्मा), अघटित-घटना-निर्वहण दक्ष, साजोल-लक्ष्य सिद्धाहित, मैं आतुर, आशीविष-श्वसित रक्षसों, त्रिस्थानस्वर भूषित, शत-ग्राह-तिमिंगल-भरी, (कुंवर चन्द्रप्रकाश सिंह) कविकुल कर्णकुहर, रक्ताम्बर-धर-दिनकर, राघवदीर्घ भुजा परिवेष्टित, तरुण-तमाल-शाखा परिवेष्टित, कष्ट सागर-संतरण (डा0रत्न चन्द्र शर्मा)।

तो कही सन्धि समास युक्त शब्दों का प्रयोग हुआ है - इन्द्रहारात्, शिशकिल्पमस्तु, भुजीथाः त्यक्तेन मूर्छा चूर्णाकुला दिवाकर लिंगित, कृपाकटाक्षाप्लुत, तीक्ष्णातितीक्ष्ण, (राजाराम शुक्ल) आशाकिक्षा, शोभाकांक्षाओं, प्राणिक, करामलकवत् कर्तुमकर्तुम्(पंत), गीताच्छादि, दिग्मण्डलछोर, वस्तुकाम, इदं नमम (डा0रत्नचन्द्र शर्मा), तपः रज्जुआवेष्टित, क्षमा वीरस्य भूषणम्, अन्तिमेत्थम्, करबद्ध-मुक्ति, आदेश, अनशन-यज्ञ-ज्वाल धधकार(रविशंकरमिश्र)

वैसे आलोच्य महाकाव्यों के अधिकांश स्थलों में तत्सम शब्दावली प्रयुक्त हुई है जिसमें सरलता, ओजलता, अभिव्यक्ति की सशक्तता सर्वत्र दिखायी देती है। सामान्य बोलचाल की भाषा में प्रचलित देशज एवं विदेशी शब्द भी आये हैं। जैसे —

चाटने, गड़ जाऊँ, अंट-संट, खरीदा, अटारी, चमक, जगह, जादू, चीजें, मुर्दा, सितारे, (रामावतार पोद्दार) छहरे, छूछी, कुँई, खोसि, टुकुर-टुकुर, लप-लप, निवट, पहिले, (पंत), चुकी, सुधि, इत्ती, पंडिताई, सटीक, मनमाना, छिन-छिन, लील-लील, लयौ, भरौ, (डा०रामकुमार वर्मा), झड, झड़, चड़, चड़, पड़, पड़, कड़, कड़, हड़, हड़, '(कुंवर चन्द्र प्रकाश सिंह,), नौवत, सैर, ठेला, बन्दरिया, लग्गी, नौकर-चाकर, चुँधियाती, डगर, जूड़ी, काका, चीं चीं, विधना, झाँक-चूँक, हहर-हहर, (डा०रत्नचन्द्र शर्मा), अगाड़ी, विसर, महतारी, खरहा, विजुली, सुधि, सुमर, सुरग, डिगरी, हल्ला-गुल्ला, दकियानूसी, कन-कन (राजेश्वरी अग्रवाल), रौलट-ऐक्ट, डगर, जुदा मजहबी, दौलत, म्युनिस्पैलटी, हरदम, याक्सा, जज्बा, डिक्टेटर, कल्चर, शहादत, कुर्बानी (रवि शंकर मिश्र) आदि।

पृथक पृथक रूप से प्रत्येक महाकाव्य की भाषा एवं शब्द सम्पदा का संक्षेप में विवेचन इस प्रकार है —

भगवान राम

श्री मनबोधन लाल श्रीवास्तव द्वारा प्रणीत 'भगवान राम' में तत्सम प्रधान खड़ी बोली का प्रयोग किया गया है। प्रयास यह किया गया है कि शब्द शुद्ध तत्सम हों ---

(1) अट्टालिका पर उन्नत आलयों के
वातोर्मि संचालित दिव्य ध्वजावली थी।
वैचित्र्यपूर्ण रचना भवनों गृहों की
विज्ञप्ति थी विशद वास्तुकलाविदों की।[1]

(2) अध्यात्म ज्योति जनमानस की प्रभा थी
निष्णात विप्रवर वेद षडंग के थे।

1- भगवान राम, बालकाण्ड, पृ0 6

यज्ञीय कर्मरत सात्त्विक थे सहस्त्रों सत्यवृती सुकृती साधक थे निवासी।[1]

संस्कृत वर्णवृत्तों के प्रयोग के कारण भाषा कहीं-कहीं अस्वाभाविक एवं क्लिष्ट हो गयी है-

नामरूपात्मक प्रदर्शन की अचिन्त्य विभिन्नता
पिण्डमय ब्रह्माण्ड की सविकल्प कृति विच्छिन्नता।
अति विचित्र महामहिम व्यक्तिकरण गुणप्रकृति का,
ब्रह्म की है योगमाया विविध रूप प्रकाशिका।[2]

फिर भी मनोभावों एवं परिस्थितियों का चित्रण बडी सजीव भाषा में किया गया है।

(1) मुनि तड़प रहा था वाण से विद्ध मेरे
इत उत कच फैले धूर्जटा जूट के थे।
जल कलश पड़ा था भूमि थी वारि भीगी
तन रुधिर सना था लोटता यंत्रणा से।[3]

(2) ज्वालाओं का वमन कपि लाँगूल से हो रहा था
उल्का संघट्टन अलगा तब होने दिशा में।
प्रासादों के शिखर पर जा एक से दूसरे में
तेजस्वी मारुत सुत लगे अग्नि का दान देने।[4]

जानकी जीवन

जानकी जीवन की भाषा खड़ी बोली का संस्कृतनिष्ठ रूप दिखायी देता है। संधिज शब्दों के साथ दीर्घ समासान्त पदों के कारण यत्र-तत्र भाषा क्लिष्ट भी हो गयी है।

(1) कृपा कटाक्षाप्लुत राम दृष्टि से
× × × ×
दिवाकरालिंगित पाद पुंज ज्यों।[5]

(2) प्रवहिता हो सुप्रवाह संग ज्यों
तरंगिणी वारिधि वारि वीचियाँ।[6]

1- भगवान राम, पृ07 (पृ०)
2- वही, पृ077
3- वही, तपोवनविहार, पृ0173
4- वही, पृ0 167
5- जानकीजीवन, पृ0 1/59
6- वही, 2/4

शब्द चमत्कार उत्पन्न करने के लिए एक ही शब्द को तोड़कर कई बार प्रयुक्त किया गया है—

सुउर्मिमाली भर उर्मिमालिका उमंगिनी उर्मिल उर्मिला मिली,
कृतज्ञता से दृगकान्त के सुमीन सेवानत वारिस्नान थे।[1]

राजाराम शुक्ल के प्रियप्रवास की तरह भाषा में संस्कृतनिष्ठता अपनाई है। इससे भाषा में वर्णनात्मकता एवं रूक्षता आई है —

बाँधा गया रुचिर रेशम रश्मियों से,
उमंगिनी उर्मिल उर्मिला मिली।
जाज्वल्यमान रवि के करके शरों से
हो अस्त व्यस्त परिध्वस्त समस्त मनो।[2]

श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जिस शास्त्रानुमोदित भाषा का रूप प्रचलित किया था, 'जानकी जीवन' में वही रूप प्रयुक्त है। विशेष्य के लिंग वचन के अनुसार विशेषण का प्रयोग दूसरी विशेषता है। भाषा ओज प्रसाद गुण समन्वित है। शब्द प्रयोग की दृष्टि से राजाराम शुक्ल द्विवेदी युगीन कवि हैं —

(1) श्रद्धा सत्पथगामिनी सुनयनी सन्मार्ग सदर्शिनी
कल्याणी उपकारिणी प्रणयनी साध्वी सदाचारिणी।
समज्ञा भ्रमवारिणी विहरणी मन्या मनोहारिणी,
संकल्प प्रचारणी विचरणी सौहार्द संचारिणी।[3]

(2) मज्जा निमज्जिता सुसज्जिताति चण्डिका
धारे हुये विशाल वीर मुण्डमालिका।
कल्लोल बोल बोलती प्रफुल्ल गाँव के
आहार माँस पेय रक्त शीर्ष पाव दे।[4]

1-जानकी जीवन, पृ0 2/100
2- वही, पृ0 1/14
3- वही, 3/39
4- वही, 19/99

उत्तरायण

डा0 रामकुमार वर्मा द्वारा रचित उत्तरायण महाकाव्य शुद्ध खड़ीबोली में लिखा गया है किन्तु कहीं-कहीं अवधी भाषा का पुट आ गया है —

संसार अपार पार को
सुगम रूप नौका लयौ
कलिकुटिल जीव विस्तार हित
वाल्मीकि तुलसी भयौ।[1]

कहीं पर लील, लील, इत्ती, सुधि, छिन, छिन जैसे बोलचाल की भाषा के शब्द आ गये हैं —

फिर एक चक्र है घूम रहा
उस नीलेपन को लील-लील
आती है धूमिलकिरण। कहीं से
चक्र बिखरता फैल फैल।[2]

कहीं पर मधुर उत्प्रेक्षा युक्त अनुप्रास की झंकार से महाकाव्य में मधुर ध्वनि गुंजरित होने लगी है। यह कोमल शब्दावली दृष्टव्य है —

चातक चकोर चक्क शुक पिक एक एक
बोलते थे मानो स्वर युक्त छन्द साम थे।
जैसे पुष्प में सुगन्धि जैसे फल मध्य स्वाद
ऐसे मुनि मण्डली के बीच प्रभु राम थे।[3]

कुछ स्थलों में अन्य ग्रन्थों से उक्तियाँ ग्रहण की गयी है —

(1) ईशावास्यमिदं सर्वम् ' यहाँ त्याग अनुराग है।[4]

(2) हैं नहीं कुम्हड़बतियाँ कि तर्जनी देखीं।[5]

(3) फिर रोष हुआ मेरे मन में मुख से निकला महाशाप।

1- उत्तरायण, पृ0 112
2- वही, पृ0 110
3- वही, पृ0 63
4- वही, पृ0 53
5- वही, पृ078

'मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वती समाः
यत्क्रौंच मिथुनादेकमवधीः काममोहितम्।'
मेरे करूणा संसिक्त वाक्य में उभरा था ध्वनिपूर्ण छन्द।[1]

लम्बे समास वाले पद इसमें भी दृष्टिगोचर होते हैं —

हो गया प्रभात रवि-रश्मि-रेख पूर्व में
लिखती है बादलों के पृष्ठ पर छन्द को।[2]

इस प्रकार उत्तरायण की भाषा सशक्त, मधुर, परिनिष्ठित एवं शुद्ध खड़ीबोली है।

'अरूण रामायण'

पोद्दार रामावतार 'अरूण' द्वारा प्रणीत 'अरूण रामायण' में व्याकरण सम्मत शुद्ध खड़ी बोली का प्रयोग हुआ है जिसमें तत्सम शब्दों के साथ यत्र-तत्र अर्धतत्सम उर्दू-फारसी के शब्द प्रयुक्त हैं। अरूण रामायण में समास बहुल पदावली अधिक प्रयुक्त है।

मिलनातुर पग गति-तीव्र तीव्रतर वन पथ पर
गुरु-माता-दर्शन हेतु विकल रघुकुल दिनकर।[3]

ध्वन्यात्मक शब्दों के प्रयोग से काव्य में एक विशेष प्रकार का प्रवाह उत्पन्न हो गया है- सन-सनन्, तड़तड़ाहट, चिट-चिट, झन-झिन, फन-फन, रण, रणन, खट, खप्प-धप्प आदि शब्द हैं।

(1) सन सनन्, तड़तड़ाहट, चटाचिट, चट झन झिन, झन्।
फन फन फन भन भन भनन झनन झा झिक झिक झिक सन्।[4]

(2) घट-खट, खट, चट-चट-चट-चट, खप्प, थप्प, खप, शस्त्र रोर
धम, धम धम धाम धाम रण रण ध्वनि बहुत जोर।[5]

इस प्रकार के शब्दों ने वातावरण को बहुत अधिक अनुकूल बनाया है --

चंचल विद्युत सा चकमक चकमक चक त्रिशूल
रण प्रांगण में हर ओर लाल शोणित दुकूल
धक्कम धक्का मुक्का लटपड़-थप्पड़ सशक्त।[6]

1- उत्तरायण, पृ012।
2- वही, पृ0 50
3- अरूणरामयण, अयोध्याकाण्ड, पृ0295
4- अरूण रामायण, अयो0,528
5- वही, 53।
6- वही, 569

कहीं कहीं तत्सम प्रधान स्तोत्र पद्धति भी मिलती है —

> हे रौद्रमुखी हे कालरात्रि क्रूरा सुन्दरि
>
> हे परमपुरुष की अभया महाप्रकृति सहचर।[1]

भावानुसार शब्दों के प्रयोग का लाघव अरुण रामायण की विशेषता है —

> लौकिकता-निकट अलौकिकता अधिकाई सी
>
> सच्चाई अब दृग के समक्ष सपनाई सी।
>
> आनन्द लता अब अंगों पर लतराई सी,
>
> उनकी आभा अब इन आँखों में धाई सी।[2]

सारांश यह है कि पोद्दार जी की 'अरुण रामायण' में प्रयुक्त भाषा धनी है। उनकी भाषा में रसानुकूल कोमलता, भावानुकूल ऋजुता, प्रयोगानुकूल सारल्य है। वह उक्ति वैचित्र्य से सुसज्जित वक्रोक्ति से युक्त एवं प्रयोग वैलक्षण्य से सुसम्पन्न है। लाक्षणिकता एवं चित्रात्मकता इसके विशेष गुण हैं।

कृष्णाम्बरी

कृष्णाम्बरी की भाषा संस्कृतनिष्ठ खड़ीबोली है। विशेषतः 'अरुणरामायण' की तरह ही इसमें प्रवाह, माधुर्य, गुरु गाम्भीर्य अर्थयुक्त, एवं बोधगम्य है। कहीं-कहीं ध्वनि की व्यंजना झंकृत हो रही है। रासलीला के समय बाजों एवं पायलों की झंकार सुनिए —

> प्रारम्भ वसन्तोत्सव
>
> ध धप-धप-धप धा,
>
> धिन-धिन-धन्तत् तधा-तधा-धा
>
> झन-झिन् झन-झिन, झनन-झनन-झिन
>
> झा-झा-झा-झिन
>
> झन क्वणन-रणन-क्वण-रणन-क्वणन-रण

1- अरुणरामयण, पृ० 560

2- वही, पृ० 68

रणन्क्वण, क्वण-रण, रिणिन-रिणिन-रण

रुनझुन-रुनझुन, झुनुन्झुनन-झुन।[1]

कहीं-कहीं प्रसंगानुकूल ध्वनि कठोर शब्दावली भी प्रस्फुटित हुई है।

प्रज्वलित यमुना धधकती लाली से।

चतुर्दिक धू-धू-धू, चट-चट-चट

पट-पट-खट, छिट-छिट-छिट-खट

तड-तड, कड-कड, चट

चारों ओर लपट-लपट-लपट।

ध्वनि के साथ उक्तिवैचित्र्य भी श्लाघनीय है —

(1) भगवान जिसे देता है

छप्पर फाड़ कर देता है।[2]

(2) बीता हुआ कल फिर वापस नहीं आता

छोड़ी हुई साँस फिर लौटती नहीं।[3]

(3) किन्तु विनाश काल में बुद्धि भी विपरीत

विपरीत बुद्धि ही विनाश का कारण।[4]

'सत्यकाम'

प्रस्तुत महाकाव्य की भाषा प्रौढ़ एवं संस्कृतनिष्ठ है। गुरु गाम्भीर्य अर्थ के साथ-साथ भाषा भी अत्यन्त जटिल हो गयी है किन्तु सौन्दर्यमयी एवं परिनिष्ठित भाषा का प्रयोग इसमें हुआ है। कहीं-कहीं लोकोक्तियाँ भी प्रवाह उत्पन्न कर रही है —

(1) छीन नहीं सकते ब्रह्मा भी तुमसे प्रिय अधि[5]

(2) कर्दम में कीडे भी होते हैं और कमल भी।[6]

और कहीं पर प्रसंग वश भाषा हल्की फुल्की दृष्टिगोचर होती है —

1- कृष्णाम्बरी, पृ0 73

2- कृष्णाम्बरी, पृ0 39-40

3- वही, पृ0 137

4- वही, पृ0 178

5- सत्यकाम, पृ0 120

6- सत्यकाम, पृ0 27

शिष्यवर्ग में! कहा दूसरे ने क्या यह भी
ज्ञान नहीं तुमको कि ब्रह्मविद्या पाने का
अधिकारी केवल ब्राह्मण होता है।... जाओ।[1]

अत्यन्त लघु प्राकृतिक वर्णनों में भी भाषा गुरु गाम्भीर्ययुक्त रही है --

(1) ब्रह्ममुहूर्त! जगा तृण शष्प रचित शय्या पर
सत्यकाम आन्हिक कर्मों से निवट यथाविधि
देखा उसने वधू उषा झीने तमिस्र का
अवगुण्ठन अब उठा रही अर्धस्मित मुख से
एक सुनहली श्लक्ष्ण रेख पहिले प्रकाश की
अंकित करती अंतरिक्ष में विजय ज्योति की।[2]

कहीं कहीं भाषा इतनी क्लिष्ट हो गयी है कि बिना बौद्धिक परिश्रम के अर्थ भी नहीं निकल पाता --

प्राणों की आशाऽऽकांक्षा के हरित लोक में
बीज निहित था भावी मान जीवनन्दर्शन के
निखिल वर्जनाएँ, निषेध सांप्रत स्थिति द्योतक
समदिग्गामी प्राण शक्ति यह नहीं अधोमुख
ऊर्ध्व अधः में हमें संतुलन भरकर इसको।
समतल रस स्तर पर संचालित करना होगा।[3]

सामान्य वर्णन में भाषा का स्तर भी सामान्य रहा है --

हा, हा, हा, हा, लहर हँसी की दौड़ी उच्छल।[4]

इस प्रकार पंत जी ने सत्यकाम में संस्कृतनिष्ठ परिनिष्ठित भाषा का प्रयोग किया है।

1- सत्यकाम, पृ0 15
2- वही पृ0 73
3- वही, पृ0 85
4- वही, पृ0 15

रामदूत

महाकाव्य का अधिकांश भाग ओजगुण से प्लावित है अतः भाषा भी ओजमयी है जिसके कारण कहीं-कहीं किसी शब्द को कई बार प्रयुक्त किया गया है —

पड़े दिखाई कुल्याओं को दिश-दिश लक्ष-लक्ष हनुमान
देखा सबने नभ मण्डल में गर्जित हैं अगणित हनुमान
धरा विवर से पड़े दिखाई निकल रहे अगणित हनुमान।

× × × ×

व्योम में थे हनुमान, रसातल
से हनुमान ही आ रहे थे।
पूर्व में, दक्षिण , पश्चिम में उत्तर,
में हनुमान ही छा रहे थे।[1]

ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रवाह दर्शनीय है --

पदाघात से टूट रहे थे तड तड तड तड शाल विशाल
झड, झड, झड, झड, झड, गिरते थे ताल तमाल और हिंताल
चड, चड, चड, चड उखड रहे थे शत्-शत पादप पुंज समूल
पड, पड, पड, पड, गगन वेग से विदलित पत्रराजि फल फूल।
कड, कड, कड, कड अशनि पात सा उत्थित होता था घनघोर।
हड, हड, हड, हड, हड बहता था प्रलय प्रभंजन चारों ओर।[2]

कहीं-कहीं उक्तियाँ अपनी वैचित्र्यमयी छटा लिए भाषा को सुष्ठुता प्रदान कर रही है --

(1) कब मिलता है पर ज्ञान किसी को पाहुनवन।[3]

(2) पुरोडास का भाग कभी क्या रासभ ने पाया है,
खद्योतों को देख खिली क्या नलिनी की काया है?
केशरणी का दृष्टिपात भी क्या श्रृंगाल सह पाता ?
घनश्याम को छोड़ कौन है घनबल्ली को भाता?[4]

1-रामदूत, पृ0 63
2- रामदूत, पृ0 50
2- वही, पृ0 175
4- वही, पृ0 138

वैसे महाकाव्य का सम्पूर्ण भाग भाषा की दृष्टि से गुरु गाम्भीर्य है। प्रसंगानुकूल भाषा अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है। कवि का चित्त जब रावण के स्त्रीगृह में जाता है तब उसे वहाँ का वातावरण प्रभावित किये बिना नहीं रहता। अतः श्रृंगार के उपयुक्त अत्यन्त सरस भाषा का प्रयोग स्वाभाविक ही है।

नूपुर शिंजिन किंकिणी क्वणन मंजीर रणन,
वलयों का मधु स्वन गुंजित था पद-पद क्षण-क्षण।
वाणी की वीणाओं से झंकृत स्वरित सतत,
वह हर्म्य काम के सिद्धपीठ सा था अविरत।[1]

संस्कृतनिष्ठ, परिनिष्ठित भाषा महाकाव्य की विशेषता है —

तिमिंगलों से तैर रहे थे अनंतता में अगणित तारे
हिरण्यक्ष शिशुमार-चक्र सप्तर्षि आदि बहते पथहारे।
सर्वनाल वीणा, खगेश हयशिरा, त्रिशंकु अगस्त, पुलोमा।
थे प्रकाश की आवर्तों की सृति सर्जित करते निःसीमा।[2]

'निषादराज'

प्रस्तुत महाकाव्य में शुद्ध खड़ीबोली का प्रयोग किया गया है। प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग महाकाव्य की विशेषता है। युद्धादि प्रसंगों पर ओजपूर्ण भाषा का प्रयोग हुआ है—

आज पाट दूँगा पृथ्वी को
भरत सैनिकों के रुण्डों से
किलक-किलक काली देवी
आज सजेगी नर मुण्डों से।[3]

सरस वर्णनों में भाषा का लालित्य प्रवहमान हुआ है —

देखा उस कोमल वल्ली को
पुष्प विभूषित मृदु लल्ली को

1- रामदूत, पृ0 14

2- वही, पृ0 99

3- निषादराज, पृ0 98

झूम रही कर वृक्षालिंगन

मदामोद युत पादप का मन

दोनों आलिंगित हैं सुख से

दिव्य प्रेम से भरे विलसते

बुलबुल का जोड़ा भी इन पर बैठा कलरव करता।

इनको देखनके किसका मन है सुख में विचरण करता।[1]

निम्नांकित पंक्तियों में लोकोक्तियों का प्रयोग हुआ है —

(1) सोचो अन्य उपाय कि जो रघुवर को भाये

सांप मरे सुख पूर्व और लाठी रह जाये।[2]

(2) बिन शासक के शासन कैसे चल सकता है?

बिन अंकुश के द्विरद न वश में रह सकता है।[3]

(3) भरत न तुम बिन इसे उठा है कोई सकता

क्षिति बिन कौन उठायेगे पर्वत की माला?[4]

कहीं कहीं अनुप्रास की छटा कमनीय हो उठी है —

(1) दिनकर-कर संस्पर्श-उल्लसित

भू का मन खिल-खिल सा पड़ता

प्रिय का पा कर आस्फालन

प्रिया हृदय सोल्लास मचलता।[5]

(2) देव मूर्ति सम पूजित अर्चित

स्नेह-सुधा-रस-सरसी।[6]

कहीं प्रसंगानुकूल भाषा में झंझा सा उपस्थित हो गया है और वह ध्वनिमयी हो गयी है—

खिल खिल करती अट्टहास थीं

इठलाती थी झूम झपकती,

झिलमिल करते मुकुट पहनकर

जगती भर को तुच्छ समझती।[7]

1-निषादराज, पृ066 2— वही, पृ0 140, 3— वही, पृ0141 4—वही, पृ0142

5-वही, पृ0 73 6— वही, पृ0 145 7— निषादराज, पृ0 83

डा0 रत्नचन्द्र शर्मा प्रणीत दोनों महाकाव्यों — 'निषादराज' एवं 'अश्वत्थामा' में 'औ' शब्द का प्रयोग जगह-जगह पर हुआ है।

'अश्वत्थामा'

'निषादराज' की तरह ही 'अश्वत्थामा' में भी उसी प्रकार की भाषा प्रयुक्त हुई है किन्तु यह महाकाव्य वीर काव्य है जिससे भाषा ओज पूर्ण एवं सशक्त हो गयी है —

कोप भरे तब अश्वत्थामा
ने सन्धाना अग्नि महाशर
फेंक उसे औ' सब शिविरों में
आग लगा दी चट्-चट्-तड़-तड़।
धू-धू कर जल उठे शिविर सब
जली सभी सामग्री उनकी
रहे सहे सब जीव जल गये
आभा नष्ट हुई उन सबकी।[1]

ध्वन्यात्मक शब्दों का विन्यास भी अतीव सुन्दर बन पड़ा है —

(1) तरु-शाखाओं पर पक्षी वे टी-टी, टू-टू करते
फुदक फुदक कर इधर उधर औ' प्रकट भाव वे करते।[2]

(2) क्षण कुछ फड फड थी पंखों की
का का चीं चीं, का-का
फिर सब शान्त हुआ उस तरु पर
जैसे कुछ भी न था।[3]

अनुप्रास की छटा भी कम कमनीय नहीं है —

नभ उड़ती क्रौंच पंक्ति की
कांची पहनी उस ने
जिसका स्वर था लगा गूँजने
कवि-कुल-कर्ण-कुहर में।[4]

1- अश्वत्थामा, पृ0 103 2- अश्वत्थामा, पृ0 87 3-अश्वत्थामा, पृ0 95

4-वही, पृ0 92

एवं उक्तिवैचित्र्य भी अपने में परिपूर्ण है --

(1) नीच मनुज है नीचकर्म ही
सदा जगत में करता,
इसीलिए वह निंदित होकर
ही है जग में मरता।[1]

(2) विजय-कामना भूप आपकी
पूरी वह कर सकता,
स्वयं जलद ही सूखी भू की
मिटा तृषा है सकता।[2]

'सीता समाधि'

श्रीमती राजेश्वरी अग्रवाल द्वारा प्रणीत 'सीता समाधि' में शुद्ध खड़ी बोली का प्रयोग हुआ है। भाषा अत्यन्त सरस बोधगम्य एवं प्रसंगानुकूल है। इन्होंने कहीं कहीं अन्य महाकाव्यों की तरह उक्तिवैचित्र्य से भाषा को प्रवाहमय बनाया है --

(1) सुख के हैं सब साथी जग में उड़ते जग में जैसे मधुकर।[3]

(2) व्यर्थ हुये समझाने सारे भूत उतरता कब बिन मारे।[4]

(3) मुख में राम बगल में छूरी, बचनकर्म की बढ़ती दूरी।[5]

कहीं अनुप्रास की छटा अत्यन्त मोहक बन गयी है --

(1) दिश दूसरी से भर भर कर, बहता सिन्धु उमंग भर भर।[6]

(2) आई जान-जान में जीवित जान जानकी को धरती पर।[7]

(3) उर रह रह कर भर भर आता, नीरनयन के झर झर आता।[8]

यत्र-तत्र ग्राम्य एवं विदेशी तथा देशज शब्द भी आ गये हैं :--

1- अश्वत्थामा, पृ0 22
2- अश्वत्थामा, पृ0 36
3- सीतासमाधि, पृ0 71
4- सीतासमाधि, पृ0 132
5- वही, पृ0 258
6- वही, पृ0 115
7- वही, पृ0 152
8- वही, पृ0 187

(1) बनकर राहु न रवि पर छाऊँ, कन-कन माटी में बिछ जाऊँ।[1]

(2) डिगरी पदवी सीना जोरी, मिलता सब कुछ रिश्वत चोरी।[2]

इन सबके होते हुए भाषा की मृदुलता दर्शनीय है —

किसलय दल-सी मृदुल मनोहर, तुहिन कनी सी झिलमिल विह्वल।
छेल बही ममता नयनों में निधि उर की अति अनुपम ~~निर्मल~~ निर्मल।
देख-देख नृप सुषमा सुन्दर, हर्ष हृदय में नाहि पाते भर।[3]

'सत्यमेव जयते'

प्रस्तुत महाकाव्य की भाषा खड़ी बोली है किन्तु सम्पूर्ण महाकाव्य भारतवर्ष के प्रत्येक वर्ग से सम्बन्धित है एवं इसमें झोपड़ियों से लेकर भव्य महलों तक का वर्णन है। इतः इस काव्य में अंग्रेजी, उर्दू एवं अन्य भाषाओं के शब्द आ गये हैं। उक्तियों का प्रयोग इसमें भी अधिक हुआ है —

(1) यह जुआ उतारेंगे कैसे कन्धों से,
कब हुआ देश का भला स्वार्थ अन्धों से।[4]

(2) हा हा रव करते वे आसन त्याग चले
जहाँ समाया सींग वहीं सब भाग चले।[5]

प्रवाह को और अधिक गतिमान करने के लिए रवि शंकर जी किसी वाक्य या शब्द को कई बार दोहराते चलते हैं —

(1) खेतों में खलिहानों में चौपालों में गलियारों में
एक बात थी एक माँग थी रौलट एक्ट रद्द कर दो,
एक लगी हर ओर आग थी रौलट एक्ट रद्द कर दो
हर मस्जिद आवाज दे उठी रौलट एक्ट रद्द कर दो
हर मन्दिर आह्वान कर उठा रौलट एक्ट रद्द कर दो।[6]

1- सीतासमाधि, पृ0 229
2- वही, पृ0 272
3- वही, पृ0 17
4- सत्यमेव जयते, पृ0 39
5- वही, पृ0 149
6- वही, पृ0 71

(2) सत्यमेव जयते – रव उमड़ा आह्लादित हृदयों से

सत्यमेव जयते– स्वर गूँजा उन्मादित कंठों से

सत्यमेव जयते क्षिति बोली विजय समाहित स्वर में

सत्यमेव जयते लिल्वा चिल्लाया अम्बर प्रति उत्तर में।[1]

और कहीं सन्धि समासयुक्त भाषा का प्रयोग किया है —

सत्याग्रह मंत्रों का पुनराभ्यास किया

रण-उद्यत हो देशमुक्ति हित कटक बढ़ा

तन मन जीवन-सौख्य मोह को झटक बढ़ा।

चले गांधी आगे कर्म-ध्वजा लेकर

सविनय आज्ञा-भंग-व्यूह की रचनाकर।[2]

इस प्रकार सत्यमेव जयते की भाषा प्रसंगानुकूल, परिमार्जित, सरस, मधुर एवं बोधगम्य है।

1- सत्यमेव जयते, पृ0 416

2- वही, पृ0 162

गुण

जिस प्रकार आत्मा की महत्ता प्रकट करने के लिए शारीरिक गुणों, त्याग वीरता उदारता की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार श्रेष्ठ काव्य के लिए रस रूप आत्मा के होते हुये उसको व्यक्त करने वाले शब्दों में भी गुण का होना अपेक्षित है। गुणों से युक्त होने पर काव्य की सरसता में वृद्धि अवश्यम्भावी है। मम्मट एवं विश्वनाथ आचार्यों ने तीन गुण मानें हैं —

(1) माधुर्य गुण

(2) ओज गुण

(3) प्रसाद गुण

माधुर्य गुण :—

जहाँ किसी गुण के प्रभाव से चित्त आनन्द से द्रवित हो जाये अथवा जहाँ किसी काव्य में कर्ण प्रिय सानुनासिक शब्दावली एवं यथा सम्भव संगीतात्मकता हो वहाँ माधुर्य गुण होता है। श्रृंगार करुण व शान्त रस में माधुर्य गुण उत्कर्षवर्धक माना गया है। आलोच्य महाकाव्यों में पुष्पवाटिका प्रसंग, राम सीता सौन्दर्य वर्णन, राम वन गमन, सीता वियोग, अनेक स्तुतियों एवं उपदेश परक अंशों में इस गुण का सन्निवेश दिखायी पड़ता है। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

(1) चरणों में कण्टक विंधे किन्तु मन उसी ओर
प्राणों पर गोदावरी लहर की सुधि हिलोर।
कानों ने परणीता की पावन पिक पुकार
झंझना रहा सा उर वीणा का स्नेह तार।[1]

(2) नव मुकुलों की मुट्ठी बाँधे गिरि वसन्त ज्यों
रंगों की फुहार वरसा कर उसे लुभाता
प्रावृट के घन उतर धूम की गिरि द्रोणी में
तड़ित चकित रखते दृग सुर धनु के रंगों में,
रंजित कर वन प्रान्तर किरणों की तूली से।[2]

1- अरुणरामायण, अरण्य0, पृ0 394

2- सत्यकाम, मातृभक्ति, 217

(3) लौटे सुख से सब अवध प्रमोद मनाया,
श्री दशरथ-भाग्य अनूप रूप रख आया
रानी कौशल्या सहित सभी मातायें,
वधुओं की गाती प्रेमपूर्ण गाथायें।[1]

(4) देखो उस कोमल बल्ली को
पुष्प विभूषित मृदु लल्ली को
झूम रही कर वृक्षालिंगन
महामोद युत पादप का मन
दोनों आलिंगित हैं सुख से
दिव्य प्रेम से भरे विलसते।[2]

(5) किसलय दल सी मृदुल मनोहर तुहिन कनी सी झिलमिल विह्वल।
डोल रही ममता नयनों में, निधि उर की अति अनुपम निर्मल।
देख-देख नृप सुषमा सुंदर, हर्ष हृदय में नहि पाते भर।[3]

(6) चारों ओर वसन्त श्रृंगार- चारों ओर
जोर-जोर से समीरण में सनसनाहट
बोलने लगीं सौ-सौ कोयल एक साथ
मँह-मँह करने लगा वृन्दावन पुष्प पराग से
डगमगाने लगे कामना तरंग चरण,
चोंच में चोंच सटाने लगीं चिड़ियाँ[4]

(7) रजत स्वर्णमय द्वार सजे
मणिमय वन्दनवार सजे
देख प्रदीपों की आली
स्वयं लजाई दीवाली।[5]

1- उत्तरायण, पृ0 79
2- निषादराज, पृ0 66
3- सीतासमाधि, पृ0 7
4- कृष्णाम्बरी, पृ0 72
5- सत्यमेव जयते, पृ0 366

ओज :—

जहाँ किसी रचना को पढ़ने या सुनने पर मन में उमंग, उत्साह आदि भावों का संचार होता है और उसको जाग्रत करने के लिए कर्णकटु शब्दों, संयुक्ताक्षरों जुद्ध, क्रुद्ध, छग्ग आदि तथा सामासिक पदावली का प्रयोग किया गया हो, वहाँ ओज गुण होता है। वीर, वीभत्स, और रौद्र रस में इसकी स्थिति रहती है। धर्नु - भंग, लक्ष्मण परशुराम संवाद तथा युद्धों आदि में इस गुण का विकास दिखायी देता है —

(1) तीक्ष्ण वितीक्ष्ण सूक्ष्म से लवाग्नि वाण से,
कल्याण प्राण का न वाण शीर्ष त्राण से।[1]

(2) झकझोर आज झकझोर आज रे सभी ओर
गर्जन तर्जन हुंकार ज्वार झंझा झकोर।[2]

(3) शोणित स्रोत सवेग बहे शतशः रणस्थल में
अंबर कंप लगी करने निकला रव लहरें
भीषण युद्ध रूझान हुआ अवसान दिवस का
आर्त रसामर अंबर से रस तामस बरसा।[3]

(4) यही ब्रह्म विद्या के अधिकारी?.... मन ही मन
यह विमर्श करता ये निर्मम अहंकारी
जीवित मूर्ति, असंस्कृत, उच्छृंखल कटु भाषी
क्षमा सिन्धु गुरु देव उन्हें क्या नहीं जानते?[4]

(5) क्रोधित ये किसने शंभु धनुष यह तोड़ा
किसने अपना सम्बन्ध मृत्यु से जोड़ा
लक्ष्मण बोले हे विप्र न निर्बल लेखें
सुनकर भर आया क्रोध बने अंगारे
पर देख राम की महाशक्ति वे हारे।[5]

1- जानकी जीवन, पृ0 20/22
2- अरुण रामायण, लंका, पृ0 531
3- भगवान राम, युद्धकाण्ड पृ0 225
4- सत्यकाम, जिज्ञासा, पृ0 16
5- उत्तरायण, पृ0 78

भरत को चित्रकूट जाते देखकर 'गुह' निषादराज की भावना इस प्रकार मूर्त रूप हो उठी —

(6) आज पाट दूँगा पृथ्वी को, भरत सैनिकों के रुण्डों से।
किलक-किलक कर काली देवी
आज सजेगी नरमुण्डों से।[1]

द्रोण के महायुद्ध का वर्णन बहुत ही उत्साहवर्धक है —

(7) उधर द्रोण भी रणोन्माद से
लगे विचरने रण-आंगन में
अपनी कोपानल-ज्वाला को
उगल रहे थे वे क्षण-क्षण में।[2]

(8) दोनों ओर से—
टंकार पर टंकार
हुंकार — निरन्तर हुंकार
क्रान्ति कविता चारों ओर रक्तपान करती सी
विचरती थी महाकाली लाल लाल जिह्वा निकाले
काल मुट्ठी में विनाश खड्ग सम्भाले।
कृष्णा कालिका क्रुद्ध-क्रुद्ध-क्रुद्ध
अत्यन्त विकराल महाभारत युद्ध।[3]

प्रसाद

भाषा के प्रसाद गुण का सम्बन्ध उसके अर्थबोध से है। जिन रचनाओं का अर्थ बिना बौद्धिक परिश्रम के समझ में आजाये वहाँ प्रसाद गुण होता है। इस गुण की स्थिति नवों रसों में हो सकती है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

1- निषादराज, पृ0 98

2- अश्वत्थामा, पृ0 12

3- कृष्णाम्बरी, पृ0 194

(1) वे भी छात्र मिले उसको उपहास जिन्होंने
किया गोत्र के कारण पहिले सत्यकाम का
दो दशकों के बाद तरुण हो चुके थे।
अब वे विद्यानम्र प्रणत मस्तक हो उसके
सम्मुख आ उसके वरेण्य चरणों को छूकर
श्रद्धा से उसको प्रणाम अर्पित करते थे।[1]

(2) यह प्रयाग है। पाँच योजनाओं तक इसका विस्तार है।
× × × × × ×
यहाँ कुंभ का अमृत और सुरसरि का पावन नीर है।
जैसे वरुण देव ने वर्तुल खींची एक लकीर है।
मन्द पवन से जलधारा की पावन गति गम्भीर है
तट तरंग ध्वनि छिन-छिन जैसे गूंज रहा मंजीर है।[2]

(3) राम जैसा मनुज जग में है न कोई वीर,
धीरता गम्भीरता का अम्बुनिधि गम्भीर
शील शक्ति सौम्यता के वे अनूपम पुंज
मधुर कोमल भावनाओं की मनोरम कुंज
हैं सुकोमल कुसुम से भी करुणा के वारीश
कठोर किन्तु वज्र से भी न्याय-सत्याधीश।[3]

(4) अश्वत्थामा वीर महा ने
शिव मन्दिर में घुसकर
किया स्तवन शिव आशुतोष का
प्रणति दण्डवत तब कर।[4]

(5) उठो वत्स अब कहतीं गद्‌गद्‌ धीरे धीरे संयत उर कर
प्राप्त मुद्रिका चिर परचित कर मनमें अब नहिं संशय दुखकर।
प्रणय निशानी हृदय लगाकर, भूली सुधबुध प्रेम जगाकर।[5]

1- सत्यकाम, पृ0 203
2- उत्तरायण, पृ0 53
3- निषादराज, पृ0 120
4- अश्वत्थामा, पृ0 61
5- सीतासमाधि, पृ0 193

(6) तुममें धर्मज्ञान ऐश्वर्य और वैराग्य की पूर्णिमा है,
धर्म ही कर्म कसौटी है तुम्हारी
अदम्य हो तुम महात्यागी।
तुमने मथुरा को जीत कर भी –
स्वीकारा नहीं मथुरा का राज्य
शिशुपाल के सौ अपराध को सहन किया तुमने
दुष्टों के दमन कर निर्वाह किया तुमने युग धर्म का।[1]

(7) फिर एक लेख लिखकर गाँधी ने दिखलाया,
यह रूप देश का सत्याग्रह आधारों का।
समझा या सच्चा है सिद्धान्त अहिंसा का,
है सार रहित झूठा उसूल तलवारों का।
मत भूल समझने में मुझको यह देश करे
बलहीन समझ मैं करता उसे निराश नहीं।
मैं कहता हूँ, है एक आत्मा भारत की
जो है अजेय, हो सकता जिसका नाश नहीं।[2]

रीति :–

प्रथम अध्याय में रीति के सम्बन्ध में विस्तार से वर्णन किया गया है। मुख्य रूप से आलोच्य महाकाव्यों में निम्नांकित रीतियों के दर्शन होते हैं –

(1) वैदर्भी रीति :–

विदर्भादि प्रदेश में पल्लवित होने वाली इस रीति के अन्दर दण्डी एवं वामन के अनुसार 10 गुण – श्लेष, समाधि, सौकुमार्य, माधुर्य, अर्थव्यक्ति, ओज, प्रसाद, कान्ति एवं समता आदि का होना अनिवार्य होता है। यह रीति प्रमुख रूप से श्रृंगार करुण आदि रसों के लिए अनुकूल है। सम्पूर्ण महाकाव्यों में यह रीति विद्यमान है। संक्षेप में यहाँ कुछ ही उदाहरण प्रस्तुत हैं –

---

1 - कृष्णाम्बरी, पृ0 236

2 - सत्यमेव जयते, पृ0 87

(1) कहाँ हा राम जीवन ज्योति मेरी?
अनोखी आँख की पुतली कहाँ है?
पुनीता प्रीति की प्रतिमा विनीता
कहाँ हा स्वाद की सुखदा छटा-सी।[1]

(2) तरु-सी छिन्न हुई शाखा सी वे अशोक उपवन में
डूब रही है मग्न तरणि सी महाशोक सागर में।
सूख रहे हैं अधर निरन्तर अश्रुपात करती वे।
रघुकुल मणि श्रीराम-ध्यान में लीन नित्य रहती हैं।[2]

(3) अरे चल पड़े इसी क्षण? हाय! हन्त,!
जीवित मैं कैसे रहूँ, तुम्हारे बिना कन्त?
यह जीभ न क्यों जल जाय! हाय! क्यों उठी बात!
है अन्धकार, तुम मत जाओ, है अभी रात।[3]

(4) कृष्ण बलराम ने -
स्पर्श किये मातृ-चरण
कि हो गई वह मूर्छित
ज्योंही किया पितृ-चरणों का स्पर्श
कि फफक-फफक कर रोने लगे वे
राधिका-नयनों में अनन्त अश्रु भरकर
बैठ गये प्रशान्त कृष्ण रथ पर
बैठे बलराम।[4]

श्रृंगार रस में यह रीति दृष्टव्य है --

(5) स्फुटित नृत्य-मुद्रा
मुखमण्डल पर प्रसन्न स्मित
वंकिम भृकुटी-कटा-चितवन
झनझना उठी देह-वीणा झुनुन-झनन-झनन,

1- जानकीजीवन, पृ0 295
2- रामदूत, पृ0 26
3- उत्तरायण, पृ0 34
4- कृष्णाम्बरी, पृ0 99

उठी ऊपर बाँह बल्लोरियाँ
श्वास पवन सनन्-सनन-सनन
कि बज उठी मुरली
नाचने लगी राधा, नाचने लगे कृष्ण,
नाचने लगीं गोप गोपिकाएँ भी
फूट पड़ी रस-धारा।[1]

गौड़ी :—

ओज गुण के प्रकाशक वर्णों की संघटना से अस्तित्व में आने वाली उद्भट रचना को गौड़ी रीति से अभिहित किया जाता है। यह रीति विशेषकर रौद्र, वीर, भयानक आदि रसों में मिलती है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

(1) वाचाल बाल कालग्रस्त ही नितान्त है
तू जानता नहीं समक्ष में कृतान्त है।
कृत्या समान क्रूर शक्ति मृत्यु-सी चली,
लौ में कुशाग्नि वाण से पतंग सी जली।[2]

(2) कौतुक-सा करते रण में
हुये शोभित हनुमान हठीले
मार दिया तलमात्र से एक को
दूसरे को पदाघात से मारा।
पुच्छ प्रहार से तीसरा था हत
और चतुर्थ को मुष्टि से मारा।[3]

(3) अग्निवाण से तब अर्जुन ने
आग लगा दी भारी
किन्तु विप्र ने वरुण अस्त्र से
तुरत बुझा दी सारी

1- कृष्णाम्बरी, पृ0 73
2- जानकीजीवन, पृ0 380
3- रामदूत, पृ0 61

पा संकेत कृष्ण का अर्जुन
ने रण में ललकारा
द्वन्द्व युद्ध के लिए उसे औ'
तत्क्षण आन पुकारा।[1]

(4) भूत-प्रेम योगिनियों के गण
भरभर खप्पर पान करेंगे
उष्ण रक्त से हर्ष भरे औ'
नाच-नाच कर गान करेंगे।[2]

(5) व्याप्त गर्जित बिजलियाँ
प्रलयंकर अन्धकार
घना-घना-घना,
पवन प्रभंजन साँय-साँय, सनन-सनन
फट-फट, चट-चट, फटाक-फटाक
धप-धप, धपाधप, धाम-धाम-धाम
धाँय-धाँय-धाँय,[3]

(6) जगह-जगह उन्मत्तों का काफिला चल पड़ा
विद्यार्थी-मजदूर किसानों के दल के दल
लग चले अंगरेजी शासन में युद्धानल।
तार काट डाले उखाड़ दीं रेल पटरियाँ
सेतु उड़ाये, तहस-नहस कर डाली पुलियाँ।
सड़के तोड़ी, मोटर-वाहन नष्ट कर दिये।
आने जाने के साधन सब नष्ट कर दिये।[4]

1- अश्वत्थामा, पृ0 100
2- निषादराज, पृ0 98
3- कृष्णाम्बरी, पृ0 46-47
4- सत्यमेव जयते, पृ0 284

पांचाली :--

यह रीति गौड़ी एवं वैदर्भी का मध्यम मार्ग है। जहाँ न हृदय दीप्त होता है और न द्रवित ही। इसमें वह सरल प्रसन्न एवं प्रसाद गुण युक्त होता है। सुकुमार वर्णों का प्रयोग होता है एवं यह शैली माधुर्य तथा सुकुमार संयुक्त होती है। कुछ उदाहरण देखिए —

(1) कोमलांगी कामिनी कमनीय कंचनवरण
दिव्यवसनासमलंकृत स्वर्ण रत्नाभरण।
मृदुलचित मृदुभाषिणी थीं निरत पति-अनुसरण
अतिथि-आदरदानि अति सस्नेह अशरण-शरण।[1]

(2) देखे राम नाम के प्रकाशमान वर्ण युग
जिनमें विभासित छटा थी रवि शोभती।
स्तब्धा मुग्ध देखती रही निमेषहीन उसे
दृष्टि में प्रकट थी, पिपासा रोम-रोम की।[2]

(3) स्वार्थपरायण राजनीति ने
सबको अन्ध किया है
सकल देश के लोलुप नेता
ओं ने बांध दिया है।[3]

(4) मेरा निश्चय है यही काण्ड उत्तर का
अंकित करता है द्वेष किसी के उर का।
जो रामचरित का रहा प्रचण्ड विरोधी
जिसने न दिशा मानवी-वृत्ति की शोधी।[4]

1- भगवानराम, पृ02। पूर्वचरित

2- रामदूत, पृ0 43

3- अश्वत्थामा, पृ0 128

4- उत्तरायण, पृ 103

(5) देखो उस कोमल बल्ली को
पुष्प विभूषित मृदु लल्ली को
झूम रही कर वृक्षालिंगन
महामोद युत पादप का मन
दोनों आलिंगित हैं सुख से
दिव्य प्रेम से भरे विलसते।[1]

(6) किसलय दल सी मृदुल मनोहर, तुहिन कली सी झिलमिल विह्वल।
खेल रही ममता नयनों में, निधि उर की अति अनुपम निर्मल।
देख-देख नृप सुषमा सुन्दर हर्ष हृदय में नहि पाते भर।[2]

(7) मुस्कुराये सत्य शील प्रशान्त,
लगे कहने वचन कोमल-कान्त
हम नहीं हैं ईश के अवतार
जो करें पापिष्ठ का संहार।
वरन् हम हैं विवश मानव मात्र
सकल मानव हैं हमारे भ्रातृ
पाप ही केवल घृणा का पात्र
और पापी बस दया का पात्र।[3]

1- निषादराज, पृ0 66

2- सीता समाधि, पृ0 7

3- सत्यमेव जयते, पृ0 392

छन्द

काव्य में नादात्मक सौन्दर्य की सृष्टि, चारुता एवं भव्यता लाने के लिए छन्दों का प्रयोग होता है। उसे प्रभविष्णु हृदय संवेद्य बनाने में छन्द सर्वाधिक सहयोग देता है। इसीलिए छन्दोबद्ध कविताएँ अपना स्थाई प्रभाव स्थापित करती हैं। वैदिक काल से अब तक काव्य की चारुता के लिए छन्द की अनिवार्यता स्वीकार की गयी है, किन्तु उसके प्रयोग में युगानुसार परिवर्तन होता रहा है।

सप्तम दशकोत्तर काल प्रमुख रूप से मुक्तक छन्दों का युग है। इस समय 'कृष्णाम्बरी' जैसे छन्द-मुक्त महाकाव्यों का प्रणयन हुआ, जिसमें महाकाव्य के सम्पूर्ण लक्षण विद्यमान हैं। इसके साथ ही कुछ महाकाव्यों में वर्णिक एवं मात्रिक छन्दों का सफल प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। रामदूत' 'सीतासमाधि' 'निषादराज'अश्वत्थामा' तथा 'सत्यमेव जयते' महाकाव्यों में अति नवीन छन्दों को ग्रहण किया गया है, जिनका अभी नामकरण तक नहीं हुआ। 'सत्यमेवजयते' के लिए पं0 रविशंकर मिश्र ने लिखा है —"अधिकांश छन्द मिश्रित हैं और इन्हें किसी एक नाम के अन्तर्गत नहीं लाया जा सकता।"[1] डा0रत्नचन्द्र शर्मा के शब्दों में —" मैंने प्रायः 16/16, 16/14, 16/12, 14/14, 21/21 19/19, 12/12 आदि मात्राओं का प्रयोग किया है जो छायावादी गीतिशैली का भी अनुकरण है जिसके छन्दों का अभी कोई नामकरण नहीं किया गया है। गीतों में मैंने निराला जी की लय, ताल, बद्ध, गति-यति युक्त मुक्तशैली का भीअनुकरण किया है।"[2] इस प्रकार से यहाँ पर जिन महाकाव्यों में वर्णिक एवं मात्रिक छन्दों का सफल प्रयोग है उनके छन्दों के नाम दिये गये हैं और जिनमें अत्याधुनिक छन्दों का प्रयोग हुआ है उनमें प्रयुक्त मात्राओं एवं चरणों आदि का वर्णन किया गया है।

भगवानराम :—

इस महाकाव्य में वसन्ततिलका, अनुष्टुप, इन्द्रवज्रा, वंशस्थ, मालिनी, नवमालती, शार्दूल, विक्रीड़ित, वासन्ती, मन्दाक्रान्ता, द्रुतविलम्बित, रोला, रूपमाला,

---

1- पं0रविशंकर मिश्र, कानपुर, से लेखक को प्राप्त पत्र-दिनांक 26-8-83

2- डा0रत्नचन्द्र शर्मा, करनाल से लेखक को प्राप्त पत्र, दिनांक 13-7-83

उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, स्त्री, सरसी, गीतिका, शृंगार, मानहंस, चित्रलेखा, चन्द्रलेखा, लावनी, कामनी, धीर, शिखरणी, दशपदी, हरिणी, तोटक, हरिलीला, पीयूषवर्ष, हरिपद, तोमर, सार, रथोद्धता, सुखसार, चन्द्रकला, रणहंस, पंचचामर, आदि छन्द प्रयुक्त हुए हैं।

उत्तरायण —

मरहठा माधवी, जग, राधिका तथा हीर आदि छन्दों का प्रयोग हुआ है।

जानकीजीवन :— वंशस्थ, मालिनी, मन्दाक्रान्ता, शार्दूलविक्रीडित, उपेन्द्रवज्रा, इन्द्रवज्रा, भुजंग-प्रयात, द्रुतविलम्बित, शिखरणी आदि छन्द हैं।

अरुणरामायण :— रोला छन्द का नवीन रूप प्रयुक्त किया गया है। जिसमें मात्राओं का विधान 8 — 8 — 8 होता है।[1] इसमें ग्यारहवीं मात्रा भी अधिकांश स्थलों में लघु है।

यथा — मेरे मन में आसक्ति विरह की लहराती
साँसों सुधियाँ मानस पथ पर आती जातीं
जड़-चेतन में तू ही तू दीख रही केवल
मैं प्रथम बार मैं प्रथम बार चंचल चंचल।[2]

कुछ स्थलों पर इसी प्रकार के छन्दों में 12 मात्राओं पर यति है जो 'छन्द प्रभाकर' के आधार पर दिग्पाल छन्द प्रतीत होते हैं।

सत्यकाम :— अतुकांत छन्दों का प्रयोग हुआ है। सरस्वती वन्दना एवं महाकाव्य की परिणति में गीत लिखे हैं।

निषादराज एवं अश्वत्थामा :— डा० बलचन्द्र शर्मा द्वारा प्रणीत इन दोनों महाकाव्यों में एक ही प्रकार के छन्द प्रयुक्त हैं। इनके प्रत्येक सर्ग के अन्त में दोहे लिखे गये हैं तथा अन्त में निराला की शैली के गीत लिखे गये हैं। इनके अतिरिक्त इनमें निम्न प्रकार के छन्द प्राप्त होते हैं —

पिघले सोने सा सौरातप
फैल गया सब नील गगन में

1- डा० पुत्तूलाल शुक्ल—आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना, पृ० 289

2- अरुणरामायण, पृ० 394

स्नान लगीं व्रतिकाएँ करने

जीवन-मदिरा में क्षण-क्षण में।[1]

इस छन्द में चार चरण हैं। प्रत्येक चरण में 16 मात्राएँ हैं। यह छन्द कुछ मत्तसवैया जैसा है।

(2) सभी विराजित थे पाण्डव-गण

आसन पर अपने-अपने,

मानो देख चुके थे सारे

अपने मानस के सपने।[2]

इसके प्रथम पंक्ति में 16 द्वितीय पंक्ति में 14 मात्राएँ हैं। दोनों मिलकर 30 मात्राओं का चरण बनता है जो लावनी छन्द के कुछ गुणों से युक्त है।

(3) प्रातः हुई देव सविता ने

प्राची नभ से देखा,

प्रकृति नटी के मधुराधर पर

छाई स्मित की रेखा।[3]

प्रस्तुत छन्द की प्रथम पंक्ति में 16 तथा द्वितीय पंक्ति में 12 मात्राएँ प्रयुक्त हैं। दोनों मिलकर 28 मात्रा का एक चरण बनता है जिसमें नन्दन छन्द गुणों का आभास होता है।

(4) बढ़ते थे धीरे धीरे

रथ बाजी और पदाती,

पग उत्थित धूलि उनकी

थी नभ में उड़ती जाती।[4]

प्रत्येक चरण में 14 मात्राएँ हैं। यह छन्द कुछ हाकलि छन्द से मिलता है।

(5) चला गया जब सुमन्त्र रथ गुह ने कहा –

'देव चलूँगा साथ आपके मैं अहा।

एकाकी या परिचर सह जैसा कहें

वनवास का दुख और सुख मिलकर सहें।[5]

1- निषादराज, 2/1 2- अश्वत्थामा, 9/2

3- निषादराज, 1/1 4- निषादराज, 12/1

5- वही, 5/1

प्रत्येक चरण में 21 मात्राएँ प्रयुक्त हुई हैं। इसमें चन्द्रायण छन्द के कुछ गुण दिखायी पड़ते हैं।

(6) आ गयी सन्ध्या गगन में रागिणी
पति-समागम की वह नित्य सुहागिनी
देव दिनकर रोककर निजयान को
उतर कर धीरे बढ़े तिरा-धाम को।[1]

इस प्रकार के छन्दों के प्रत्येक चरण में 19 मात्राएँ प्रयुक्त हुई हैं। इन छन्दों में पीयूषवर्ष के कुछ गुण प्राप्त होते हैं।

(7) चित्रकूट था प्रात समय में शोभा पाता
तरुओं के तल अवध राज्य की सभा सजाता
बैठे थे श्रीराम चन्द्र कुश आसन ऊपर
और निकट बैठे थे लक्ष्मण वीर धनुर्धर।[2]

प्रत्येक चरण में 24 मात्रायें प्रयुक्त हैं। इसमें दिगपाल छन्द के कुछ गुण मिलते हैं।

<u>रामदूत :–</u>

प्रस्तुत महाकाव्य में वर्णिक एवं मात्रिक दोनों प्रकार के छंद देखने को मिलते हैं, किन्तु अधिकांश छन्द नवीन हैं —

(1) चौसठ करोड़ विद्याओं के हैं प्रदाता आप
देवगुरु को भी आपने ही किया ज्ञानदान
महाकठोपनिषद् स्वरूप तत्वज्ञान देव
आपने कृपाम्बु बरसा के है किया प्रदान।[3]

इसके प्रत्येक चरण में 16 ~~का~~ वर्ण प्रयुक्त हैं। इसमें घनाक्षरी के कुछ गुण दिखायी देते हैं।

(2) मैं श्वसन-पराक्रम राघव-कर-निर्मुक्त-प्रखर
शर-सा जाऊँगा पार महार्णव के सत्वर

1- निषादराज, 3/1
2- वही, 13/1
3- रामदूत, मंगलाचरण, 4

विदलित होता रवि-कर से जैसे तिमिर देश

लंका में वैसा ही होगा मेरा प्रवेश।[1]

प्रत्येक चरण में 24 मात्राएँ प्रयुक्त हैं। इसमें सम्मिश्र छन्द के कुछ गुण प्राप्त होते हैं।

(2) करते हुए ध्यान सीता का नभ से मारूत नन्दन

लगे खोजने वह प्रमोदवन रावणका सुमआङ्गन

श्यामल, शाल, तमाल, ताल, हिंताल, रसाल पनस से

शत अशोक कुंजों से परिवृत मंडित प्रतिति वितत से।[2]

इसके प्रत्येक चरण में 28 मात्राएँ ग्रहण की गयी हैं। 16 मात्राओं में यति है। यह सार छन्द से मिलता जुलता है।

(4) इक्ष्वाकु वंश में थे दशरथ नृप पुण्यवान

अर्जित निज तप से वंदित ऋषियों के समाज।

आसागर धरती के थे वे सम्राट धीर

राजर्षि प्रथित-यश अप्रतिहत गति महावीर।[3]

प्रत्येक पंक्ति में 23 मात्राएँ प्रयुक्त हुई हैं। यह कुछ संपदा छंद से मिल रहा है।

(5) कानन गंजन किंकर भंजन

वानर की उडी कीर्ति पताका

अंकित हो गया राक्षसों के उर

व्योम में विक्रम का नव साका।

दीन सा हीन-सा था अति रावण

क्षीण हुई पुरुषार्थ की राका।

राम-प्रताप-हुताशन-सा हुआ

ज्वलित अंजनी नंदन बाँका।[4]

इसके प्रत्येक चरण में 23 वर्ण हैं। ये ।2-।। के क्रम में प्रयुक्त है। इस छन्द में मत्त गयंद सवैया (7भगण- 2 गुरु) के कुछ लक्षण हैं।

1- रामदूत, पृ0 1

2- वही, पृ0 33

3- वही, पृ0 44 4- वही, पृ0 56

(6) अकथनीय थी वानरेन्द्र की वह उदात्त शोभा अवदात

झर झर झरना गैरिक गिरि पर मानों कोई हेम प्रपात।[1]

प्रत्येक चरण में 31 मात्राएँ प्रयुक्त हुई हैं। यह वीर छन्द के समान है।

(7) दूतों ने रावणको यह वृत्त सुनाया

उस पर सिंधु के प्रबल रामदल आया।

वे सेतु बाँधने का कर रहे उपक्रम

करने को सागर पार सहज गति अक्लम।[2]

प्रत्येक चरण में 22 मात्राएँ प्रयुक्त हैं। राधिका छन्द से मिलता है जिसमें 10-12 क्रम में मात्राएँ होती है एवं अन्त में SS , IIS अथवा SII आना चाहिए।

रामदूत में उपर्युक्त छन्दों केअतिरिक्त तृतीय एवं सप्तम सर्ग में अतुकान्त छन्दों का प्रयोग हुआ है।

<u>सीतासमाधि</u> :— प्रस्तुत महाकाव्य में प्रमुखरूप से तीन प्रकार के छन्द प्रयुक्त हुए हैं —

(1) रावण भूप अतुलबलशाली, करता था आतंकित जग को।

तपसी, ऋषि मुनि सुरसज्जन को, सता रहा था ध्वसंक सबको।

नाश मधुर संस्कृति का करके विचर रहा था मद में भर के।[3]

(2) जो खादी हलबलधारी हों, जो जन-जन के हितकारी हों,

जो भारत नयनों के तारे, जिनकी चितवन मनहारी है।[4]

(3) शिश झुकाए खड़े हुए हैं, लुटा मान को मिटा नाम को।

छोड़ भरोसा तेरा सुखकर, पाल रहे हैं कामक्रोध को।

मिटती मर्यादा सारी है, बढ़ी भूख है बेकारी है।

कर संजीवन सदय सम्हारे, आओ हतबुद्धि हमारी है।[5]

तात्पर्य यह है कि कवियित्री ने 16 मात्राओं के छन्दों में कहीं चार चरण कहीं छह और कहीं आठ चरणों की योजना की है।

1- रामदूत, पृ0 56

2- वही, पृ0 146

3- सीतासमाधि, पृ0 20

4- वही, पृ0 1   5- वही, पृ0 4

सत्यमेव जयते :—

(1) लेखनी जय स्वराज्य की बोल,

हृदय में भर स्वदेश-अभिमान।

तीव्र कर गति, साहस-मसि घोल

सामने है दुस्तर अभियान।[1]

चार चरण वाले इस प्रकार के छन्दों के प्रत्येक चरण में 16 मात्राएँ प्रयुक्त हुई हैं। इसमें कुछ पद्धरि के गुण मिलते हैं।

(2) देख लेखनी। आग लगी है नगर-नगर

क्रान्ति ज्वाल से भारत होता जगर-मगर,

गूँज रहे हैं नारों से धरती अम्बर

तू भी गा दे आजादी का गीत अमर।[2]

अत छन्द के प्रत्येक चरण में 22 मात्राएँ हैं जिसमें विहारी छन्द के कुछ गुण दिखाई पड़ते हैं।

(3) हे सत्य साथ है जब तू लेखन यात्रा में।

फिर मुझे चाहिए कोई पथ संकेत नहीं।

कल्पने। तनिक तू अपना रंग भी भरती चल

इतिवृत्त मात्र ही उस जन का अभिप्रेत नहीं।[3]

चार चरण वाले इस छन्द के प्रत्येक चरण में 24 मात्राएँ प्रयुक्त हैं। इसमें दिग्पाल छन्द के कुछ गुण विद्यमान हैं।

(4) सदा संघ की जय हो जग में संघ शक्ति की जाय होवे

भरत देश की जय, जनता की देश-भक्ति की जय होवे

सत्य शक्ति से शक्ति मिले वह, जगती तल पर जन-जन को

दास्य भुक्ति से मुक्ति मिले इस पृथ्वी तल पर जन-जन को।[4]

1- सत्यमेवजयते, पृ0 163

2- वही, पृ0 136

3- वही, पृ0 81

4- वही, पृ0 59

इस छन्द के प्रत्येक चरण में 30 मात्राओं का प्रयोग हुआ है। इसमें क्रमशः 16 तथा 14 मात्राओं पर यति होती है। इसमें 'लावनी' के लक्षण मिलते हैं।

(5) हे भारत माँ कातर मत हो यदपि लुट गये लाल तिहारे
दूर नहीं वह दिवस पड़ेगी जब सुकण्ठ जयमाल तिहारे।
देश भावने कुण्ठित मत हो युद्ध मशाल जलाये रखना,
विजयी विश्व तिरंगा प्यारा अम्बर में फहराये रखना।।[1]

प्रत्येक चरण में 32 मात्राओं का प्रयोग है। इसमें मत्तसवैया के कुछ गुण प्राप्त होते हैं।

(6) वाणी सुनकर सजग हो उठे गाँधी जैसे
उमड़ रहे थे भाव हृदय में आँधी जैसे।
अंग-अंग में एक प्रबल स्फुरण होउठा।
सत्तर वर्षों का बूढ़ा ज्यों तरुण हो उठा।[2]

(7) लेखनी। तनिक चलना बचकर
अब कार्य बड़ा ही है दुष्कर
मातम में जीवन गीत छुपा
रोदन में सुख संगीत छुपा।[3]

प्रत्येक चरण में 16 मात्राएँ प्रयोग की गयी हैं। इसमें विकर्ण पद्धरि के कुछ गुण प्राप्त होते हैं।

(8) स्वतंत्रते। तेरी जय हो,
मन। अब तू निर्भय हो।
कह जो कुछ भी आशय हो,
भाव रत्न-सुख संचय हो।[4]

इसके प्रत्येक चरण में 14 मात्राएँ प्रयोग की गयी हैं। इसमें हाकलि के विकृष्टरूप के कुछ गुण मिलते हैं।

1- सत्यमेव जयते, पृ0 205
2- वही, पृ0 266
3- वही, पृ0 315
4- वही, पृ0 365

<u>कृष्णाम्बरी :--</u> यह छन्दमुक्त महाकाव्य है।

सारांश यह है कि छंदों की दृष्टि से आलोच्य काव्यों में महा तीन प्रकार की प्रवृत्तियाँ पाई जाती हैं। प्रथम कोटि में वे ग्रन्थ आयेंगे जो पूर्णतः छन्दोवद्ध हैं — 'भगवानराम' 'जानकीजीवन जिनमें प्राचीन शास्त्रीय लक्षणों से युक्त वार्णिक और मात्रिक छन्द मिलते हैं। दूसरा वर्ग उन महाकाव्यों का है जिनमें कुछ पुरानी शैली के छन्द तथा कुछ नवीन नव विर्मित एवं स्वनिर्मित हैं। जैसे — उत्तरायण, अरुणरामायण, रामदूत निषादराज, सीतासमाधि, अश्वत्थामा, सत्यमेव जयते आदि। तीसरी कोटि के वे महाकाव्य हैं, जोपूर्णतया मुक्तछन्द तथा अतुकान्त हैं। यथा – कृष्णाम्बरी, एवं सत्यकाम।

प्रवृत्ति की दृष्टि से भगवानराम और जानकीजीवन द्विवेदी युगीन छन्दसिक दृष्टि से काव्य हैं तो रामदूत, सीतासमाधि, निषादराज, अश्वत्थामा, सत्यकाम, छायावादी हैं एवं तीसरी तरफ छन्दमुक्त किन्तु लय के पक्षधर प्रयोगवादी प्रवृत्ति का कृष्णाम्बरी महाकाव्य है। प्रवाह की दृष्टि से भगवानराम और जानकीजीवन कुछ अपेक्षाकृत शिथिल महाकाव्य हैं। अरुण रामायण, रामदूत, अश्वत्थामा आदि मध्यम श्रेणी के एवं छन्दमुक्त किन्तु अतिशय प्रवाहमयता की दृष्टि से कृष्णाम्बरी उत्तम कोटि का महाकाव्य है।

लयात्मकता, संगीतात्मकता, प्रवाहमयता की दृष्टि से कृष्णाम्बरी' रामदूत निषादराज, आदि महत्वपूर्ण महाकाव्य हैं जिनमें शब्दों के स्वाभाविक प्रयोग के साथ ही साथ अन्यान्य भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग किया है। स्वनिर्मित छन्दों में डा० डा०रत्न शर्मा, श्रेष्ठ कवि हैं उनके काव्य में एक विशिष्ट प्रकार की ताल और लय का प्रयोग किया गया है। कहना नहीं होगा कि प्रवाहमयता, मसृणता एवं लयात्मकता की दृष्टि से आलोच्य युग के महाकाव्य अपना महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

शब्द-शक्तियाँ

शब्द-शक्ति उपादान द्वारा अभिव्यंजना के सौन्दर्य का विधान होता है। शब्द अपनी सामर्थ्य के कारण अनेक अर्थ प्रदान करते हैं जिन्हें हिन्दी साहित्याचार्यों ने तीन कोटियों में रखा है --

(1) अभिधा ~~शब्द~~ शब्दशक्ति

(2) लक्षणा शब्दशक्ति

(3) व्यंजना शब्दशक्ति

अभिधा शब्दशक्ति :--

यह मुख्यार्थ की बोधक होती है। इससे किसी शब्द का प्रसिद्ध एवं सांकेतिक अर्थ ही ज्ञात होता है।[1] आलोच्य महाकाव्यों के कुछ उद्धरण निम्नलिखित हैं --

(1) यह प्रयाग है। पाँच योजनाओं तक इसका विस्तार है,
मुक्ति मचलती मिट्टी में जल में जीवन साकार है
सजा त्रिवेणी की वेणी में पुण्य पुष्प का हार है,
यहाँ भाव में भक्ति है साँस में सहजशील संचार है।[2]

(2) श्री राम सा स्वामी सखा न अन्य
धन्य ~~जनक~~ जनक उनके जन्मभूमि धन्य।
धन्य जनगण नाम पावन से जो उनके धन्य
और वे सब धन्य रखते उन से प्रेम-अनन्य।[3]

(3) बड़े प्रेम से मुदित राम ने, उठा हृदय से उन्हें लगाया।
देख-देख कर हर्ष प्रेम से, उर उनका भर कर उमगाया।
कैसे इतना कार्य असम्भव, किया आपने कपिवर सम्भव।[4]

1- साहित्यदर्पण, पृ0 2/4-5

2- उत्तरायण, पृ0 52

3- निषादराज, पृ0 120

4- सीतासमाधि, पृ0 204

(4) पापियों का तो महा संहार
स्वयं करते ईश ले अवतार।
मुस्कुराये सत्य शील प्रशान्त
लगे कहने वचन कोमलकान्त
हम नहीं हैं ईश के अवतार
जो करें पापिष्ठ का संहार।[1]

(2) लक्षणा शब्दशक्ति :—

जब किसी शब्द के मुख्य या प्रसिद्ध अर्थ के अन्वयबोध में बाधा उत्पन्न हो तब उस मुख्यार्थ से सर्वथा असम्बद्ध नहीं अपितु किसी न किसी तरह सम्बद्ध अर्थ का बोध जो शक्ति कराया करती है, उसे लक्षणा शक्ति कहते हैं। यह शक्ति मुख्यार्थ से भिन्न जिस अर्थ का बोध कराया करती है, इसका एक कारण रूढ़िगत होता है जो वक्ता के वश में नहीं होता और दूसरा कारण प्रयोजनवत् है जो वक्ता के वश के बात होती है। इसके कई भेद होते हैं जिनका विवरण पहले दिया जा चुका है। यहाँ कुछ ही उद्धरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं —

(1) गर्जना गूँजी घनों की तर्जना
आपदाओं आयुधों की दृष्टि सी
झोंक दी क्रोधान्ध आँधी ने वहाँ
घोर अन्धाधुन्ध आधिव्याधियाँ।[2]

यहाँ कवि का प्रयोजन जानकी की लोकनिन्दा को सुनकर राम पर उसका क्या प्रभाव हुआ, इसका वर्णन करना है।

(2) वृद्ध हो रहा है तम, झाँक रही श्वेतता
और अब बीत रहा रजनी का याम है।[3]

1- सत्यमेव जयते, पृ0 392

2- जानकीजीवन, पृ0 218

3- उत्तरायण, पृ0 32

वन में प्रभात हो रहा है क्योंकि कानन का भाग्य रूपी सूर्य उदय हो रहा है जिससे कालीरात्रि समाप्त हो रही है अर्थात् अब निशिचरों आदि का भय नहीं रहेगा। कुमुदबन्धु अर्थात् श्री राम रूपी चन्द्रमा अवध से कानन की ओर जा रहा है जिससे चकोर रूपी अवधवासी दुखी हैं -- .

(3) मुस्काता था अरुण प्रभात
चली गयी थी काली रात
कुमुद बन्धु थे पश्चिम पथ पर
लगे हँसने देव दिवाकर
चक्रवाक युग मिलते फिर से
पर चकोर दुखित थे लखते
विहग मनोहर लगे चहकने था प्रातः की वेला
सुषमा का आया जैसे था एक अनूपम रेला।[1]

(4) दीन दुखी क्या देख मुझे यों, प्रजा सहन अन्याय करेगी।
माँ छोटी क्या भोली इतनी, वेल पनपने विष की देगी?
दो न वधिक को गाय बिचारी, प्रणतपाल भवभय के हारी।[2]

(5) दीख पड़ते अशकुन लक्षण
जैसे द्वारका तट पर उदय काले सूर्य का
उदय लाल चन्द्रमा का
भूरे धूमकेतु का
समुद्र पर दौड़ते रंग बिरंगे सर्प
सागर तरंगों पर उठते हरे पीले तूफान
आकाश में चक्कर काटती आँधियाँ
टकराते सुरा-मत्त -
भोग प्रबल द्वारका वासी।[3]

1- निषादराज, पृ0 58

2- सीतासमाधि, पृ0 65

3- कृष्णाम्बरी, पृ0 216

व्यंजना शक्ति :—

उच्चकोटि के काव्य में व्यंजना का ही प्राधान्य रहता है। साधारणतः अभिधा तथा लक्षणा के शान्त हो जाने पर शब्दशक्ति वाक्य, लक्षणादि आदि अर्थों से सर्वथा विलक्षण अर्थ का भावबोधन करती है। उसे व्यंजना शब्द शक्ति कहते हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं —

(1) नहीं साकेत के वरमाल में था
लिखा आनन्द का यह पर्व प्यारा
महा ऐश्वर्यशालिनि राजधानी
वृथा ही गर्विणी हतभागिनी थी।[1]

(2) आते ही सजाया घर जो कि अस्त व्यस्त था
कहीं-कहीं कोने बीच मकड़ी के जाले थे।
उसने कहा था कुछ हँस हे दयानिधान
बिना खान-पान वाले अच्छे जन्तु पाले थे।[2]

(3) कानन में तीतर पक्षी को लड़ते हुये सीता जी देखती हैं तो
कहती हैं कि सभी जीव कितने सुन्दर हैं वे आनन्द से रह रहे हैं
किन्तु ये पक्षी लड़ रहे हैं तो लक्ष्मण कैकेयी के लिए व्यंग्य से कहते हैं —
'सीखे शायद' बोले लक्ष्मण' हाँ भाभी ये भी तो
मझली माँ की गुरु की हितकर शिक्षा को।[3]

(4) मात-पिता ने तोड़ा नाता उसमें अब क्यों मुझे फँसाते।
त्यागे जो सुत अम्ब निराली, वह रखे उसकी घरवाली।[4]

(5) तुरत लखन को दृग से चुपकर किया सयन से प्रभु ने वर्जित
हँसकर तब तरुणी से बोले, ठहे लगते हैं ये शोले।[5]

1- जानकीजीवन, पृ0 322

2- उत्तरायण, पृ0 41

3- निषादराज, पृ0 62

4- सीतासमाधि, पृ0 65

5- वही, पृ0 130

दोष :—

प्रस्तुत शोधप्रबन्ध के प्रथम अध्याय में दोषों के स्वरूप पर विस्तारपूर्वक प्रकाश डाला गया है। समग्र रूप से आलोच्य महाकाव्यों में दोष बहुत कम हैं, यदि बहुत सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो एकाध कहीं मिल जाते हैं, किन्तु यदि उन्हें दोष कहें तो सर्वथा अनुचित होगा। वे तो इस प्रकार सुशोभित हो रहे हैं जैसे कि स्वस्थ सुन्दर बालक के डिठौना लगा दिया जाये तो वह और अधिक सुन्दर लगने लगता है। ऐसे ही कुछ उद्धारण प्रस्तुत हैं —

(1) पुनरुक्तिदोष :—

(क) नीच मनुज है नीच कर्म ही
सदा जगत में करता
इसीलिए वह निंदित होकर
ही है जग में मरता।[1]

इसी को कवि ने तुरन्त तीसरे पृष्ठ पर पुनः कहा है —

नीच पुरुष है नीच कर्म कर
प्राप्त नीच पद जग में करता
अपने नीच कर्म के कारण
कभी न है वह सुख से मरता।[2]

(ख) नीरवता से फूटी फिर परिचित अंतर्ध्वनि
मुक्त करे स्त्री को, नारी को मुक्त करे नर।[3]

(2) क्लिष्टत्व दोष :—

प्राणों की आशाकांक्षा के हरित लोक में
बीज निहित भावी जीवन-दर्शन के।
निखिल वर्जनाएँ - निषेध संप्रति स्थिति द्योतक

1- अश्वत्थामा, पृ0 22
2- वही, पृ0 25
3- सत्यकाम, पृ0

समदिग्गामी प्राण शक्ति यह नहीं अधोमुख
ऊर्ध्व अधः में हमें संतुलन भरकर उसको
समतल रसस्तर पर संचालित करना होगा।[1]

(3) श्रुतिकटुत्व दोष :-

(क) ज्वाल-वसना जेठी दुपहरी में रावणी धूप ठहाका
ग्रीष्म सर्पिणी लाखों लपलपाती लाल जिह्वाओं से
चाट लेती ज्यों ताल तलैयों का जल।[2]

(ख) सर्वत्र हू-हू-हू
धू-धू करती ज्वाला
व्योम कभी लाल कभी काला
सनसनाहट चीरता वायु की
घरघराहट रथ चक्रों की
चिग्घाड़ते वाण विद्ध हाथी
हिनहिनाते घायल घोड़े।[3]

(ग) आत्मतेज तुम भस्म करो सब कल्मष, कर्दम
अपनी ज्वालाओं की जिह्वाएँ लपका कर।[4]

(घ) झड़-झड़-झड़-झड़ गिरते थे ताल तमाल और हिंताल।
चड़-चड़-चड़-चड़ उखाड़ रहे थे शत-शत पादप पुंज समूल
पड़-पड़-पड़-पड़ गगन वेग से विदलित पत्रराजि फूल-फूल
हड़-हड़-हड़-हड़ बहता था प्रलय प्रभंजन चारों ओर।[5]

(4) ग्राम्यत्व दोष :--

खिली मधुर मुस्कान अधर पर देखा प्रभु का खिसियाना
फोड़ मटुकिया द्वापर चंचल, माखन मिश्री लपटाना।[6]

1- सत्यकाम, पृ0 83
2- कृष्णाम्बरी, पृ0 14
3- वही, पृ0 195
4- कृष्णाम्बरी, पृ0 129
5- रामदूत, पृ0 334
6- सीतासमाधि, पृ0 262

इस प्रकार से शिल्प संगठन की दृष्टि से महाकाव्यों का कलेवर अत्यन्त उच्चकोटि का है। उनमें जितनी भावपक्ष की परिपक्वता है उतना ही कलापक्ष सशक्त है। रसों में लगभग सम्पूर्ण रसों एवं उनके अंगो-प्रत्यंगों का पूर्ण विवेचन हुआ है। रसों की दृष्टि से भगवानराम, अरुणरामायण' निषादराज, अश्वत्थामा, रामदूत, सत्यमेव जयते वीर रस, सीतासमाधि, जानकीजीवन, करुण रस एवं कृष्णाम्बरी श्रृंगार रस के महाकाव्य हैं। कृष्णाम्बरी में करुण श्रृंगार एवं वीर रस इस प्रकार प्रयुक्त हुए है कि तीनों की समान प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। अश्वत्थामा एवं सत्यमेव जयते में श्रृंगार एवं वात्सल्य रस का अभाव है। भगवानराम जानकीजीवन, अरुणरामायण, सीतासमाधि, कृष्णाम्बरी में सभी रस प्रयुक्त हुए हैं।

सम्पूर्ण महाकाव्यों मुहावरों लोकोक्तियों एवं तत्सम शब्दों से युक्त खड़ी - बोली का प्रयोग हुआ है। सत्यकाम में संस्कृतनिष्ठ एवं सन्धि समासयुक्त भाषा प्रयुक्त हुई है जबकि सत्यमेव जयते महाकाव्य में विदेशी शब्दों का बाहुल्य है। रीतियोंमें विशेषकर वैदर्भी रीति एवं पांचाली रीतियाँ बहुप्रयुक्त हैं जबकि गौणी रीति का प्रयोग वीर रस युक्त महाकाव्यों के किन्हीं विशिष्ट प्रसंगों में हुआ है। ओज प्रसाद एवं माधुर्य गुण महाकाव्यों में समानरूप से प्रयुक्त हुये हैं। सम्पूर्ण आलोच्य महाकाव्यों में अभिधा शब्दशक्ति का बाहुल्य है। जबकि लक्षणा एवं व्यंजना शब्द शक्ति प्रसंगानुकूल है। छन्द विधान की दृष्टि से प्राचीन से प्राचीन एवं नवीन से नवीन छन्दों का विन्यास हुआ है। महाकाव्यों में दोषों का अभाव सा दिखाई पड़ता है।

पंचम अध्याय

आलोच्य महाकाव्यों में चरित्र-चित्रण

पुरुष पात्रों का चरित्र-चित्रण

स्त्रीपात्रों का चरित्र-चित्रण

सप्तम दशकोत्तर हिन्दी महाकाव्यों में चरित्र-चित्रण

किसी भी रचना की प्रमुख निधि तत्सम्बन्धित पात्र ही हैं, क्योंकि कथा के वे ही प्राण होते हैं। घटनाओं के सृजन एवं विकास में इनकी महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। इसीलिए कवि-कार्य में कुशल प्रबन्धकार पात्रों के चरित्र-चित्रण में विशेष रुचि रखते हैं। इन पात्रों को डा0म0ह0राजूरकर ने रामकथा के पात्रों का विभाजन करते हुए प्रमुख एवं गौण पात्रों का उल्लेख किया है।[1] डा0 परम लाल गुप्त ने पात्रों को पाँच वर्गों में विभाजित किया है।[2]

(1) असाधारण पात्र।

(2) तत्त्वज्ञानी अथवा ऋषि

(3) क्षात्रधर्म का पालन करने वाले।

(4) क्षात्र धर्म के सहयोगी पात्र।

(5) उत्पीड़क एवं निन्दनीय पात्र।

आलोच्य महाकाव्यों में चार प्रकार का कथानक प्राप्त होता है जो भारतीय चार कालों से सम्बन्ध रखता है, अतः पात्रों में युगीन परिस्थितियों का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। ये कथानक निम्नलिखित हैं —

कथानक	युग	आलोच्य महाकाव्य
(1) वैदिक कालीन कथानक	कृतयुग	सत्यकाम
(2) रामकथा	त्रेतायुग	भगवान राम, जानकी जीवन, उत्तरायण, निषादराज, सीतासमाधि, अरुण रामायण, रामदूत।
(3) कृष्ण कथा	द्वापरयुग	अश्वत्थामा, कृष्णाम्बरी।
(4) गाँधी कथा	कलियुग (वर्तमानयुग)	सत्यमेव जयते।

किन्तु समग्ररूप से उपयुक्त कथानकों के प्रमुख पात्र — राम, भरत, लक्ष्मण शत्रुघ्न, दशरथ, वशिष्ठ, विश्वामित्र, जनक, सुमंत्र, गुह, भरद्वाज, अगस्त्य, खरदूषण, मारीच,

1- डा0परम लाल गुप्त, रामकथा के पात्र, पृ0 12।

2- हिन्दी के आधुनिक रामकाव्य का अनु0, पृ0 160-164

जटायु, हनुमान, सुग्रीव, बालि, अंगद, जाम्बवान, नल-नील, रावण, विभीषण, कुम्भकर्ण, मेघनाद, प्रहस्त, विराध, कबन्ध, सरभंग, सुतीक्ष्ण, रजक, लव, कुश, वाल्मीकि, श्रृंगी तुलसीदास, जाबाल, गौतम ऋषि, कृष्ण, बलराम, वसुदेव, नन्द, उद्धव, अक्रूर, अर्जुन, युधिष्ठिर, भीम, कर्ण, नकुल, सहदेव, अभिमन्यु, लक्ष्मण, पाण्डु, धृतराष्ट्र, भीष्मपितामह, द्रोण, अश्वत्थामा, दुर्योधन, शकुनि, संजय, जयद्रथ, दुःशासन, कंस, शिशुपाल, जरासंध, गांधी, ह्यूम, तिलक, गोखले, अंसारी, लाला लाजपत राय, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद, जवाहर लाल, मोतीलाल, सुभाष, बटुकेश्वर, यतीन्द्रनाथ, सरदाल पटेल, मौलाना आजाद माउण्ट बेटन, बिस्मिल, लार्ड लिटिन, रिपन, रलिंगन, कर्जन, डायर, इर्विन, जिन्ना, आदि है।

स्त्रीपात्रों में कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा, सीता, उर्मिला, माण्डवी, श्रुतिकीर्ति, सुनयना, मंथरा, अनसूया, शूर्पणखा, शबरी, अहल्या, ताड़का, त्रिजटा, तारा, सरमा, मन्दोदरी, सुलोचना, जाबाला, ऋचा, ऋता, देवकी, यशोदा, राधा, कुब्जा, रूक्मिणी, सुभद्रा, द्रौपदी, कुन्ती, भानुमती, गान्धारी, सत्यभामा, एनीबिसेण्ट, कस्तूरबा गाँधी, सरोजनी नायडू, कमला-नेहरू, आदि के साथ इन्द्र वृहस्पति, ब्रह्मा, विष्णु, महेश देवता तथा शारदा, कमल, गौरी, शची, रति आदि देवियाँ भी हैं। इसमें से कुछ प्रमुख पात्रों का चरित्र-चित्रण निम्नलिखित है-

राम

आलोच्य महाकाव्यों में राम को अंशावतार से पूर्णावतार तक माना गया है। वे अवतारी राम के साथ-साथ त्याग, उदारता, परोपकार, लोकसेवा आदि गुणों से युक्त आदर्श पुरुष लोक सेवक के रूप में परिलक्षित होते हैं। किसी स्थल में वे त्याग प्रधान भारतीय आर्य संस्कृति के प्रतिष्ठापाक, कहीं लोक हितकारी नीति के प्रवर्तक, कहीं मानवता-वादी विचारधारा के अनन्य पोषक तथा युगानुरूप सैद्धान्तिक प्रतीकों के रूप में अंकित हैं। शक्ति शील एवं दिव्य सौन्दर्य से युक्त उन्हें आदर्श पुत्र; आदर्श शिष्य, आदर्श भ्राता, आदर्श पति, आदर्श मित्र एवं आदर्श शासक बताया गया है। उनके अन्दर श्रेष्ठ गुणों का आरोपण हुआ है जिससे वे इस धरती के अलौकिक महामानव बन गये हैं। उनकी वीरता बताने वाली घटनाओं में ~~अलौकिक~~ ताड़का, सुबाहु, खर-दूषण, कुम्भकर्ण, रावणवध प्रमुख हैं। मातापिता के प्रति अत्यधिक श्रद्धा, पत्नी से ऐकान्तिक प्रेम, आकर्षण, लोक-सेवा इत्यादि गुणों में उनका चरित्र जगमगा उठा है।

मानवता के प्रतीक – 'राष्ट्रीय आत्मा' ने वशिष्ठ जी से कहलाया है –

मर्यादा-मूर्तिसम संयत राम मेरा,
लोकाभिराम नयनागर शीलशाली,
सर्वोच्च लक्ष्य जिसका वध दानवों का,
गो विप्र साधु प्रतिपालन धर्मरक्षा।
× × × ×
विद्या विवेक निधि वारिधि वीरता का
सौन्दर्य शक्ति युत सात्विक वृत्तिवाला।
श्रद्धालु सेवक सुधी गुरूओं बड़ों का,
पाया अनन्य यह राजकुमार मैंने॥[1]

उन्हें ऋषि मुनि इस प्रकार समझते हैं –

ऋषिवर मुनिवर सब कहते हैं -
हैं वे देवों से भी ऊपर
शील-शक्ति-सौन्दर्य पुंज हैं
महामनुज वे सब के ऊपर।[2]

राम सत्य के सत्य हैं। मानव वर्ग में श्रेष्ठ हैं तथा मायारहित पूर्ण पुरुष हैं। उनका शासन ब्रह्मा, आदि सभी पर है।

राम सत्य के सत्य सभी सत्ताओं की सत्ता हैं,
सब कुछ उनसे ही निःसृत है, संस्थित सतत उन्हीं में
सब कुछ वे ही हैं समग्र वाह्याभ्यन्तर चारी भी।
ब्रह्मा से तृण-स्तब आदि सब पर उनका शासन है।[3]

1- जानकी जीवन, पृ० 103

2- निषादराज, पृ० 96

3- रामदूत, पृ० 85

अद्भुत-विक्रम राम तुम्हीं हो पुरुषोत्तम अभिवंद्य,

अक्षय विष्णु तुम्ही मधुसूदन शत्रुजिय जगवंद्य।

तुम त्रिलोक स्वामी निश्चय हो अखिल विश्व प्रतिपाल,

अप्रतिम अद्वितीय सर्वोत्तम प्रतिद्वन्द्वी के काल।[1]

वे सर्वगुण सम्पन्न, वीरता एवं धैर्य में सर्वश्रेष्ठ हैं। वे वेद धर्म मर्यादा के रक्षक हैं —

रुकिये, रुकिये यों मत करिये,

आप महामानव हैं रघुवर।

वेद धर्म-मर्यादा-रक्षक,

बोला गुह नृप होते अश्विर।[2]

शक्र सम वे वीर हैं, अति धीर हैं,

शान्त हैं, वरदान्त हैं, गम्भीर हैं

देव गुरु औ शुक्र सम नीति निपुण

शस्त्र विद्या शास्त्र विद्या में निपुण।[3]

आदर्श पुत्र :—

राम माता-पिता के अनुरागी एवं आज्ञाकारी पुत्र के रूप में चित्रित किये गये हैं। तभी तो वे सब कुछ छोड़कर उनकी आज्ञा से वन चले जाते हैं। वे सदा माता-पिता के वात्सल्य को ध्यान कर द्रवित होते रहते हैं —

कहा राम ने द्रवित मातृवत्सलता से।

दीर्घकाल हो गया वत्स! ऋषि संग आये,

जननी के संवाद न अब तक कुछ पाये।

सुधा वारि पा जिनके हृदय प्रेम धन का,

हुआ पल्लवित अंकुर मेरे जीवन का।[4]

1- भगवान राम, पृ0 174

2- निषादराज, पृ0 19

3- वही, पृ0 34

4- भगवानराम पूर्वचरित, पृ0 108

वे पिता दशरथ के इतने प्रिय थे कि उनके बिना दशरथ जीवन भी धारण नहीं रख सकते —

"बिना राम के रह न सकेंगे मेरे तन में प्राण"[1]

राम के लिए पितृ-आज्ञा ही सब कुछ थी। वे बड़े से बड़े एवं छोटे से छोटे कार्य को पिता की आज्ञा के बिना सम्पन्न नहीं करते थे —

आज्ञा लेकर पूज्य पिता की, कर करबद्ध प्रणाम।
शंकर शैल समान ज्योतिमय भवन गये निज राम॥[2]

वन गमन के समय उनकी भावना देखिए —

क्या मैं हूँ कारण विपत्ति का क्षुब्ध राम बोले
× × × × × ×
पित्राज्ञा से मुदित मन मैं अग्नि में भस्म हूँगा।[3]
× × × × ×
जाऊँगा मैं वन विरत हो राग के बन्धनों से
होगी चिन्ता रहित मन में हर्ष मग्ना विमाता
ईर्ष्या द्वेषानल शयन से तोष होगा प्रजा का।[4]

आदर्श शिष्य :—

पितृ अनुरक्ति की तरह उनकी गुरू भक्ति भी श्लाघनीय है। वे जैसे गृह में पिता की आज्ञा से छोटे बड़े कार्य करते थे, वैसे ही आश्रम में नित्यकर्म जैसे निम्न कार्य भी गुरू आज्ञा बिना नहीं करते थे।

कौशिक बोले वत्सराम विश्राम करो
नयनपुटों की निद्रागर्भित क्लान्ति हरो।
गुरू पद-रज ले राम और सौमित्र चले,
हुए शयित सन्निकट मुक्त आकाश तले।
शैया शायी ऋषिकुल कैरव चन्द्र हुए
पद सेवा संलग्न अनुज सानन्द हुये॥[5]

1- भगवानराम, तपोवन बिहार, पृ0 50
2- वही, पृ0 16, 3— वही, पृ0 64
4- वही, पृ0 80,
5- भगवान् राम पूर्व चरित, पृ0 107

कोमल कलेवर श्री राम जब आश्रम में तृण-शय्या पर शयन करते तो विश्वामित्र के लिए शोच्य विषय बन जाते थे।[1] वे राम को अपनी तपस्या की सिद्धि की तरह समझते थे -

कौशिक ने हर्षातिरेक से कण्ठ लगाया
मिली तपस्या-सिद्धि-प्राप्ति की मानों काया।[2]

आदर्श पति :—

आलोच्य महाकाव्यों में राम आदर्श पति के रूप में दृष्टिगत होते हैं। वे एकपत्नीव्रत हैं। वन-गमन के समय राम माँ से मिलने के पश्चात् पत्नी से भी मिलने जाते हैं —

गये सभ्राता निज श्रेष्ठ धाम को
विदेहजा से मिलने विदा घड़ी।[3]
× × × ×
ले तापसी वेश अतः सुशीले
अद्यैव जाता वनमार्ग लेने।
× × ×
लेने विदा मैं उरभारवाही
कर्तव्य निष्ठा अनुरक्त आया।[4]

सीता जब स्वयं वन चलने को उद्यत होती हैं तो वे कह उठते हैं —

आह दिया सुख है क्या अब तक कहते राम रूद्धवाणी से।
जो शूलों में वन चलने को कहूँ प्राण से प्रिय रानी से
देखूँ इन आँखों से अपनी, भूखी प्यासी दुर्बल पत्नी।
मैं तरू विन पल्लव का तुम हो, सरस सुमन की सुरभित डाली।
सूख-सूख कर लुट जायेगी , लिपट अंग अधरों की लाली।
रही बसो फूलों में प्रिय तुम, आ विलोक विसरू दुख घनतम।[5]

सीता निर्वासन के समय वे विचलित हो उठते हैं और सब कुछ छोड़कर उनके साथ रहने की सोचने लगते हैं —

1- भगवान राम, पूर्वचरित, पृ0 52
2- वही, पृ0 57
3- वही, तपोवनविहार, पृ0 92
4- वही, पृ0 94
5- सीता समाधि, पृ0 67

सब दुखों की जड़ यह सिंहासन, साथ प्रिया के जाऊँ तजकर।
काट हर्ष से लेंगे जीवन, विपिन अंक में प्रभु को भजकर।
यह सब राज्य भरत को देकर चलूँ साथ सीता को लेकर।[1]

उनका सीता के प्रति प्रेम निश्छल था। डा० राम कुमार वर्मा सीता परित्याग कथानक को स्वीकार ही नहीं करते। उनका कथन है कि राम के चरित्र को गर्हित करने के लिए राम कथा में कुछ अन्य प्रसंगों के साथ सीता-निर्वासन की कथा भी जोड़ दी गयी है। वे सीता परित्याग का घोर विरोध करते हैं —

जब सीता लछिन रहित चले क्यों निर्वासन का कटु प्रसंग।
जब पूर्ण गर्भ की गरिमा से थे शिथिल हो रहे अंग-अंग।
जब लघु मानव भी हो जाते हैं करुण देखकर यह प्रसंग
तब राम चन्द्र के उर में क्या सीता-निर्वासन की होगी उमंग।।[2]
× × × × ×
फिर क्या वे इतने स्वार्थी थे जो मेटे स्वयं लोकापवाद।
देने सीता को चिरकाल का, जीवन भर का विषमय विषाद।
यह कभी नहीं सम्भव है जब रघुवंश नीति का कीर्ति नाद।
गूँजा है चन्द दिवाकर तक है लोक वेद में साधुवाद।।[3]
× × × ×
तब कहते यह श्री राम प्रियतमें सीते, पापी रावण मर गया सभी दुख बीते।
तुम परम सती हो देवि जानता हूँ मैं तुम पतिव्रत में हो पूर्ण मानता हूँ मैं।
× × × × ×
फिर राज-सभा के बीच सहज ही कहते
कोई कलंक क्यों रहे राम के रहते?
मैंने सीता की अग्नि परीक्षा ली है
साक्षी मुझको श्री अग्नि वायु ने दी है।[4]

1- सीता समाधि, पृ० 220
2- उत्तरायण, पृ० 119
3- वही, पृ० 120 4- वही, पृ० 101

इस प्रकार श्री राम ने सीता के सतीत्व को जब अग्नि परीक्षा लेकर परख लिया था फिर एक रजक के कहने मात्र से गर्भवती सीता को कैसे निकाल देंगे? अतः सीता निर्वासन प्रसंग सत्य नहीं। इतर धर्मवालों का यह गोरख धंधा है कि राम का चरित्र लांछित हो जाय और हिन्दुओं की आस्था उनसे उठ जाय, क्योंकि यह कथा का प्रारम्भ जैन धर्म से सम्बन्धित वृहत्कथा से ही होता है।

आदर्श भ्राता :—

वे अपने तीनों कनिष्ठ भ्राताओं को अपने समान ही समझते थे। तभी तो अपने वन-गमन एवं भरत के राजतिलक को सहर्ष स्वीकार करते हैं। जब भरत चित्र - कूट लिवाने जाते हैं तब भरत को देख कर वे अत्यन्त दुःखी होते हैं —

जटिल प्रांजलि भून्नत बन्धु का
मुख विलोक विवर्ण विषाद रो
नयन से जल वत्सल राम के
तरल हो करूणा बहने लगी।[1]

इस प्रकार से श्री राम चन्द्र जी के चरित्र को चाहे जिस दृष्टि से देखें सर्वथा शुद्ध कांचन की तरह प्रतिभासित होता है।

भरत

भरत का चरित्र आलोच्य महाकाव्यों में इतनी उदात्तता ग्रहण किये हुए है कि कहीं-कहीं राम के चरित्र को भी पीछे कर दिया है। उनका ~~कौटु~~ कौटुम्बिक प्रेम, भ्रातृ स्नेह के लिए सम्मोहन का कार्य करता है। उस अयोध्या के मिले हुए राज्य को इस तरह अस्वीकार कर देना मानो वह मिट्टी का ढेला हो, और भी उत्कृष्ट बना दिया है। जहाँ आज थोड़ी सी सम्पत्ति के लिए व्यक्ति जघन्य अपराध करने को उद्यत है वहीं भरत इतने बड़े राज्य का परित्याग कर देते हैं। वे अत्यन्त दयालु हैं क्योंकि यह जानते हुए कि कुब्जा के कारण ही मेरा सम्पूर्ण परिवार इस दशा को प्राप्त हुआ, उसे शत्रुघ्न द्वारा दण्डित करने पर छुड़वा देते हैं —

1- भगवान राम, तपोवन विहार, पृ0 233

कुब्जा पृथ्वी पर घसिटती हो गयी क्षीण रही।
दीनावस्था प्रति भरत की वृत्ति जागी दया की।
बोले भ्राता! अवनिपतिता दीन है क्षम्य नारी
दासी को पीड़ित कर न हो दोषभागी स्वयं ही।
× × × ×
नारी अवध्य अबला अनुकम्पनीया,
भ्राता क्षमा अभयता अधिकारिणी है।
क्या दण्ड से कुकृति का प्रतिकार होगा,
सौदार्य मुक्त कर दो अब किंकरी को।[1]

वे राम के वनवास के कारण इतने दुःखी हैं कि उन्हें पितृमरण उतना कष्ट प्रद नहीं जितना राम, लक्ष्मण, सीता का वन में निवास करना है। वे स्वयं अपने को अपराधी मानते हैं —

किसको जाकर हृदय दिखाऊँ ?
किसे सुनाऊँ हृदय-कथा?
कौन सुने मेरे मानस की
शूलकारिणी हाय कथा?[2]

माँ कौशल्या के समीप इसीलिए अपना स्पष्टीकरण देते हैं और सौगन्ध भी खाते हैं कि यदि कैकेई माँ की सम्मति में यदि मेरा हाथ हो तो मुझे बहुत बड़ा पाप लगे —

नारी बालक वृद्ध-भूप वध से, विद्रोह से मित्र के
देने से विष अग्निदाह कृति से विश्वास के घात से।
प्यासे को असहाय आर्त जन को नैराश्य के दान से
होता है अघ जो जघन्नता में भागी उसी का बनूँ।[3]

उनका भ्रातृ-प्रेम एवं नीति सराहनीय है। राम के प्रति उनका अगाध विश्वास है —

1- भगवान राम, तपोवन विहार, पृ0 194

2- निषादराज, पृ0 108

3- भगवान राम, तपोवन विहार, पृ0 189

अति उदार हैं करूणाकर हैं
रघुवर मेरे हितकर्ता,
मात-पिता गुरूदेव सभी कुछ
स्वामी सखा सब दुखहर्ता।[1]

उनकी दृढ़ नीति देखिए —

प्रथित है रघुवंश परम्परा,
उचित है अभिषेचन ज्येष्ठ का
असत सम्मति आप न दें मुझे
अवध के नृप अग्रज राम हैं।[2]

दयालु, भ्रातृप्रेमी, दृढ़नीतिज्ञ के साथ वे अत्यन्त विनम्र हैं —

मानेंगे साग्रह विनय जो पूज्य आराध्य मेरे
लौटेंगे सानुज विपिन से साथ पृथ्वी सुता के,
होगी मेरे उर अनल की शान्ति हूँगा सुखी मैं
मैं ही निर्वासिन अवधि की पूर्ति का भाग लूँगा।[3]

राम के मुख से उनकी प्रशंसा सुनिए —

तेजस्वी हो, विमल मति हो, सत्व सम्पन्नता से
सद्धर्मावलम्बन दृढ़शीला सत्य रक्षावृती हो
हे भ्राता पावन चरित्र पीयूष सा है तुम्हारा
होगे कैसे विचल तुम व्यामोह से राज्य के।[4]

इस प्रकार आलोच्य महाकाव्यों में भरत का चरित्र श्री राम से किसी भी दशा में कम नहीं है।

1- निषादराज, पृ0 108

2- भगवान राम, तपोवन विहार, पृ0 195

3- वही, पृ0 194

4- वही, पृ0 239

लक्ष्मण का चरित्र भी आलोच्य महाकाव्यों में उच्चकोटि का है। वे राम के लघु भ्राता, उनके अनन्य भक्त, वीर, साहसी, वाक्पटु एवं विनम्र हैं। वे राम से अलग एक पल भी नहीं रह सकते —

राम से लक्ष्मण अलग पल एक रह सकते नहीं
वारि से होकर पृथक क्या मीन जी सकती कहीं?
अध्ययन भोजन, शयन, आमोद, मृगया के समय
राम होते हैं जहाँ शर चाप धर लक्ष्मण वहीं।[1]

लक्ष्मण राम से कहते हैं —

बड़ी अनुज्ञा देव आप की' बोले लक्ष्मण
छोड़ आर्य को अवध न जायेगा पर लक्ष्मण।
प्रभु आज्ञा दें चले आप भी संग विपिन में
किन्तु मुझे क्यों भेज रहे हैं आप भवन में
कहते कहते छलक पड़ी लक्ष्मण की आँखें
ओस बिन्दुओं से युत जैसे पंकज पाँखें।[2]

जहाँ लक्ष्मण अत्यन्त क्रोधी दिखाए गये हैं वहीं वे विनम्र भी कम नहीं प्रदर्शित किये गये—

झट उठे सौमित्र संभ्रम संकुचित
बन्धु पद रज ले विनय की मुखनमित
मोहनी से प्रभु कृपाक्षि विलास की
चेतना थी मुग्ध स्वामी दास की।[3]

वे जितना राम के भक्त हैं उतने माता सीता के भी। तभी तो उनके परित्याग को सुनकर वे इतने व्यथित हो जाते हैं कि आराध्य राम को सामान्य राजा की संज्ञा दे डालते हैं —

1- भगवान राम, पूर्वचरित, पृ0 43

2- निषादराज, पृ0 151

3- भगवान राम पूर्वचरित, पृ0 112

4- जानकी जीवन, पृ0 237

आज राजा राम के आदेश से
त्यागने मैं पूज्य माता को चला।
पाप-पोषे शाप पापी प्राण ये
लौट जाना है अयोध्या भी इन्हें।[1]

वे अत्यन्त कातर हैं एवं स्वयं को धिक्कारते हैं —

दैव! हा दुर्दैव!! तू जीता रहा
क्रूर लंका में न क्यों मारा गया
हे प्रभो? रक्षा करो, रक्षा करो???
आर्त वाणी से कहा सौमित्र ने।[2]
× × × ×
हाय सेवा वृत्ति तू भाई मुझे
निष्ठुरे, क्या आज ही के हेतु थी?
क्षुब्ध हो उद्‌बुद्ध ज्यों ज्वाला मुखी
ये चले सौमित्र भी भूचाल से।[3]

वैसे वे राम के अनुगमन में ही सारे जीवन को लगाना चाहते हैं तभी तो राम वन - गमन के समय कहते हैं —

कर्तव्य मुख्य मम है भवदीय सेवा
पादारविंद-रति जीवन साधना है।
ऐश्वर्य कीर्ति धन की उपभोग लिप्सा
उद्‌भूत नाथ मन में न कभी हुई है।
× × × ×
आज्ञा अतः त्वरित हो धनुवाण ले मैं
आगे चलूँ विपिन में वन मार्गदर्शी।
सेवा सयत्न सुखदा प्रभु भूमिजा की
होगा अखण्ड व्रत ही मम याम आठों।[4]

1- जानकी जीवन, पृ0 237 2- जानकीजीवन, पृ0223
3- जानकीजीवन, पृ0 226, 4- [illegible]राम, तथैव, पृ0 [illegible]7

माँ सुमित्रा के निम्नांकित आदेश का वे आजीवन पालनकरते हैं —

"आज से समझो जनक निज राम को
और माता जानकी को जान लो
इनकी सेवा ही तुम्हारा धर्म है
इनकी परिचर्या तुम्हारा कर्म है,
देवता ये ही तुम्हारे ईश हैं
पूज्य हैं धरणीश हैं, जगदीश हैं।[1]"

लक्ष्मण के साहस और वीरता के अनेक प्रसंग जैसे – धनुर्भंग ताड़का सुबाहु-वध, शूर्पणखा प्रसंग, लंका, भरत मिलाप आदि हैं। उनकी वीरता एवं साहस अनुपम है —

धन्वी हैं निर्भय हृदय हैं रक्त में उष्णता है
तेजस्वी हैं, धनुर्धर है, बाहु है शक्तिशाली
बैरी है सम्मुख सदल संग्राम की कामना से,
कैसे होगा दमन अब भी रोष ज्वालामुखी का।
× × × ×
मेरे रोषानल प्रबल से दग्ध होंगी दिशाएँ
काँपेंगे दिग्पति शरण त्रैलोक में भी न होगी।
बाणों से आहत भरत के शूर योद्धा गिरेंगे।
सेना सूखे तृण-निचय सी भस्म तत्काल होगी।[2]

इस प्रकार लक्ष्मण का चरित्र अत्यन्त ही उत्तम कोटि का वर्णित किया गया है।

शत्रुघ्न

आलोच्य महाकाव्यों में इनका चरित्र थोड़ा सा ही विकसित किया गया है। ये भरत के अनुगामी थे। उनका अनुकरण ये छाया की तरह करते थे।

भरत के छाया सदृश शत्रुघ्न रहते साथ हैं
भक्तिमूर्ति अनन्य है तीनों अनुज सुख धाम के।[3]

1- निषादराज, पृ0 32

2- भगवान राम, तपोवन विहार, पृ0 227

3- भगवान राम, पूर्वचरित, पृ0 41

वह अपने परिवार की अखण्डता के लिए प्रयत्नशील हैं तभी तो ननिहाल से लौटने के बाद जब राम वनगमन सम्बन्धी वृत्तान्त जानते हैं तो क्रोध से उबल पड़ते हैं और कहने लगते हैं —

पुण्यात्मा भूपति जब लगे भ्रान्त कर्तव्य होने
तेजस्वी लक्ष्मण सबल ने क्यों न रोका उन्हें था।[1]

फिर तो सम्पूर्ण क्रोध वे कुब्जा से निकालने लगते हैं —

दुष्टात्मा को पकड़ बल से क्रुद्ध हो के घसीटा
गूँजा अन्तर्गृह रुदन के नाद से पापिनी के।
छाया ऐसा भय कुपित शत्रुघ्न की उग्रता का
रक्षा में अक्षम चुप रही भीत कैकेयजा भी।[2]

लक्ष्मण शक्ति, अश्वमेध प्रसंग में उनके क्षत्रियत्व के दर्शन होते हैं। वे परिवार प्रिय व्यवहार कुशल के रूप में दिखायी देते हैं।

हनुमान

आलोच्य महाकाव्यों में हनुमान महान् शक्तिशाली, परम भक्त, अनन्य सेवक इन्द्रियजित्, वैराग्ययुत आदि रूपों में दृष्टिगत होते हैं —

निष्काम कर्म के सेवा के ये मूर्तिमान आदर्शपरम
विज्ञान, विराग, विवेक भक्ति, इन्द्रिय-जय के उत्कर्ष चरम।
ये शौर्य, दाक्ष्य, बल, धैर्य, नीति, प्राज्ञता, वाग्मिता में निरुपम
है इन्द्र, वरुण, यम और काल से भी बढ़कर इनका विक्रम।।[3]

यह बचपन से ही पराक्रमी थे। इनकी क्रीड़ा बादलों एवं सूर्य के साथ सम्पन्न होती थी। हनुमान अत्यन्त द्युतिमान् थे।

निशि में लख उनका सौम्यरूप हो जाता था शशि भी श्रीहत्।
उनके कर-पग की नखद्युति से उडगण होते थे कान्ति-प्रहत।
उनके क्रीड़ा के मृग से थे, कानन-केसरी मतंग शरभ।

1- भगवान राम, तपोवन विहार, पृ० 187

2- वही, पृ० 394

3- रामदूत, पृ० 192

गर्जित मेघों को खेलखेल कंदुक सा करते थे निष्प्रभ।

उनकी शैशव क्रीड़ाओं से असुरों के उर होते कंपित,

वन से तप करते ऋषियों के मुनियों के उर होते प्रमुदित।[1]

उन्हें तेज, रोगहीनता, अजेयता आदि वरदान स्वरूप मिले थे —

उन्हें सूर्य से वरदान के रूप में तेज, यम से रोगहीनता,

शिव ने अपने आयुधों से अजेयता एवं ब्रह्मचारिता का

वरदान दिया था जो उनमें सभी विद्यमान थे।[2]

वह अत्यन्त धीर, वीर, तथा बुद्धिमान थे सुरसा का आशीर्वचन देखिए —

अप्रतिम पौरूष के दानी केशरीनंद धन्य,

मति धृति में और दक्षता में तुम चिर अनन्य।

तुम भक्ति ज्ञान की और कर्म की पुण्यमूर्ति,

सिद्धियाँ करेंगी स्वयं तुम्हारी इष्ट पूर्ति।[3]

वह ब्रह्मचर्य के प्रतीक थे। रावण के रनिवास में स्त्रियों को देखकर वे अत्यन्त संकुचित हो उठे —

संकुचित चित्त अति हुये देख वह हनूमान,

जागी अन्तर में धर्मग्लानि चिन्ता महान।

परदारा दर्शन यह अति अविहित महापाप,

वृतभंग किया मैंने, अर्जित अति मनस्ताप।

किन्तु वह सन्तुष्ट थे कि कोई उन्हें विकार छू तक नहीं सका —

देखीं रावण कामिनियाँ मैंने बार-बार

पर छू न सका मेरे मन को कोई विकार।[4]

सम्पूर्ण महाकाव्यों में हनुमान की भक्ति भावना अत्यन्त प्रबल दिखायी गयी है। सीता से अपना परिचय वे इस प्रकार देते हैं —

1- रामदूत, पृ0 194

2- वही, पृ0 196

3- वही, पृ0 7   4- वही, पृ0 19

सब सेनापति हैं सीतान्वेषण में तत्पर,

मिल छान रहे हैं दश-दिशि और अम्बर।

मैं भी उनमें से एक राम-सेवक अनन्य,

दर्शन पाकर कृतकृत्य, जननि हो गया धन्य।[1]

उनकी राम सीता के चरणों के दर्शन की अभिलाषा सदा बनी रही। लव-कुश जब उन्हें लेकर सीता के समक्ष पहुँचते हैं तब हनुमान कहते हैं —

पदारविन्द अम्ब के कपीन्द्र ने लखे,

ऋक्षेन्द्र से कहा कि "मैं कृतार्थ हूँ सखे।

देखे सशोक जो अशोक वृक्ष के तले,

निश्शेष शेष हैं विशेष वार वे भले।[2]

इस प्रकार 'रामदूत' महाकाव्य में तो सम्पूर्ण कथानक ही उन पर आधारित है। अन्य महाकाव्यों — भगवान राम, जानकी जीवन, सीता समाधि आदि में भी उनके पौरुष भक्ति आदि गुणों की चर्चा सीता अन्वेषण से लेकर श्री राम की राजगद्दी तक की गयी है। विशिष्ट प्रसंग सीता अन्वेषण, लंकादहन, लक्ष्मण शक्ति, सीता का प्रत्यागमन आदि हैं। ये इतने चरित्रवान थे कि उनकी विशेषता श्री राम ने स्वयं अपने मुख से कही है —

प्रेम भरे अति कृतज्ञ उर से, मान गुणों का प्रभु अति करते।

भूरि प्रशंसा मान श्रेष्ठ दे, उर सबका वाणी से हरते।

भक्त शिरोमणि उन्हें बताकर जै जै करते मानवद्ध कर।[3]

दशरथ

अयोध्या के राजा अद्भुत वीर एवं युद्ध विशारद हैं। देवासुर संग्राम में उन्होंने इन्द्र की सहायता की थी। वे कुशल शासक, प्रजाप्रिय नरेश, दूरदर्शी एवं राजनीतिज्ञ थे —

धर्म नीति निपुण सुशासन दीर्घकालिक आपका,

रहा है त्रयलोक मध्य प्रतीक सौख्य आपका।

विश्व की सम्पूर्ण निधियाँ अकथनीय विभूतियाँ,

प्रजा को उपलब्ध है अतिसहज वाँछा पूर्तियाँ।[4]

1- रामदूत, पृ0 49

2- जानकी जीवन, पृ0 39।

3- सीतासमाधि, पृ0 207

4- भगवान राम, तपोवन विहार, पृ0 11

वे राम को राजनीतिक उपदेश देते हुये शासन नैपुण्य का रहस्य बताते हैं —

वत्स सुशासन की नरपति के एक मात्र हैं माप,
प्रजा नित्य धनधान्य पूर्ण हो, सुखी विगत संताप।
सबल शक्ति आयुध प्रहार का ऐसा हो आतंक,
हो भयभीत सशंकित कंपित शत्रु निरंकुश वंक।।[1]

उनका पुत्र प्रेम भी उच्चकोटि का है। वे राम से कहते हैं —

कैकेयी ने छलकर मुझे हाय धोखा दिया है,
बेटा, बन्दी कर तुम पिता को यहीं राज्य भोगो।
हा जाते हो यदि तुम नहीं प्राण क्यों छूटते हैं,
मेरा कैसा पवि हृदय है टूटता जो नहीं है।[2]

और पुत्र-वियोग में वे प्राण तक त्याग देते हैं —

वियोग में राघव पुत्ररत्न के
विदीर्णकारी करते विलाप यों
व्यतीत होते क्षण अद्र्धरात्रि के
शरीर को त्याग दिया महीप ने।[3]

विभीषण

विभीषण का चरित्र आलोच्य महाकाव्यों, राम के भक्त, देश चिन्तक, सुपथगामी, आदि विभिन्न रूपों में चित्रित किया गया है। सीता को लौटाने के लिए वे बार बार आग्रह करते हैं और अपमानित होने पर राम की शरण में आते हैं। युद्ध के स समय देश को त्यागने से देशद्रोह कहलाता है। अतः वे कहते हैं —

इतिहास मुझे कोसेगा बन्धु विरोध हेतु,
देखूँगा कैसे मैं नवनिर्मित सिन्धु सेतु।
संसार कहेगा मुझे देशद्रोही सब दिन,
अकुलाता है मेरा उर जाने क्यों पल छिन।।[4]

1- भगवान राम, तपोवन विहार, पृ0 16
2- वही, पृ0 114, 3— वही, पृ0 177
4- अरुण रामायण, किष्किन्धाकाण्ड, पृ0 422

उन्हें ऋषियों के समान सज्जन बताया गया है। लंका में रहते हुए भी वे अकलुष हैं —

देखा मारुत नन्दन ने कुछ चकित विभीषण गृह को।
उनको लगा किसी ऋषि के वे आश्रम में आये हैं
जिसने निज गार्हस्थ तपोमय साँचे में ढाला है,
पद्मपत्र पर पड़े हुए जल-बिन्दु सदृश रह जिसने
लंका में भी जीवन को निष्कलुष सदा रखा है।[1]

स्वदेश की चिन्ता उन्हें प्रतिपल आकर्षित करती रहती है —

वरदात्री धात्री वह अपनी जन्मभूमि चिर सुन्दर,
है दिगन्त तक जिसका श्यामल शस्यांचल लहराता।
मधुर मंद्र मुखर अतन्द्र उत्तुंग तरंगों द्वारा,
वाहित जिसको अर्पित है नित निधियाँ रत्नाकर की॥
× × × ×
लगता है वह सिहर उठी है किसी अनागत भय से
गहन किसी आतंक त्रास से पाण्डुर दीख रही है -
श्री विहीन निर्विण्ण दीन अति स्तब्धन्दग्ध-मरुस्थल सी।[2]

तभी उन्हें यह बरबस सोचना पड़ता है —

मेरा धर्म कहाँ है? अग्रज के अनुगत होने में?
अथवा उनके अन्यायों के प्रति विद्रोह वरण में?[3]

अतः वे दृढ़निश्चय करते हैं —

उसी स्नेह की उस प्रत्यय की शपथ दिलाकर उनको,
बार-बार मैं अनय-पथ पर चलने से रोकूँगा
चरण गहूँगा सविनय उनको फिर फिर समझाऊँगा।
रक्षा करो अमंगल से प्रभु अपनी अपने कुल की
लांछित अपमानित होकर भी उन्हें श्रेय के पथ पर
प्रेरित करने के प्रयास में रत सतत रहूँगा।[4]

1- रामदूत, पृ0 22,
2- वही, पृ0 66-67
3- वही, पृ0 30
4- रामदूत, पृ0 30

उन्हें अच्छी तरह नीति की भी जानकारी थी। उदाहरण के लिए —

जैसे हिम का अशनि जलज को नष्ट ध्वस्त करता है,
जैसे वात्या के प्रवेग से शरदम्बुजझर जाते,
जैसे तटवर्ती तरुओं को नदी ढहा देती है,
उसी भाँति दुर्नीति नृपों का सर्वनाश करती है।[1]

जब रावण उनके समझाने पर नहीं मानता बल्कि उल्टे उन्हें प्रताड़ित करता है, तो वे लंका में अपना सब कुछ त्यागकर राम से मिल जाते हैं और उनका सहयोग निश्छल होकर मनसा, वाचा, कर्मणा से करते हैं। विभीषण के पराक्रम तथा बुद्धि का चित्रण राम रावण युद्ध में होता है। इस तरह वे महाकाव्यों में देश-प्रेमी नीतिज्ञ, कुटुम्ब हितैषी, धार्मिक, अनीति विद्रोही, परमभक्त, उत्तम मित्र, भ्रातृ-प्रेमी आदि रूपो में प्रदर्शित किये गये हैं।

जनक

सप्तम दशकोत्तर हिन्दी महाकाव्यों में जनक महान तत्त्वदर्शी, अनासक्त कर्मयोगी के रूप में चित्रित हुए हैं। देहधारी होकर वे साक्षात् विदेह हैं —

वीतराग विदेह निस्पृह सर्वगुण संयुक्त
कर्मयोगी भूप हैं, योगेश जीवन मुक्त
लोक रंजन कार्य में ही व्यस्त रहते हैं सदा
प्रजा का कल्याण है उनकी अभीप्सित सम्पदा।[2]

वे नीति निपुण, ऋषियों का समादर करने वाले हैं —

ज्यों ही सुना जनक ने मिथलापुरी में
ब्रह्मर्षि गाधिसुत हैं मुनिसाथ आये
ले अर्घ्य भूप सहसा पहुँचे समंत्री
आराध्य पूज्य ऋषि की करने समर्चा।[3]

1- रामदूत, पृ० 26
2- भगवान राम, पूर्वचरित, पृ० 72
3- वही, पृ० 90

उनके राज्य की कल्पना सम्पन्नता उनकी कुशलता की परिचायक है -

गोद धरा की प्रेम ईश का रचना सुख से जीवन अनुपम।
देश धर्म बलि जाति, प्रसिद्ध ऋषि मुनि नृपवर उत्तम।
अपने-अपने धर्म कर्म का जनता राजा करते पालन
सुनियंत्रित शासन में सुख से रहता जन का स्वतंत्र जीवन।।
सुन्दर घर सब पुर अति सुन्दर सुन्दर मन्दिर पूजन सुन्दर
सुन्दर कौशल रचना सुन्दर, सुन्दर तन मन जीवन सुन्दर।[1]

आतिथ्य सत्कार में भी वे कुशल थे —

हर्ष प्रेम प्रपूर्ण मिथिलाधिप अवधिपति से मिले,
राग रंजित कंज युग मानो विनय सर में खिले
पूज्य रघुकुल केतु दशरथ का अनेक प्रकार से,
किया अभिनन्दन जनक ने सविधि बड़ उपचार से।[2]

इस प्रकार जनक का चरित्र भी बहुत उत्तम चित्रित किया गया है।-

सुग्रीव

आलोच्य महाकाव्यों में वानर प्रेषण से लेकर रावण वध के मूल में सुग्रीव का ही हाथ था। ये महावीर, सच्चे मित्र, युद्ध विशारद, तथा राम भक्त के रूप में चित्रित किये गये हैं। इनकी वीरता की प्रशंसा श्री राम ने भी सुनी थी —

शाखा मृगेश कपि पुंगव के गुणों की
विख्यात कीर्ति बहुधा हमने सुनी है।[3]

सुग्रीव की विनम्रता निम्नांकित शब्दों में छलकती है —

आपके पुण्य दर्शन से मेरी दृष्टि धुली।
आपकी कृपा के बिना चित्त में शान्ति कहाँ?
चंचल मन कभी यहाँ चंचल मन कभी वहाँ।[4]

1- सीतासमाधि, पृ0 5

2- भगवान राम, पूर्वचरित, पृ0 138

3- भगवान राम, तपोवन विहार, पृ0 350

4- अरुण रामायण, किष्किंधा काण्ड, पृ0 425

महावीर सुग्रीव श्री राम के पूर्ण अनुगामी थे –

रघुनाथ आपकी सेवा में हूँ तत्पर मैं
देकर जो वचन पूर्ण करता, वह वानर मैं
धीरज धरकर सोचिए उपाय कि करना क्या?
वीरों के हित है जीना क्या, है मरना क्या?
आज्ञानुसार हर काम करूँगा मैं निश्चय
है जहाँ कर्म में धर्म, वहीं है विमल विजय।।[1]

रावण

रावण के चरित्र में एक विचित्र विरोधाभास है। एक ओर तो उसे ज्ञानी, नीतिज्ञ, धैर्यवान, और वीर माना गया है और दूसरी ओर वह उत्पीड़क, अन्यायी, कामुक और अधार्मिक है। कहीं उसे भोगमयी संस्कृति का प्रणेता, अनार्य संस्कृति का समर्थक और भौतिकवादी माना गया है तो कहीं साम्राज्यवादी विचारधारा का पोषक। वह तंत्रशक्ति का अद्भुत ज्ञाता था। विभीषण कहता है --

रावण की तांत्रिक शक्ति सिन्धु में भी रहती है।
जल तल पर भी उसकी विज्ञान वायु बहती है।[2]

उसे अपने कुटुम्ब से विशेष स्नेह था। विभीषण पहले से भी उसका अनुगामी नहीं था। दोनों के विचार अलग-अलग थे, किन्तु उसका भ्रातृस्नेह विभीषण के ही शब्दों में द्रष्टव्य है---

अग्रज लंकापति ने मुझको स्नेह असीम दिया है,
इन्द्रजीत्सा ही मुझ पर वात्सल्य भाव है उनका।[3]

वह अत्यन्त कामुक है जिससे तृष्णा के कारण ही उसकी मति बदल गयी है। वह विवेक हीन हो गया है तथा बुद्धि सुसुप्त है। उसके हृदय में केवल गहन अन्धकार ही विद्यमान है ---

देवि काम कलुषित उनकी मति गति दोनों कुण्ठित हैं
लुप्त विवेक, सुप्त है प्रज्ञा, दुर्वासना-निशा का
तिमिर गहनतम केवल उनके अन्तर में जाग्रत है।[4]

1- अरुण रामायण, किष्किन्धा काण्ड, पृ0 406

2- वही, लंकाकाण्ड, पृ0 488

3- रामदूत, पृ0 30, 4- रामदूत, पृ0 26

रावण में सुन्दर व्यक्तित्व विद्यमान था। हनुमान ने उसे इस प्रकार देखा —

कपिवर ने देखा दशमुख के ज्वलित प्रतापानल को
मेरु-शिखर से सिंहासन पर शोभित कज्जल घन सा
राजमुकुट लख दश सूर्यों की प्रभा मंद होती थी।[1]

गुह

आलोच्य महाकाव्यों में गुह राम के परममित्र, उनके भक्त, वीर, धैर्यवान् आदि रूपों में चित्रित किये गये हैं। गुह राम के शैशवकाल में भी मित्र थे तथा उनके विवाह में भी सम्मिलित हुये थे —

पकड राम ने अपने कर से
गुह को अपने निकट बिठाया
"परम सखा ये गुह नरेश हैं"
सीता को सस्नेह बताया।
शैशव में सरयू के तट पर
हम सब मिल थे खेला करते,
मिलकर थे आखेट खेलते
मिलकर रूठा मचला करते।।[2]

वह अपने मित्र के लिए सब कुछ त्यागने को तत्पर हैं —

आँसू निकालकर किया स्नेह से आलिंगन
हर लिया प्रेम ने स्वयं प्रेम का पावन मन!
बोला निषादपति आप न भिन्न मुझे जानें
हे राम दीन गुह को बस आपना ही मानें
अपना ही समझें इस प्रदेश को हे कुमार
बस यही प्रार्थना मैं करता हूँ बार-बार।[3]

× × × ×

1- रामदूत, पृ० 74

2- निषादराज, पृ० 20

3- अरुण रामायण, अयोध्या काण्ड, पृ० 196

इस भू पर रहने में होगा कोई न क्लेश।
चरणों पर अर्पित है समस्त यह गुह प्रदेश
सेवा में कमी नहीं होगी, करता हूँ प्रण
सार्थक होने दे राम आज से गुह जीवन॥ [1]

राम उसके सौहार्द को जानते हैं —

बोले रघुबर हे मित्र तुम्हें मैं जान गया —
कितना पवित्र है प्रेम, इसे पहचान गया
ऐसा मत समझो गुह कि भक्ति से भिन्न राम
छिपती न छिपाए कभी शुद्ध श्रद्धा अकाम॥ [2]

गुह के- राम के मित्र के साथ उनके परमभक्त भी थे। उन्हें वे ईश्वर के रूप में भी स्वीकार करते थे। गुह की आन्तरिक इच्छा देखिए —

अश्रु सलिल से धोऊँगा पग,
अश्रु पान को दूँगा।
आँसू माला से पूजा कर,
अश्रु भेंट में दूँगा।
मन का रोना पी-पी मन में,
रघुबर नाम जपूँगा।
पाऊँगा बरदान प्रेम का,
और न कुछ चाहूँगा। [3]

गुह अत्यन्त साहसी एवं वीर भी थे —

आज गुह के चण्ड धनुष से,
निकलेंगे शर आग उगलते।
भीषण नागिनियों के सदृश,
रिपुओं के प्राणों को हरते।
आज पाट दूँगा पृथ्वी को,
भरतसैनिकों के रुण्डों से।
किलक-किलक कर काली देवी,
आज सजेगी नर-मुण्डों से। [4]

1-अरुणरामायण, अयो० पृ० 197, 2- वही, 198, 3-निषादराज, 150, 4-वही, 98

ये अत्यन्त बुद्धिमान् एवं नीतिनिपुण थे। तभी तो चित्रकूट की सभा में समयोचित बात कह सके —

> बोले गुह "सविनय है मेरा एक निवेदन
> आज्ञा दें यदि राघवेन्द्र तो करूँ निवेदन
> देवें शासनपट्ट आप जिसको कि लेकर
> शासन भरत करें आपके प्रतिनिधि बनकर।"
> गुह युक्ति को खूब सराहा सबने मिलकर
> देवें तब प्रभु चरण पादुका कहा भरत ने।"[1]

तुलसीदास

'उत्तरायण' में वर्णित तुलसीदास जी के जीवन का आरम्भ अत्यन्त कष्टप्रद रहा। बचपन में दूसरे के यहाँ भिक्षाटन में तिरस्कृत महाकवि गृह-गृह में जाकर जूठन माँगकर अपना पेट भरता था। जिस समय उन्हें प्यार मिलना चाहिए था, उस समय संसार की उदासीनता से वे परिपीड़ित थे।[2] उनका चरित्र अनिर्वचनीय है। अतः 'उत्तरायण' में वर्णित गोस्वामी तुलसीदास जी का चरित्र निम्नवत् है —

गुरू के प्रति कृतज्ञ-भाव :—

तुलसीदास अपने गुरू को साक्षात् ईश्वर समझते थे। उनका कथन था कि मुझ जैसे दीन हीन व्यक्ति, जिसे मातापिता ने भी त्याग दिया हो, दरन्दर की ठोकरें तिरस्कार तथा संसार की उदासीनता से परिपीड़ित को अपनाया तथा रामकथा को नियमतः सुनाकर रामानुरक्त बनाया —

> 5 घर घर की जूठन से भरता था पेट, हाय
> चारों फल जैसे चार चनों का था उपाय,
> पैरों पड़ निज दीन दशा कहता पुकार
> पर द्वारन्द्वार से ही मिलता था तिरस्कार।।

1- निषादराज, पृ0 143

2- उत्तरायण, पृ0 26

है नरहरि तुम नर नहीं, हुये हरि के समान,
जो कहीं न मिलता मुझे वही दे गये ज्ञान।
बचपन में तुमने दिये मुझे जो मनोभाव,
वे राम भक्ति के लिए बने प्रेरक प्रभाव।[1]

विरक्त :--

अपने यौवनावस्था में सुशील, सच्चरित्र एवं चन्द्रमा के समान सुन्दर पत्नी जो कि अत्यन्त विदुषी भी थी, को पाकर तुष्ट नहीं हुए। उसके इस शोक परिहास से कि --

नश्वर तन उससे करते हो दिन रात प्रीति
यदि यही राम-प्रीति रहे, न होगी विश्वभीति।।[2]

तुलसीदास तुरन्त यह कहते हुए निकल पड़ते हैं --

यह हँसी व्यर्थ है देवि व्यर्थ है तर्क जाल,
वह सूत्र कहाँ है? सधा रहे जिसमें प्रवाल।
जो बात कही है उसमें चाहे हो न खोट,
पर वह मेरे संस्कारों पर है कड़ी चोट।[3]
× × × ×
मैं चला वासना मय जीवन का किया त्याग।
× × × ×
अब विश्वभीत भी नहीं हुआ हूँ सावधान
रत्ने विरागमय रहने दो जीवनविधान।
× × ×
दो विदा, 'अरे चल पड़े इसी क्षण? हाय, हन्त,
जीवित मैं कैसे रहूँ, तुम्हारे बिना कन्त?[4]

अनन्य भक्त :-- ये श्री रामचन्द्र जी के उपासक थे। उनकी भक्ति में सदा लीन रहते थे। उनका कथन था ---

---

1- उत्तरायण, पृ0 27
2- वही, पृ0 31
3- वही, पृ0 33 4- वही, पृ0 34

मैं रामभक्त था, सदा रहा मैं भक्तिलीन,
स्वामी प्रभु थे श्रीराम और मैं दासदीन।[1]

वे गृहस्थ एवं वानप्रस्थ आश्रमों को छोड़कर सन्यास में ही लीन रहे तथा रामचरित्र-गायन ही उनके जीवन का ध्येय बना –

छोड़ूँगा गृहस्थ-धर्म और वानप्रस्थ भी,
केवल सन्यास मेरा एक मात्र व्रत है।
राम का चरित्र और उसकी ही वन्दना,
जीवन का ध्येय बने , यही मेरा मत है।[2]

उनके लिए ओंकार तथा प्रभु राम एक समान थे।[3] उनके हृदय में दृढ़ निश्चय था कि भक्त जिस रूप में प्रभु को चाहता है वह उसी रूप में मिलते हैं। मेरे प्रभु मुझ पर भी शीघ्र कृपा करेंगे क्योंकि यह बात 'सेवक सेव्य' भाव से निकली हुई है।[4]

परोपकारी भावना :--

उन्होंने अपनी परवाह न करते हुए यमुना में कूद कर एक डूबती कन्या को बचाया, किन्तु उनका परोपकारी मन उन्हें फिर भी धिक्कार उठा –

आज बचाई बाला मैंने जो कि बही मझधार में,
किन्तु दूसरी बाला रत्ना है आँसू की धार में।
कितना है वैषम्य प्रभो इस जीत और उस हार में,
कितना दाह अभी तक है उन स्मृतियों के अंगार में।[5]

धार्मिक भावना –

अत्यन्त उत्पीड़ित होते हुये भी उनमें हिन्दू धर्म के प्रति अगाध विश्वास था। उनका मत था कि किसी धर्म विरोधी ने ही हिन्दू धर्म के नायक श्री राम के चरित्र को गर्हित करने के लिए सीता निर्वासन जैसी कथा का प्रणयन किया, जो असत्य है, क्योंकि इसी प्रकार की कथाएँ शूद्र एवं एक ~~ब्राह्मण~~ ब्राह्मण[6] तथा कुत्ते की भी हैं जिन्हें तुलसी

1- उत्तरायण, पृ० 33
2- वही, पृ० 43
3- वही, पृ० 44
4- वही, पृ० 47
5- वही, पृ० 57
6- वही, पृ० 105

दास ने अपने 'राम चरित मानस'[1] में नहीं लिया और कथा के अन्त में ज्ञान भक्ति को ही स्थान देकर रचना समाप्त की एवं लव-कुश आदि की कथा त्याग दी।[2] इससे मर्यादा पुरुषोत्तम राम का चरित्र उज्ज्वल होता है जो हिन्दू धर्म के प्रतीक हैं।

जाबाल

'सत्यकाम' महाकाव्य का नायक तपस्वी जाबाल, जिसके गुरु प्रदत्त नाम पर ही महाकाव्य को अभिधा मिली, सत्यव्रती, गुरु भक्त, मातृ-भक्त एवं अतीव कर्मनिष्ठ प्रेमी सौम्य, सुशील आदि रूपों में परिलक्षित होता है। उसका यह प्रेम अनन्य मातृ-भक्ति प्रदर्शित करता है ---

दृषद्वती में नहा, अंग में मल मरद रज
लौट रहा था घर जाबाल चरण रज लेने।
उर पवित्र सुख का अनुभव करता था उसका
झलक रहा था जो प्रसन्न उन्मेषित मुख से।[3]
× × × ×
अपने को कर मुक्त, बढ़ा वह क्षिप्र चरण धर
माँ की पर्णकुटी को, ध्रुव सी स्मृति नभ में स्थित।
देखा द्वार पर से लेटी निज कक्ष तल्प पर
शरद कला शशि सी कृश माँ को वयस शुभ्र वपु,
उसने माथा टेक दिया शुभ श्री चरणों पर।[4]

वह माँ में परमशक्ति के दर्शन करता है --

माया की स्वामिन धरणी का क्रीड़ा-प्रांगण
क्षेत्र तुम्हारी अभिव्यक्ति का, वह तुमसे ही
सृजन शक्ति पा सार्थक होता ....।[5]

1- उत्तरायण, पृ0 104
2- वही, पृ0 122
3- सत्यकाम, पृ0 25
4- सत्यकाम, मातृशक्ति, पृ0 217
5- वही, पृ0 219

ऋचा उसकी प्रेमिका थी किन्तु जब माँ ऋता का हाथ उसे देती है तो वह उसे उसी प्रकार प्रसन्नता से ग्रहण करता है जैसे स्वयं ऋचा हो।

हो आया रोमांच, ऋचा को देख ऋता में
विस्मय ही विस्मय थे उसके लिए अकल्पित।[1]

जैसा उसका माता के प्रति स्नेह था ऋचा एवं ऋता के प्रति प्रेम था, वैसा ही गुरु के प्रति अनुराग भी उच्चकोटि का था।

सत्यकाम गुरुवर को देख गिरा चरणों पर
विस्मय से होकर विमूढ़। ऋषिवर ने उसके
साथ ऋता को आशीर्वाद दिया -'जीवन हो
सफल तुम्हारा ....।[2]

उसकी सुशीलता, नम्रता, बुद्धि आदि को देखकर गौतम कहते हैं -

ब्राम्हण का गुण। उच्च गोत्र दीपक तुम सम्भव
दीक्षा के अधिकारी लगते - साधु,साधु कह
करतल ध्वनि संग जय जयकार किया सुधी ने
चरणों पर गिर पड़ा प्रणत जाबाल चमत्कृत।[3]

वह प्यार में अनभिज्ञ एवं सरल हृदय, अकलुषित था जिसे ऋचा के इस प्रकार पूर्ण समर्पण में भी वह संयत है। वह प्रत्येक स्त्री को माँ स्वरूप जानता है -

धन्यवाद। यह भले निषेध-मुक्त होना हो,
मुझे नहीं करना प्रवेश उस वर्जित स्थल में।
कौन करेगा ऐसे निभृत निगूढ़, प्रान्त में
अनाधिकार घुसने का साहस? स्वर्ग द्वार वह।
माँ का मंदिर। उसकी अक्षय पावनता की
रक्षा करना प्रथम धर्म है मानवता का।[4]

1- सत्यकाम, मातृशक्ति, पृ0 223
2- वही, पृ0 223
3- सत्यकाम, पृ0 39
4- वही, पृ0 110

उसकी इस सरल भाव से अभिभूत हो कह उठती है —

सरले तापस एक यज्ञ ही से परिचित है
ब्रह्म ज्ञान का यज्ञ! ले चुका वह जिसका व्रत।[1]

वह कर्मनिष्ठ एवं सेवाव्रती है। उसकी प्रशंसा गौतम ऋषि से सुनिए —

पुत्र धन्य तुम! तुम से सत्य पिपासु साथ ही
सेवाव्रत में रत साधक विरले ही होते।[2]

गौतम

गौतम ऋषि आप्तकाम, अन्तर्दृष्टा, विद्वान, तपोधन एवं सहृदय है। जाबाल के शब्दों में

बोली वह, गौतम ऋषि से दीक्षा लेने को
उत्सुक हो तुम — आप्तकाम हैं सहृदय ऋषिवर।[3]

वे परम तपस्वी हैं जिनके प्रभाव से ही पशु भी जन्मजात वैर एवं भय को भुलाकर स्वच्छन्द विचरण करते हैं —

ऋषिवर गौतम का प्रसिद्ध आश्रम है पावन
कहते, पशु भी जन्मजात भय वैर भुलाकर
तप की महिमा से सहिष्णु हो गये वहाँ के।[4]
× × × × ×
पीपल तरू छाया में लेटा वृद्ध सिंह था
जिसे छेड़ता था किशोर मृग सींग गड़ाकर
वह दबोच उसको पंजों के छद्म पाश में
तीखे दाँत दिखा, हँसता क्रीड़ा प्रिय मृग पर।[5]

वे मानव मात्र को समान समझते थे। तभी तो जाबाल जब अपने माँ के संदेश को, कि उसे गोत्र नहीं मालूम क्योंकि पुत्र प्राप्ति उसे अनजाने में ही हुई थी, उनसे कहता है, तो वे तुरन्त उसे दीक्षा देने के लिए तैयार हो जाते हैं।

1- सत्यकाम, पृ0 111
2- वही, पृ0 196
3- वही, पृ0 25
4- वही, पृ0 12
5- वही, पृ0 13

"................. आवश्यक नहीं कहा ऋषिवर ने

शान्त भाव से, वटुक सत्यभाषी हो तुम, जो

दीक्षा के अधिकारी लगते ....।[1]

इस प्रकार उनमें गुरुता के सम्पूर्ण गुण विद्यमान थे।

कृष्ण

आलेच्य महाकाव्यों में कृष्ण के चरित्र को इतना उदात्त वर्णित किया गया है कि राम का चरित्र भी फीका लगने लगता है। कहीं उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम, कहीं उच्छृंखल रास रचयिता, कहीं साक्षात् परब्रह्म के रूप में चित्रित किया गया है। उनके चरित्र में कुछ अंश अति संक्षेप में यहाँ प्रस्तुत है —

अद्भुत शक्तिसम्पन्न :-- कृष्ण जब अबोध थे तभी उनके ऐसे कार्य थे कि सब कोई चकित रह जाता था।

(1) पूतना -स्तन का विषैला दूध,

पीते-पीते पी लिया प्राण को ही,

धाम से गिरी वज्राहत विटपी-सी पूतना।[2]

(2) क्रुद्ध कंस ने

भेजा सकटासुर को एक दिन

कि बाल कृष्ण ने

कोमल पदाघात से उसे भी मारा मुस्कराकर।[3]

(3) चक्रवात रूप में आया अब -

तृणावर्त असुर

कि हो गई ब्रज भूमि धूल धूसरित

× × ×

हाय कहाँ श्याम?

यशोदानन्द विकल व्याकुल आकुल

कि इतने में कहा किसी ने --

1- सत्यकाम, पृ0 39
2- कृष्णाम्बरी, पृ0 45
3- वही, पृ0 46

कि मारा गया तूफानी राक्षस
बैठा है उसके वक्षस्थल पर अब भी कृष्ण।[1]

अदम्य साहसी :--

कृष्ण के सम्पूर्ण कार्य साहस, बुद्धि, शक्ति के प्रतीक हैं। जिस कालीदह में लोग किनारे जाने में भी डरते थे कृष्ण उसमें कूद गये और विषपद्म, गेंद तथा विषधर के साथ बाँसुरी बजाते हुए, नृत्य करते हुये प्रकट हुये।[2] इन्द्र के कोप से प्रलय वर्षा प्रारम्भ हुई सभी कुछ जलमग्न होने लगा, किन्तु धन्य है कृष्ण का अदम्य साहस और उसका अद्भुत कार्य --

प्रलय वर्षा में बाँसुरी बजी,
तान सम्मोहन से ऊँचा होने लगा गोवर्धन-
सात दिनों तक वर्षा घनघोर
सात दिनों तक साहस की ऊँचाई,
लगा --
तर्जनी पर गोवर्धन-धारण कर लिया कृष्ण ने
साहसी सखाओं ने
लाठी का स्नेह सहारा दे दिया
परास्त कंस इन्द्रत्व
और
ब्रजेश ललाट पर विजय-तिलक।[3]

सर्वप्रिय एवं मोहक कृष्ण :-- वे ब्रज में कितने प्रिय थे, यह अक्रूर के साथ मथुरा जाते समय जान पड़ता है --

उधर उषा की अरुणाई,
इधर, असह दुस्सह करुणाई,
कृष्ण बलराम ने --

1- कृष्णाम्बरी, पृ0 47
2- वही,, पृ0 62-66
3- वही, पृ0 83-84

स्पर्श किये मातृ-चरण

कि हो गई मूर्छित

ज्योंही किया पितृ-चरणों का स्पर्श

कि फफक कर रोने लगे वे।

राधिका-नयनों में अनन्त अश्रु भरकर –

बैठ गये प्रशान्त कृष्ण रथ पर

बैठे बलराम[1]

× × ×

सम्पूर्ण गोपियाँ अत्यन्त व्याकुल हो उठीं —

वेदना विह्वल व्रज बालाएँ --

विलाप करने लगीं कृष्ण सम्मुख

सागर तरंग की तरह हाथ ऊपर उठा-उठाकर।

आकुल व्याकुल मुखमण्डल पर

असहाय उदासी

घिर गये अनगिनत आँचल

बिखर गये केश-शृंगार।[2]

रूदन ही रूदन।

रथ के चलते समय व्रजवासी क्या पशुपक्षी भी अधीर हो उठे –

धूल लग गई कपोलों में

करतल में, भाल में, बिखरे बालों में, अश्रुसिक्त चोलियों में।

सुन्दरियों ने रोक लिया रथ को पीछे से

गोपकुमारों ने रख दी घास अश्व के सम्मुख

सुदामा ने पुष्प-पंखुड़िया फेंकी मित्र मस्तक पर

पद्म चरण छूने लगीं ललनाएँ

मयूर बैठ गये रथ की छतरी पर

1- कृष्णाम्बरी, पृ० 98-99

2- वही, पृ० 99

गौवें निहारने लगीं अपने चरवाहे को,

झरने लगे वृक्षों के पत्ते

चर-अचर में कृष्ण-विछोह का प्रभाव।[1]

मथुरा में कृष्ण के पहुँचते ही सभी नर-नारी विमोहित हो गये।[2] उनका सुन्दर वदन मयूर पंख से सज्जित किरीट सबके मन को हरण करने लगा।

अद्भुत वीर :—

उनकी वीरता कुवलयापीड़ के हनन,[3] कंस के अखाड़े में उसके योद्धाओं के साथ उसके वध[4] तथा दुर्योधन की सभा[5] में देखने को मिलती है।

बुद्धिमान एवं अनुशासनप्रिय :—

कृष्ण सब कुछ जानते हुए विद्याध्ययन के लिए गुरु सान्दीपनि के पास गये जहाँ अनुशासन में रहते हुए अत्यन्त अल्प अवधि में सम्पूर्ण कलाएँ सीख लीं —

आश्रम — अनुशासन में—

सदैव कृष्ण — बलराम,

विद्याध्ययन के साथ-साथ स्तुत्य गुरु सेवायें।

चौंसठ दिनों में ही प्राप्त सर्व विद्या

गौरवान्वित अध्ययन इतिहास।[6]

नीतिज्ञ :—

जरासंध ने सत्रहबार चढ़ाई की, किन्तु कृष्ण से हारता ही रहा अन्त में कृष्ण ने अपनी दूरदर्शिता से मथुरा के निवासियों को लेकर द्वारका चले गये।[7]

उन्होंने दुर्योधन की सभा में शान्ति नीति का पक्ष और युद्ध की विभीषिका से सबको आगाह किया और यह भी कहा —

यह भी कहा कि श्रेष्ठ सुहृदों की बात न मानकर

अपनाता जो दुष्टों को, नष्ट हो जाता वह

1- कृष्णाम्बरी, पृ० 100
2- वही, पृ० 103
3- वही, पृ० 105
4- वही, पृ० 106
5- वही, पृ० 179
6- वही, पृ० 175
7- वही, पृ० 150

उदात्त प्रेम के बिना मनोरथ की सिद्धि नहीं

धोखा देने वाला स्वयं धोखा खाता,

ठगने वाला स्वयं ठगा जाता।[1]

वे कूटनीति के परम विज्ञ हैं राजनीति के साधक हैं —

कैसे भूलेंगे वे इसको कूटनीति के नायक।

कलह कला का सूत्र मानते,

इसको वे अधिनायक।[2]

उत्तम मित्र :—

मित्रतामें उनके समक्ष भेदभाव नहीं। वे छोटे से छोटे मित्र को अपने ही समान समझते हैं। तभी तो —

कृष्ण प्रेम से चकित-चकित सभी

स्वयं जब धोने लगे कृष्ण मित्र के पाँव को।

नमित वह मित्र वत्सलता से

कहाँ कृष्ण! कहाँ सुदामा।

किन्तु मित्रता में भेदभाव कहाँ

खोल दी कृष्ण ने सुदामा की पोटली और

फाँकने लगे सूखे चावल सबके समक्ष,

बाँटा सबको अपने हाथ से ही।[3]

समता की भावना :—

समत्व ही मेरी कल्पना का भविष्य

मेरे आकांक्षा-लोक में

न ऊँच न नीच कोई

न कोई धनी निर्धन।[4]

1- कृष्णाम्बरी, पृ0 178

2- अश्वत्थामा, पृ0 35

3- कृष्णाम्बरी, पृ0 161

4- वही, पृ0 162

परब्रह्म रूप :— गान्धारी के शब्दों में —

हे कृष्ण

तुममें धर्म-ज्ञान, ऐश्वर्य और वैराग्य की पूर्णिमा है,

धर्म ही कर्म-कसौटी है तुम्हारी

अदम्य हो तुम

महात्यागी

× × ×

तुम्हीं रसेश्वर हो, तुम्ही योगेश्वर हो,

कर्मेश्वर, ज्ञानेश्वर और परमेश्वर तुम्हीं हो कृष्ण।

आनन्द ही आनन्द व्याप्त है तुम्हारी लीला में,[1]

अर्जुन

अर्जुन आलोच्य महाकाव्य में परमवीर, धैर्यवान्, कुटुम्ब स्नेही आदि के रूप में जने जाते हैं। महाभारत युद्ध मेंजब चारों तरफ अपने कुटुम्बियों को देखा तो वे विचलित हो उठे —

हे कृष्ण।

अपने लोगों को मारकर, कैसे प्राप्त कर सकूँगा-

सुख और शान्ति?

बचाइये मुझे बचाइये, इस पाप से।

कुल विनाश का कलंक कैसे वहन करूँगा मैं

निकल आये शोकोद्विग्न नयन से अश्रु

त्यागकर धनुषबाण जाता हूँ रथ पार्श्व में,

नहीं किया जायेगा मुझसे युद्ध मधुसूदन हे,।[2]

पार्थ पराक्रम में सर्वप्रमुख थे। उनके समक्ष बड़े से बड़े योद्धा नहीं टिक पाते थे —

घिर गये अर्जुन,

आरम्भ गाण्डीव धनुष-टंकार,

1- कृष्णाम्बरी, पृ0 236—237

2- वही, पृ0 187

प्रहार-पर-प्रहार

अनगिन सेना धराशायी,

पार्थ ने किसको नहीं परास्त किया?[1]

इस प्रकार से अर्जुन कृष्ण के अनुयायी एवं सर्वप्रमुख वीर के रूप में सामने आते हैं।

अश्वत्थामा

आलोच्य महाकाव्यों में अश्वत्थामा परमवीर, परोपकारी, दृढ़ प्रतिज्ञ, चिरजीवी, पितृभक्त आदि रूपों में चित्रित किया गया है। पिता के मरण को सुनकर वह क्रोध से थर-थर काँपने लगा। उसकी भुजाएँ फड़क उठी, आँखों से ज्वालाएँ फूट पड़ी और वह प्रतिज्ञा कर बैठा —

तब तक अपने मुख के अन्दर
अन्न और जल नहीं गहूँगा,
अश्वत्थामा बोले जब तक
रिपु से बदला ना ले लूँगा।[2]

चिरजीवी परमवीर :--

चिरजीवी है अश्वत्थामा,
रोक उन्हें जो सकता
और नहीं है अपने मन में,
पाण्डव-हित कुछ रखता।
द्रोण भीष्म सम गाण्डीवी सम
धनुर्वेद का ज्ञाता,
ब्रह्मचर्य-तप-तेज-विभूषित
युद्ध नीति विज्ञाता।[3]

परोपकारी :-- जब अश्वत्थामा सुनता है कि भीमादि भानुमती की इज्जत लूटने को तत्पर है तो वह अपने प्राणों की बाजी लगाकर उन्हें सुरक्षित स्थान में पहुँचाता है। वह कहता है —

1- कृष्णाम्बरी, पृ0 207 2-- अश्वत्थामा, पृ0 24

3- अश्वत्थामा, पृ0 36

पाण्डव की सारी सेना भी
यदि पथ में मेरे आयेगी,
तो निश्चित यह जानो मन में
अपने किये पर पछतायेगी।[1]

बदले की दुर्भावना से युक्त :-

महाकाव्यों में केवल इसी कार्य ने अश्वत्थामा के चरित्र का स्तर नीचेकर दिया। उसने सोते हुये पाण्डवों के पाँच पुत्रों को मारडाला और कृष्ण के कहने पर उल्टे उन्हें ही इस प्रकार कहने लगा --

नहीं पाप था त्यक्त शस्त्र गुरु --
वर की हत्या करना,
और शिखण्डी के पीछे से
प्राण भीष्म के हरना?
नहीं पाप था दुर्योधन के
उरु पर गदा चलाना,
और कर्ण का रथ धसने पर
उस पर बाण चलाना।
बदला लेने को कहते ही
मैंने वही लिया है,
किन्तु योजना नई बनाकर
तुमने बचा लिया है।[2]

महाकाव्यों में अश्वत्थामा का चरित्र अत्यन्त उत्कृष्ट कोटि का वर्णन किया गया है। उसके चरित्र को यही बदले की दुर्भावना ही कुछ धूमिल बना देती है जिसके कारण ही वह देवरूप से इतना गिरा हुआ प्रतीत होने लगता है कि सामान्य प्रतिहिंसक मानव की कोटि में आ खड़ा होता है।

1-अश्वत्थामा, पृ0 75
2- वही, पृ0 106

भीम का चरित्र आलोच्य महाकाव्यों में गिरा दिया गया है। वह वीर तो है किन्तु अत्यन्त कामुक, घमण्डी एवं क्रूर है —

कृतवर्मा ने कहा सुना है
मैंने भी यह कुछ लोगों से,
भीमसेन था उच्छृंखल अति
डरी हुई कौरव वधुओं से।
वस्त्र किसी के खींचे उसने
और कहा कुछ कहीं किसी को,
धूर्त हृदय से छलबल करते
आलिंगन में लिया किसी को।[1]
× × × ×
नाम कृष्ण का सुनकर भागा
तभी भीम यह दुष्कर कर्ता,
दुखी जनों के मन को पीड़क
वैरी नारी लज्जा हर्ता।[2]

वह युद्धनीति का उल्लंघन भी करने वाला है। भानुमती का कथन देखिए —

किन्तु भीम ने युद्ध शान्ति पर
मेरे पति को है संहारा,
युद्धनीति का उल्लंघन कर
जंघाओं पर शस्त्र प्रहारा।[3]

वह उद्दण्ड होते हुए अत्यन्त कामुक था —

सारे ही रिपु मार गिराये
क्रोध शान्त पर हुआ न मेरा,
उसको शान्त करूँगा अब मैं
पतिव्रत्य भंग कर तेरा।

1- अश्वत्थामा, पृ0 53
2- वही, पृ0 54
3- वही, पृ0 70

कहता "प्यारी दुर्योधन अब
कभी न जग में लौट सकेगा,
पर अनुयायी भीम तुम्हारा
सुनो सुन्दरी सदा रहेगा।[1]

वह घमण्ड से चूर है तभी तो कहता है —

मैंने मारा चुन चुन उनको
जो करते थे गर्व महान्,
जंघाएँ तोड़ी उस नृप की
दुःशासन शोणित कर पान।[2]

किन्तु कृष्ण के समझाने एवं धिक्कारने पर वह अपने किये पर दुखी होता है एवं प्रायश्चित करता है —

धर्मपुत्र के धर्मराज्य में
काँटा बनकर मैं उभरा,
ललनाओं को दिया कष्ट और
शिशु वृद्धों में बना बुरा।
प्रायश्चित करूँगा अब मैं
वासुदेव अब करो क्षमा,
धर्मपुत्र दो दण्ड मुझे तुम
अपराधी मैं यहाँ खड़ा।[3]

इस प्रकार भीम का चरित्र अत्यन्त मनोवैज्ञानिक ढंग से प्रदर्शित किया गया है क्योंकि जब उसे अपने किये का भान होता है तो वह अत्यन्त लज्जित होता है एवं प्रायश्चित करने के लिए भी तत्पर हो जाता है और पहले वह अपनी विजय से इतना घमण्डी हो जाता है कि उसे मर्यादा का तनिक भी ध्यान नहीं रहता।

1- अश्वत्थामा, पृ0 71

2- वही, पृ0 77

3- वही, पृ0 85

द्रोण

गुरू द्रोणाचार्य कौरव एवं पाण्डवों दोनों के गुरू थे। वे यशस्वी, विद्वान् धनुर्विद्या एवं युद्धकला में सर्वश्रेष्ठ, चरित्रवान् एवं अत्यन्त वीर थे। वे जानते थे कि दुर्योधन के साथ रहकर वे अन्याय का साथ दे रहे हैं किन्तु उसके राज्य में रहने के कारण उन्हें वाध्य होना पड़ा,। फिर भी उनके अन्दर पाण्डवों के प्रति स्नेह था तभी तो उन्होंने पाँचों को पकड़-पकड कर छोड़ दिया था —

पकड़-पकड़ कर पाँचों पाण्डव
बारी-बारी छोड़ चुका था,
रण में उनको औ कर लज्जित
उन सबका मन तोड़ चुका था।[1]

वे अत्यन्त वीर , साहसी एवं चतुर थे —

पाण्डव वीर चमू में ऐसा
नहीं कोई था धीर धुरंधर,
जो आता उस शूर वीर के
सम्मुख लड़ने को भी क्षण भर।
× × × ×
और वीर जो आया उसके
सम्मुख लड़ने को उस रण में,
तुरत पहुँच वह गया बाण पर
उसके चढ़कर शमन सदन में।[2]

उनका पुत्रप्रेम दशरथ जैसा था जिससे अश्वत्थामा के मरने की झूठी खबर के सुनकर उन्होंने प्राण त्याग दिया —

इसी समय -
युधिष्ठिर -घोषणा
कि मारा गया अश्वत्थामा
नर या कुंजर पता नहीं

1- अश्वत्थामा, पृ० 3

2- वही, पृ0 3

किन्तु अश्वत्थामा मारा गया।

सुन, पुत्र-मृत्यु का समाचार

हु शोक विह्वल द्रोणाचार्य।

चतुर्दिक निराशा एकाएक

बैठ गये वे होकर हताश।[1]

उसी समय ही धृष्टद्युम्न वह

पहुँचा सम्मुख मृत गुरुवर के

खींचा खड्ग कोष से उसने

पकड़ केश मृत गुरु के सिर के।[2]

वे दुर्योधन को कलह की मूल समझते थे। इसीलिए जब उसने उन्हें कायर कहा तो वे कह उठे —

कायर कहा मुझे है तुमने।

धरो शस्त्र निज अभी मिटा दूँ,

कलह मूल को औ दुर्मति को

इसी भूमि पर अभी सुला दूँ।[3]

इस प्रकार वे अत्यन्त नीतिज्ञ, परमवीर, चतुर, पुत्रप्रेमी, धर्मज्ञ, युद्धविशारद आदि के रूपों में पाठक के सामने उपस्थित होते हैं।

कंस

आलोच्य महाकाव्यों में कंस का चरित्र अत्यन्त निंदनीय है। क्रूरता की चरमसीमा उसमें विद्यमान है। वह घमण्ड से उन्मत्त है --

कंस हूँ कंस

विख्यात है मेरे कारण क्षत्रिय-वंश !

कौन कर रहा आज मेरी शक्ति का अपमान?

उसे पता नहीं क्या

कि अतुल पराक्रमी हूँ मैं,

प्रणाम करतीं दसों दिशाएँ मुझे,

कौन अपरिचित है मथुरा-महानता से?[4]

1- कृष्णाम्बरी, पृ0 209   2- अश्वत्थामा, पृ0 21   3-- अश्वत्थामा, पृ0 6

4- कृष्णाम्बरी, पृ0 6

मेरी अंगुलियों में शक्ति है तारे तोड़ने की
मेरी भुजाओं में बल है पहाड़ ढाहने की
ताल वृक्षों को उखाड़ सकता हूँ मैं
शान्त हो सकता है समुद्र मेरे इंगित से
मेरे भय से भाग सकते हैं दर्पदीप्त मेघमण्डल।[1]

दुर्नीति पोषक :—

उसका विचार है कि सिंहासन ही सब कुछ है। जिसके पास राज्य की शक्ति है वह सर्वथा समर्थ है —

अनुभव किया मैंने-
कि सर्वोपरि है राजनीति की शक्ति
सिंहासन के आगे सब कुछ फीका है,
शक्तिशालिनी राजनीति
मूर्ख मानती है सबको
ज्ञानी-विज्ञानी-पण्डित-गुणी सबके सब दास है उसके।[2]

वह पूर्णरूप से दमन में ही विश्वास करता था —

ज्वाल-वासना जेठी दोपहरी में रावणी धूप ठहाका
ग्रीष्म सर्पिणी लाखों लपलपाती लाल जिह्वाओं से
चाट लेती ज्यों ताल तलैयों का जल
अहं गर्जित कंस-युग के
सोखा ली असुर-उत्तप्त साँसों से सारस्वत सरसता।
× × × ×
सहारा नहीं कोई
सर्जनात्मक देवता त्राहि-त्राहि करते
क्षुधित प्रणेता स्नेहहीन मरते
जीते वे ही
कंस कृपा जिन पर।[3]

1- कृष्णाम्बरी, प0 7
2- वही, पृ07
3- वही, पृ0 14-15

संस्कृति विद्रोही :--

उसके काल में संस्कृति का उत्थान बहुत दूर रहा। उसने तो पाण्डुलिपियाँ जलवा दीं धर्म ग्रन्थ नष्ट करा दिये —

चकराती—डगमगाती स्थिति में
असम्भव कला-संस्कृति-उपासना[1]
× × × ×
जलवायीं कंस ने —
वेद-शास्त्रों की पाण्डुलिपियाँ,
आग लगवायी ग्रन्थिल तालपत्रों में
स्वयं को असुरेन्द्र घोषित कर —
स्थापित करवायीं अपनी मूर्तियाँ भी देवालयों में।[2]

क्रूर शासक :— वह इतना क्रूर था कि उसकी कुख्याति सब जगह फैलने लगी थी --

कंस ने कंसत्व छोड़ा नहीं -
असुरत्व से मुँह मोड़ा नहीं
दानवी सम्बन्ध को तोड़ा नहीं
पहले से अधिक --
उसकी कुख्याति —
रावण की भाँति
किया उसने साम्राज्य विस्तार।[3]

उसने वसुदेव देवकी जो निरपराध थे कारावास में डाल दिया। अबोध सात शिशुओं को पछाड़कर मार डाला। आठवें में कृष्ण की जगह मायाशक्ति को उसने उठा लिया और कहा —

पुत्र हो या पुत्री-
कंस क्षमा नहीं करेगा -
नहीं करेगा, नहीं करेगा

1- कृष्णाम्बरी, पृ0 15

2- वही, पृ0 25   3- वही, पृ0 24

लाओ उस मृत्यु-माया को

पटक दूँ पाषाण-खण्ड पर?

अन्तिम शत्रु वही है --

वही है, वही है।[1]

किन्तु वह छूट गई और आकाशवाणी हुई कि तेरे मारने वाला उत्पन्न हो चुका है।[2] इस प्रकार कंस में दुर्गुण ही दुर्गुण ही दिखाये गये हैं।

दुर्योधन

आलोच्य महाकाव्यों में दुर्योधन को भी कंसकीतरह विलासी, दुर्नीतिपोषक, अन्यायी, प्रजाशोषक के रूप में चित्रित किया गया है। द्रोणाचार्य के शब्दों में --

औ' अनीति तो की है तूने

पाण्डुसुतों को त्रास दिया है,

की अपमानित उनकी पत्नी

फिर उनको वनवास दिया है।

लाक्षागृह में उन्हें जलाने

का षडयन्त्र रचा फिर तूने,

भीमसेन को औं' विष देकर

चाहा मरवाना था तूने।[3]

उसकी विलासिता सम्पूर्ण राज्य में फैल चुकी थी। छोटे सा छोटा एवं बड़ा से बड़ा व्यक्ति विलासिता में निमग्न था। द्यूतक्रीड़ा राजपुरुषों का व्यसन बन गया था --

अधिकता उद्दण्डता की,

सर्वत्र जुए -

खेलते राजपुरुष थे।

विलास में डूबे सुवर्ण गर्वी अधिकारी,

सर्वत्र ईर्ष्या-द्वेष, छल-कपट

गौण निष्पक्षता पक्षपात प्रबल

1- कृष्णाम्बरी, पृ0 36-37, 2- वही, पृ0 37, 3- अश्वत्थामा, पृ0 5

अन्ध शासक का अन्धा प्रशासन अनुशासन विहीन
निरंकुश अन्धकार में प्रकाश कहीं-कहीं ही।[1]

उसके इस प्रकार के विलासी राज्य में स्त्रियों का चरित्र अत्यन्त निम्नकोटि का हो गया था —

राजधानी में भोग विलास की प्रधानता
चपल अप्सरा-वेश्या-सी-नारी-वेशभूषा
इत्वरा तरुणियाँ अभ्यस्त नयनास्त्र प्रयोग में
वाल युवतियाँ पथ-पथ पर कपोतवक्ष फड़फड़ातीं,
चंचला मुखाकृति पर अश्लीलता-छटा,
दन्तकान्ति की विद्युत लहर रंगे रंगे ओठों पर
अप्रत्याशित बाढ मृग-गत्या सौन्दर्य-सरित में।[2]

उसकी अन्याय नीति के कारण सम्पूर्ण राज्य में अन्याय ही अन्याय दिखाई पड़ता था। सभी भेदभाव से त्रस्त एवं शोषण पीड़ित थे —

अन्याय आम और अधर्मपूर्ण व्यय-गठबन्धन,
बहुत बढी धनशक्ति-महत्ता,
अधिक घटा विद्या-प्रभाव
सुरा मत लड़खड़ाती वायु
संस्कृति तस्करी खुल-खिलकर
सैनिक हस्तक्षेप से शान्त झगड़े
अधिकता उद्दण्डता की,
× × ×
दुस्सह भेद-भाव,
असह शोषण-प्रभाव।[3]

इस प्रकार दुर्योधन की दुर्नीति के कारण उसके राज्य में सर्वत्र अराजकता विद्यमान थी।

1- कृष्णाम्बरी, पृ० 145

2- वही, पृ० 144

3- वही, पृ० 144-145

धृतराष्ट्र

धृतराष्ट्र का चरित्र अत्यन्त मनोवैज्ञानिक है। वह दुर्नीति के इसलिए भागी बने कि पुत्रों पर अति स्नेह था एवं उनके सभी पुत्र अनाचारी थे। वे अच्छी तरह जानते थे कि विधिविधान को कोई उलट नहीं सकता, कर्म का फल निश्चित मिलता है —

पुत्र ममता ने विषम बना दिया हृदय को,
जैसे काले-काले पर्वत शिखर पर -
बिजली चमकती और तुरत मिट जाती —
वैसे ही कृष्ण सन्देश इस कान से आया, उस कान से चला गया।
नियति नियन्त्रित व्यक्ति के लिए —
धर्मोपदेश का महत्त्व क्या?
कर्मफल भोग रहे हम पूर्वजन्म का
विधि-विधान को उलटने वाला कौन पुरुष?[1]

उनके अन्धेपन के कारण ही लोगों ने मनमानी की। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया कि मेरा राज्य नहीं यह तो सम्पूर्ण कौरवों का है —

राजा मैं नहीं कौरवगण हैं
उन्होंने जो चाहा, वही किया मैंने,
कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं मेरा
अन्धेपन का लाभ उठाया है लोभियों ने,
राग रंग में डूब गये हैं वे सभी
विलास-उल्लास में डूब गई उनकी चेतना,
स्वार्थवश ही हो रहा महाभारत,
इस तिमिर युग का —
सबसे बड़ा असमर्थ व्यक्ति हूँ मैं।[2]

उनके अन्दर तर्कसंगत विमल मति विद्यमान थी। अन्धेपन के कारण उन्हें क्षोभ है —

मैं जीवित हूँ पर मुझमें जीवन नहीं,
मैं धनी हूँ पर मेरे पास धन नहीं

1- कृष्णाम्बरी, पृ० 148

2- वही, पृ० 201

परतंत्रता की प्रतिमूर्ति हूँ मैं,
मेरे भाग्य में स्वतंत्रता नहीं,
इसके योग्य भी नहीं मैं।
कितनी आशा की जा सकती है —
एक अयोग्य अन्धे शासक से।[1]

उन्हें कृष्ण द्वारा अर्जुन को उकसाने से क्षोभ है। उन्हें विश्वास है कि यदि कृष्ण प्रयास करते तो यह महाभारत की ज्वाला न धधकती —

कृष्ण ने एक नया दर्शन देकर —
झोंक दिया अर्जुन को सर्वनाश की ज्वाला में।
वह बेचारा नहीं चाहता था युद्ध
किन्तु जीत लिया गया बुद्धि द्वारा उसका हृदय।
युद्ध का उत्तरदायित्व —
अब कौरव-पाण्डव पर नहीं स्वयं कृष्ण पर है।[2]

उन्हें यथार्थ प्रिय था। वे पाण्डवों के प्रति कम उदार नहीं थे। अन्यायों के प्रति द्वेष था, किन्तु विवश थे। तभी तो अन्याय की जड़ शकुनि के लिए कहते हैं —

आग लगवा दी थी मेरे बेटों ने लाक्षागृह में।
दुःशासन ने चीर-हरण किया था द्रौपदी का।
सभी षडयन्त्रों का जन्मदाता—
शकुनि अभी तक मारा नहीं गया क्या?
कर्ण के बदले यदि वही मारा जाता —
तो मुझे प्रसन्नता होती संजय।[3]

कृष्ण द्वारा निहत्थे कर्ण पर वार कराये जाने पर वे कृष्ण को भी धिक्कार उठते हैं और कहते हैं —

अन्धा हूँ मैं
किन्तु, आँख वाले कितने अन्धे, कौन कहेगा यह?

1- कृष्णाम्बरी, पृ० 202

2- वही, पृ० 203

3- वही, पृ० 212

सत्ता क्या अन्धों के हाथ मे ही रहेगी संजय।
कोई अन्तर नहीं कौरव पाण्डव में,
सब के सब सत्ता के ही लोभी।[1]

इस प्रकार धृतराष्ट्र का चरित्र अत्यन्त सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया गया है। वह अन्यायी नही, न ही अन्याय चाहता था। उसे सब कुछ अपने अन्धेपन के कारण सहना पड़ता था। वह स्वराष्ट्र में न्यायी विवेकी, लोभ-मुक्त राजा चाहता था। वह प्रजा को सब प्रकार से सुखी देखना चाहता था।

गाँधी

आलोच्य महाकाव्य में वर्णित गाँधी का चरित्र राम और कृष्ण से कम नहीं। जहाँ राम एवं कृष्ण संहार के द्वारा धरा को दुष्ट रहित करना चाहते थे वहीं गाँधी सत्य, अहिंसा, कर्म के द्वारा उन्हें सन्मार्ग पर लाना चाहते थे। वे दूसरे के प्राण लेना नहीं चाहते थे बल्कि अपने प्राण देकर भी दुष्ट प्रवृत्ति का विनाश करना चाहते थे। दुष्ट का नहीं, उन्हें पाप से घृणा थी पापी से नहीं। 'सत्यमेव जयते' महाकाव्य में वर्णित गाँधी के सम्पूर्ण चरित्र को यदि यहाँ प्रस्तुत किया जाय तो वह इतना विशद होगा कि वही आलोच्य ग्रन्थ का मुख्य विषय बन जायेगा अतः यहाँ पर अति संक्षेप में राम एवं कृष्ण की तरह ही उनके कुछ गुणों का वर्णन दिया जा रहा है --

अधिकार और आजादी प्रिय :--

महात्मा गाँधी का विचार था कि संसार में सभी प्राणी स्वतंत्र पैदा हुये हैं अतः किसी को भी अधिकार नहीं कि किसी की स्वतंत्रता में बाधा उत्पन्न करे। सबके अधिकार समान हैं। सबको स्वतंत्र रहना चाहिए --

दूसरी ओर जागृति का झण्डा थामे,
कुछ भारतीय थे दक्षिण अफ्रीका में।
इनमें थे मोहन दास करम चंद गाँधी
जिनको प्रिय थे अधिकार और आजादी।[2]

1-कृष्णाम्बरी, पृ0 21।

2, सत्यमेव जयते, पृ0 49

प्रथम आन्दोलनकारी --

गाँधी यद्यपि नहीं थे अब तक राजनीति के प्रांगण में,
किन्तु कर्म की आँधी थे वे उठा चुके चम्पारण में।
पुनः अहमदाबाद तथा खेड़ा में भी कर आन्दोलन
जीत चुके थे जो मजदूरों और कृषक जनता का मन।
वे गाँधी अब लीग-कांग्रेस के संयुक्तायोजन का
चले साथ देने, सुझाव रखा हस्ताक्षर आन्दोलन का।
× × × ×
यों कांग्रेस ने गाँधी स्वर का प्रथम कार्यान्वयन किया
अखिल देश में व्याप्त ~~कहा~~ कदाचित पहला ही संगठन किया।[1]

कर्मनिष्ठ एवं दृढ़प्रतिज्ञ :--

उनका कथन है कि सीने पर गोली खाने के बाद भी हमें आजादी के लिए कार्य करना है। भारत की दुर्दशा देख प्रतिज्ञा कि इस नश्वर शरीर को नष्ट करके भी आजादी लेना है --

मन ही मन रो उठे गाँधी--हा, यह कैसा बन्धन है
घात सहें कह भी न सकें हम, यह कैसा वन-शासन है
जैसा भी हो अब इस वन-शासन का अन्त कराना है,
भारत देश को इस विदेश-बन्धन से मुक्त कराना है,
आत्म सत्य को साक्षी करके मन में यह संकल्प लिए
राजनीति के रंग मंच पर गाँधी अब अवतरित हुये।[2]

वे आत्मा को सम्बोधित कर कह उठे --

हे आत्मा तू आज अडिग रह, तेरी सत्य परीक्षा है,
हे नश्वर तन, विचलित मत हो, तेरी शक्ति परीक्षा है,
कर्म! आज से कर्म तुम्हारा दूषित हृदय शोध करना
धर्म! आज से धर्म तुम्हारा है शासन विरोध करना।[3]

1- सत्यमेव जयते, पृ० 66

2- वही, पृ० 68

3- वही, पृ० 69

तथा जनता को उद्बोधित किया —

इस नवीन जन-नायक ने जनता को नया प्रबोध दिया,
सत्याग्रह का अर्थ बताकर एक नया उद्बोध दिया —
इस आन्दोलन में हम सबको अमित कष्ट सहना होगा
सीने पर गोली खाकर भी शस्त्र रहित रहना होगा
सत्याग्रह में लेशमात्र भी भाव न होगा हिंसा का
सत्यायुध उपयोग मंत्र है केवल एक अहिंसा का।[1]

उनका दृढ निश्चय देखिए —

नहीं मिल पाया अगर स्वराज्य,
नमक-कर हो न सका निःशेष,
प्राण छूटेंगे अथवा कभी
करूँगा आश्रम में न प्रवेश
न तोड़ा अगर नमक कानून
साक्षी है धरती-आकाश
समुन्दर की लहरों पर कहीं
तैरती होगी मेरी लाश।[2]

और अपने सविनय आज्ञा भंग द्वारा कैसा विस्फोट उत्पन्न कर दिया। यही उनका अमोघ अस्त्र था —

अब सविनय-आज्ञा-भंग पुनः
या असहयोग की जंग पुनः
हम झेल सकें यह ताब नहीं
गांधी का कोई जवाब नहीं
यह असहयोग का अस्त्र आह
कर देता है सब कुछ तबाह

1- सत्यमेव जयते, पृ० 70

2- वही, पृ० 173

शासन को करता छिन्न-भिन्न

कर देता हर इक शिरा छिन्न।[1]

<u>शान्तिनीति के पोषक :—</u>

उनकी नीति थी कि शान्तिनीति को अपना कर ही देश स्वतंत्र किया जा सकता है। उनका मत था कि पंजाब में डायर ने इसलिए हजारों भारतीयों को गोली से भुनवा दिया कि हम उग्रता धारण कर रहे थे। हमें हिंसा में विश्वास हो रहा था।[2] हमारा परम कर्तव्य है कि हम स्वनिर्भर हों। हमारे अन्दर विश्वास उत्पन्न हो, मदिरा-पान पूर्णतया बन्द हो, शिक्षा का प्रसार हो। सभी अपने-अपने धर्म अथवा कार्य में संलग्न हों, धार्मिक विद्वेष न बढ़े तभी स्वतंत्रता मिल सकती है।[3] और जब ईद के पर्व पर उपद्रव हुआ तो उन्होंने —

इक्कीस दिन का उपवास योग -

ले बैठे प्रायश्चित हेतु॥

सुन यह अनुशन-संकल्प कठिन

रूज-जर्जर, कृश तपसी तन का

हिल उठे धर्म के मतवाले

फल लखकर निज वहसीपन का।

× × ×

उस महासन्त को सबने मिल

एकता हेतु विश्वास दिया

तब उसने इक्कीस दिवस बाद

हो तुष्ट शेष उपवास किया।[4]

कौंसिल प्रवेश के लिए जब कुछ नेता बुलाये गये तो उन्हीं ने कहा —

बोले- मेरे अपने मत से

कौंसिल प्रवेश अनिवार्य नहीं

1- सत्यमेव जयते, पृ0 32।

2- वही, पृ0 79

3- वही, पृ0 109

4- वही, पृ0 111

क्या भला सफलता होगी जब
होगा रचनात्मक कार्य नहीं
कौंसिल प्रवेश सहयोग स्वयं
फिर असहयोग तो गलती है,
× × ×
अपनी तो साफ लड़ाई है
यह फूट कर्म किसलिए करें?
जनता लड़ती है मुक्ति-युद्ध
हम क्यों न उसी संग लिए मरें।[1]

गरीबों के प्रति स्नेह-भावना :—

उनका मत था कि भारत के निवासी 80% से अधिक गाँवों में रहते हैं। अतः उनका उन्नयन आवश्यक है —

भारत की जो अस्सी प्रतिशत जनता गाँवों में रहती है,
उसमें ज्यादातर जनसंख्या सदा अभावों में रहती है।
आजादी पाने के खातिर है उसका उन्नयन जरूरी
ग्रामों के उत्थान कार्य में है हम सबकी लगन जरूरी।[2]

लंदन में जाकर भी वे राजभवन में न ठहरकर निर्धनों के मध्य रहे। वे कहते थे —

जहाँ गरीबी रास रचाती मृत्यु तलक लेकर शैशव से
मैं उस भारत का प्रतिनिधि हूँ, मुझे प्रयोजन क्या वैभव से।
ईस्ट एन्ड की गलियों में वे नित्य सुबह टहला करते थे,
नन्हें-नन्हें बच्चों के संग बालक सम खेला करते थे।
पढ़ न सके गोरे जिस मन को वह उनके बच्चों ने बाँचा
दो दिन में विख्यात हो गये बस्ती-बस्ती गाँधी चाचा।[3]

1- सत्यमेव जयते, पृ0 107
2- वही, पृ0 221
3- वही, पृ0 207

साम्प्रदायिकता के विरोधी :—

उनका साम्प्रदायिकता के प्रति घोर विरोध था। लंदन में जब सम्मेलन में वे पहुँचे और वहाँ इसका बोलबाला देखा तो वे कह उठे —

यह स्वारथ का खेल घिनौना यह मांगों की आपाधापी
छह सहस्त्र मीलों की दूरी इसीलिए क्या हमने नापी?
सम्प्रदाय का विष तो अपने घर में ही हम पी सकते थे
औं अछूत भी अपना दामन वहीं बैठकर सी सकते थे।
× × × ×
सम्प्रदायवादी मत मुझको हरगिज अंगीकार नहीं है
हिन्दू और अछूतों का भी पृथक्करण स्वीकार नहीं है।[1]

जिन्ना सम्प्रदायवादी थे जिसने भारत के बँटवारे की बात उठाई थी। अतः गाँधी जी ने कहा कि बँटवारे के बात तो बाद में करनी चाहिए पहले जो दूसरे के यहाँ बन्दी है उसे मुक्त तो करायें —

किन्तु नहीं इसमें क्या हिंसा ये सब हैं मेरी शंकाएँ,
यदि वे घर के बेटे हैं तो पहले घर की आग बुझाएँ।
जब तक कुनबे पर संकट है तब तक काहे का बँटवारा?
इससे तो कुनबे के ही संग मिट जायेगा भाईचारा
हक सबको प्यारा लगता है बोझा लगता फर्ज निभाना
लाभ चाहते हैं सब लेकिन नहीं चाहते कर्ज चुकाना।
हमने तो मुस्लिम जनता का हक हरदम स्वीकार किया है
उनकी संख्या कम रहते भी समता का सत्कार दिया है।[2]
× × × ×
मुस्लिम भाई यह भी सोचें अभी देश पर पाबन्दी है
जिस माँ का वे दावा करते वह कारागृह में बन्दी है।[3]

1- सत्यमेव जयते, पृ0 209

2- वही, पृ0 251।

3- वही, पृ0 252

वसुधैव कुटुम्बकम् का भाव :—

वे सम्पूर्ण विश्व को अपना समझते थे। उनका कथन था कि मैं जातिविशेष का नहीं हूँ मैं तो विश्व का हूँ —

मैं तो जनता का सेवक हूँ,
मानवता का आराधक हूँ।
जो हिन्दू कहते हैं मुझको,
वे हैं नहीं समझते मुझको।
मैं हिन्दू हूँ मुस्लिम भी हूँ
मैं सिख हूँ और यहूदी हूँ
बंगाली हूँ, मदरासी हूँ।[1]

और लोग भी उन्हें इस प्रकार स्वीकार करते थे —

कोई कहता अवतार उन्हें
कोई ईश्वर बतलाता था।
हर बच्चा-बूढ़ा मस्तक से
उनकी पद-धूल लगाता था।[2]

उनका त्याग अद्भुत था। वे वस्त्र इसलिए त्याग दिये थे कि भारतवासी सभी सक्षम नहीं कि वस्त्र पहन सकें अतः मुझे भी पूरे शरीर में वस्त्र धारण नहीं करना चाहिए। उनका वेष देखिए —

मुखमण्डल पर बाल्य सरलता मस्तक पर चिन्तन रेखाएँ
आत्म-तेज-दीपित कृशकाया, ऊँचा तनु आजानुभुजाएँ
पग में चप्पल, कमर लंगोटी, तन पर ओढ़े सिर्फ दुशाला
विचर रहा था लन्दन भर में भारतमाता का रखवाला।[3]

इस प्रकार महात्मागांधी देश के लिए समर्पित व्यक्ति थे। उन्हें अपने लिए कुछ नहीं चाहिए। वे मात्र देश के लिए उत्पन्न हुए थे और उसी के लिए प्राण भी त्याग दिये।

1- सत्यमेव जयते, पृ0 333

2- वही, पृ0 125 3- वही, पृ0 208

तत्कालीन कृषि-सचिव अंग्रेज महाशय ह्यूम साहब का चरित्र गाँधी से किसी भी तरह कम नहीं था बल्कि अगर यह कहा जाय कि भारत के गाँधी क्या जनसेवी जितने भी नेता हुये उन्हीं से प्रेरणा ग्रहण की। वे उच्च पद में आसीन होते हुए सब कुछ अधिकार ग्रहण किये हुए, फूलों की सुखसेज छोड़कर मानवता के प्रतीक बने, दयालुता की मूर्ति बने। नहीं तो 1857 की क्रान्ति के बाद भारत-जन-मानस सुसुप्त हो चुका था, अंग्रेजों को स्वामी मान चुका था, किन्तु उन्होंने समझा कि यह अन्याय है। हमें किसी पर राज्य करने का अधिकार नहीं। अतः वे भारतवासियों में देशप्रेम की भावना जाग्रत करने में लग गये और 'राष्ट्रीय कांग्रेस' नामक संगठन की स्थापना की। वे अत्यन्त दयालु थे जनसेवा में सदैव तत्पर रहते थे –

कृषि सचिव भार धारे शासन सेवा में
वे मन से रत रहते थे जन सेवा में।
वह दशा देश की देखी प्रथम उन्होंने
दुर्दशा देश की देखी प्रथम उन्होंने।
उनका ही था यह सत्प्रयास, जिसका फल,
आगे चलकर बन गया देश का सम्बल।[1]

भारतवासियों की दशा देखकर उनकी आत्मा कराह उठी थी। अतः उनकी उदार भावना तमसाच्छन्न भारत के लिए दीपक की तरह सिद्ध हुई। ये देश की मृतप्राय स्थिति देख अत्यन्त दुखी थे। अतः —

ललकारा जनगण को सीधे शब्दों से,
निःशब्द हृदय उनके बींधे शब्दों से --
यदि आप देश के गण्यमान विद्वज्जन
चाहें करना साम्राज्य नीति-परिशोधन
सब काम छोड़ तब आगे आना होगा
सुख स्वप्न त्यागकर कष्ट उठाना होगा।
× × × ×
यदि ले न सकें निःस्वार्थ त्याग-सेवाव्रत
कर सकें न जीवन को समाज-सेवा-रत,

1- सत्यमेव जयते, पृ0 37

तब कहना होगा —"देश इसी लायक है
निष्क्रियता ही यह इसकी परिचायक है
× × × ×
तब कहना होगा — व्यर्थ कामना हित की
दुर्दशा उचित हो रही यहाँ शासित की।[1]

उनकी इस उदार चिनगारी से सम्पूर्ण देश में आग लग गयी। सभी देशवासी देवदूत रूप 'ह्यूम' के कृतज्ञ हो उठे जिन्होंने सर्वप्रथम उनके कल्याण की बात कही थी —

खाकर वह तीखी चोट, समझकर आशय
हो उठा क्षुब्ध सम्पूर्ण विश्वविद्यालय।
वे वाक्य वृन्द निकले अंगरेज हृदय से
हर भारतीय को लगे सचेतक जैसे।
× × × × ×
लग रहा तीर्थ ग्वालिया टैंक-जनपद था,
श्रद्धा विभोर हो उमड़ा ज्यों भारत था।
अधिवेशन स्थल की शोभा थी न्यारी
उल्लसित देखते थे सारे नर-नारी
प्रारम्भ हुई जब स्वतंत्रता की पूजा
पहला स्वर ह्यूम महाशय का था गूँजा।[2]
× × × ×
श्री ह्यूम महाशय का यश सबने गाया
कांग्रेस जनक कहकर सम्मान बढ़ाया।।[3]

इस प्रकार ह्यूम का चरित्र 'सत्यमेव जयते' में बहुत ही उज्ज्वल वर्णन किया गया है। उन्हें देवदूत की श्रेणी में स्थापित कियागया है।

1- सत्यमेव जयते, पृ0 38-39

2- वही, पृ0 40

3- वही, पृ0 43

स्वतंत्रता प्राप्त करने में दो तरह के व्यक्तियों ने कार्य किये -- प्रथम -- वे थे जो शान्ति पर विश्वास करते थे जैसे महात्मा गाँधी, जवाहर आदि, दूसरे - वे जिनका मत था कि आजादी तभी मिलेगी जब हम ईंट का जवाब पत्थर से देंगे, इनमें तिलक, सुभाष, भगतसिंह, आजाद बटुकेश्वर आदि थे। तिलक उग्रवादी नीति के पोषक थे। इनका मत था कि स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। हम चाहे जैसे हो उसे लेकर ही रहेंगे --

गोखले नीति से थे उदारता द्योतक,
थे तिलक उग्रता के अविचल संपोषक
× × × ×
पर तिलक लक्ष्य था नवविधान का रोपण
अंग्रेजी शासन का समूल उच्छेदन।
× × × ×
था किन्तु दूसरी ओर तिलक का नारा
है जन्मसिद्ध अधिकार स्वराज्य हमारा।
जैसे भी हो लेकर निज राज्य रहेंगे
भारत में अब न विदेशी ताज सहेंगे।
अधिकारों की थी भीख कहीं होती है ?
निज लक्ष्य हेतु हर लीक सही होती है।
कब तलक रहेगी भारत जनता सोती,
जब आठ-आठ आँसू भारत माँ रोती।
इसके सुस्मित के लिए उठो लड़ जाएँ,
चाहे लड़ते-लड़ते ही फिर मर जाएँ॥[1]

वे शासनगत होते हुए शासित नहीं थे। राष्ट्रसभा से जब उनका निष्कासन हुआ तो वे कुंठित नहीं हुये। उनका आदर्श हिमालय की भाँति अडिग रहा और एक नवीन दल का निर्माण किया --

---

1- सत्यमेव जयते, पृ0 52

जो शासन गत था किन्तु नहीं शासित था,
हा! राष्ट्र-सभा से ही अब निष्कासित था।
पर इस निस्कासन से वह कुंठित था कब?
आदर्श हिमालय का भू-लुण्ठित था कब?
अभिनव राष्ट्रिय दल खोला उसने अपना
एकाकी ही बल तोला उसने अपना।[1]

वे भारत माँ के प्रति समर्पित व्यक्ति थे उन्होंने देश की जनता की जागृति के लिए लेख प्रकाशित किये जो राम के धनुषवाण की तरह शासन के लिए सिद्ध हुए और –

तिलमिला उठी साम्राज्यवादिनी माया,
स्वाधीन तिलक फिर बन्दी गया बनया।
जो सह न सका क्षण भर स्वदेश पर शासन,
अब मिला उसे षट् वर्ष-देश निष्कासन।[2]

किन्तु वे दण्ड की अवधि समाप्त होते ही फिर अपने कार्य में जुट गये। इसी बीच गोखले की मृत्यु हो गयी जिससे भारतवासी विचलित हो उठे, किन्तु उन्होंने अत्यन्त धैर्य का परिचय दिया और देशवासियों से कहा ––

यह स्वदेश का रत्न भारत माता का यह प्यारा बेटा,
देश भक्त मूर्धन्य आज यह श्मशान में है लेटा।
इसकी क्षति की पूर्ति हेतु हम सब मिल आज प्रयत्न करें
निज को भी इस जैसा आज बनाने का कुछ यत्न करें।[3]

इस प्रकार तिलक चरित्र अत्यन्त सुन्दर है। उनके चरित्र में दृढ़ता, उग्रता, देश-प्रेम, धैर्य आदि गुण प्रभूत मात्रा में विद्यमान हैं। ये देश के प्रति समर्पित व्यक्ति थे।

1- सत्यमेव जयते, पृ0 53

2- वही, पृ0 54

3- वही, पृ0 60

भगतसिंह भी तिलक की ही भाँति मातृभूमि पर प्राण देने के लिए तत्पर रहते थे। ये भी उग्रवादी थे इनका कथन था --

अत्याचारों को सहना कायरता है,

गौरव उसका है जो इस पर मरता है।[1]

इनके अन्दर अंग्रेजों के प्रति घोर प्रतिहिंसा की भावना विद्यमान थी। तभी तो जब लाहौर में लाला लाजपत की सैंडर्स अंग्रेज द्वारा हत्या कर दी गयी तो वे खौल उठे। आजाद, राजगुरु के साथ उसे मारने के लिए चल पड़े। सैंडर्स को देखते ही उनके अधर घृणा से लिपट गये --

भगत सिंह के अधर घृणा से लिपट गये

प्रतिहिंसा से युगल नेत्र हो विकट गये।

~~जा~~ उधर सैंडर्स आया बाहर चलने को

मोटर साइकिल पर तैयार निकलने को

तभी लक्ष्य लेकर उसके दो हाथ उठे,

दो-दो मौजर गरज एक ही साथ उठे।[2]

भगतसिंह देश के लिए बलिदान होना चाहते थे। उनका विचार था कि यदि केन्द्र सभा में बम फेंकने के बाद हमने अपने प्राणों कीआहुति दे दी तो दो कार्य होंगे एक तो अंग्रेज भयभीत हो जायेंगे और प्राणों की आहुति से देश का बच्चा बच्चा जग जायेगा ----

जो सुनता दुःख दर्द नहीं है जनगण में

कान खोलने को उस बहरे शासन के -

केन्द्र सभा में बम का एक धमाका हो,

तभी कदाचित् हित भारत-जनता का हो।

× × × ×

इससे होगा पूर्ण अभीप्सित प्राप्त नहीं।

आवश्यकता यह है हम बलिदान करें,

जनमन है निष्प्राण प्राण का दान करें

1- सत्यमेव जयते, पृ0 142

2- वही, पृ0 143

बम फटने से कान खुलेंगे शासन के,

बलिदानों से नेत्र खुलेंगे जनगण के।[1]

और उन्होंने माँ भारत की वन्दना करते हुये फाँसी पर झूल गये --

क्रान्ति सेनानी पिछली रात

पा चुके हैं फाँसी का दण्ड।

समुद गाते वन्दे मातरम्

गये वे फंदे में झूल।

सभी पत्रों में आ यह वृत्त

समर्पित वे श्रद्धा के फूल।[2]

वे अत्यन्त स्वाभिमानी थे। उनके स्वाभिमान की गाथा हर भारतवासी की जिह्वा पर था। तभी तो उनके निधन से सम्पूर्ण भारतवर्ष क्रन्दन कर उठा —

भर गया भारत में अवसाद

अहा वे हिम्मत वाले लोग।

स्वाभिमानी, बलिदानी वीर,

अनोखे जीवन वाले लोग।[3]

× × × ×

अधर पर भगत सिंह के गीत

हृदय में भगत सिंह के काम,

देश में गुंजित था उस काल

चतुर्दिक भगतसिंह का नाम।

× × × ×

खबर आते ही टूटा व्योम

धरा पर जैसे बनकर आह,

आँसुओं में उमड़ा जनशोक

उठा पीड़ा से देश कराह।[4]

1- सत्यमेव जयते, पृ० 198

2- वही, पृ० 199

3- सत्यमेव जयते, पृ० 198

4- वही, पृ० 199

इस प्रकार भगत सिंह स्वाभिमानी, बलिदानी, साहसी, दृढ़प्रतिज्ञ, अंग्रेजों के प्रति प्रतिहिंसक, उग्र क्रान्तिकारी आदि रूपों में चित्रित किये गये हैं। उनके लिए गाँधी जी के ये शब्द थे —

भगत सिंह का बलिदानी भाव
जुटा ले यदि हर भारतवीर,
चमक उठे भारत का भाग्य
संवर जाये माँ की तस्वीर।[1]

चन्द्रशेखर आजाद

क्रान्तिकारियों की ही परम्परा में चन्द्रशेखर का स्थान तिलक, भगतसिंह, सुभाष, राजगुरु आदि से कम नहीं। उनका कथन था कि ~~चन्द्रशेखर~~ मेरा नाम आजाद है और मैं आजाद ही रहूँगा —

नेताओं में थे केवल आजाद रहे
नाम सदृश जो अपनेआजाद रहे।[2]

और इसीलिए जब उनके ऊपर गोली वर्षा हो रही थी तब उन्होंने देखा कि उनके पास एक ही गोली है तो उन्होंने स्वयं अपने मस्तक पर मार ली --

नाम है मेरा गर आजाद,
रहूँगा मैं हरदम आजाद।
रहेगा जब तक तन में श्वास
नहीं आऊँगा रिपु के हाथ,
अखिरी गोली की क्या फिक्र
आखिरी गोली देगी साथ।
वीर ने यह निर्णय कर घोर
लगाई मस्तक से पिस्तौल,
दिया फिर उसका घोड़ा दाब
गिरा पूरा कर अपना कौल।[3]

1- सत्यमेव जयते, पृ० 20।

2- वही, पृ० 15।

3- वही, पृ० 193

वे देश के लिए समर्पित व्यक्ति थे। उनकी बहादुरी के उदाहरण। सरकारी खजाना लूटने एवं आल्फ्रेड पार्क में जब वे घिर गये थे, आदि अनेक स्थानों में दृष्टिगोचर होते हैं। वे शासन को काँटे की भाँति कसक रहे थे —

शेष था फिर कण्टक एक
कष्ट जो देता था अत्यन्त।
और वह कण्टक था आजाद
खटकता था जो दिन और रात,
यत्न कर हारी थी सरकार
किन्तु वह आ न सका था हाथ।[1]

उनकी तीव्र कांक्षा थी जो भगतसिंह आदि क्रान्तिकारी नेता बन्दी हैं उन्हें मैं जेल तोड़कर मुक्त करा दूँ —

भगत सिंह राजगुरु सुखदेव
सभी तो हैं जेलों में बन्द,
नहीं फाँसी का कोई दुःख
वीर हैं हरदम जिन्दाबाद,
मगर पशुओं की जेलें तोड़
कराऊँगा उनको आजाद।[2]

वे दृढ़प्रतिज्ञ एवं धैर्यवान् थे। उनका धैर्य एवं वीरता देखिए —

इधर गिनती के शोले और
अकेले तन पर दो-दो घाव।
नहीं था विचलित पर वह शेर
न था किंचित् भी भय का नाम
देर तक उसी दशा में वीर —
रहा करता भीषण संग्राम।[3]

1- सत्यमेव जयते, पृ0 189

2- वही, पृ0 191

3- वही, पृ0 193

इस प्रकार ये भी भगत सिंह की तरह, बलिदानी, क्रान्तिकारी, उत्साही, धैर्यवान, दृढ़ प्रतिज्ञ आदि थे।

नेता सुभाष चन्द्र बोस

देश की स्वतंत्रता में नेता सुभाष चन्द्र बोस का बहुत बड़ा योगदान है। ये साधनहीन, देश से भगकर भी जापान में जाकर आजाद हिन्द फौज का निर्माण किया और अंग्रेजों द्वारा पूर्वी देशों के कब्जों को हटाते हुए भारत की सीमा तक आ पहुँचा। यह उनकी दूरदर्शिता एवं तीक्ष्ण बुद्धि का परिचायक है। वे अत्यन्त वीर, निडर, एवं क्रान्तिदूत के समान थे --

यह सपूत बंगाल प्रान्त का तेजवान अतिवीर निडर था,
कांग्रेस जन होकर भी वह क्रान्तिदूत सम उग्र प्रखर था।[1]

उनकी आत्मचेतना सदा उबलती रहती थी। उनका विश्वास था कि आजादी थाली पर रखे मिष्ठान्न की तरह नहीं मिल सकती। मीठे फलों के चखने के लिए खट्टे फल भी चाबने पड़ते हैं। और इसी विश्वास को लेकर वे कांग्रेस से त्यागपत्र देकर क्रान्तिदूत बनकर प्रकट हुए। उनका नारा था —

एक लक्ष्य है जननी के बेटे सुभाष का,
एक स्वप्न है अंग्रेजों के महानाश का
देश भाइयों मैं तुमसे बस यही कहूँगा -
'मुझे खून दो मैं तुमको आजादी दूँगा।'
खून-खून कुछ और नहीं बस खून चाहिए,
आजादी का सिर में सिर्फ जुनून चाहिए।[2]

उनके कार्य सदा वीरता से भरे रहे हैं। उनका उत्साह देश के लिए प्रेरणादायक रहा -

गोरों की सेना को हमने घेर लिया है,
इंगलिस्तानी तोपों का मुंह फेर दिया है,
अगणित दुश्मन फौजी अफसर खेत रहे हैं,
दीवाने आजाद हिन्द के जीत रहे हैं।

1- सत्यमेव जयते, पृ0 224

2- वही, पृ0 296

तोड़ चुके हैं हम उनके सब दुर्ग दहाने,
जीत लिए हैं मिथुन-कोहिमा सदृश ठिकाने।
× × × ×
बहुत शीघ्र इम्फाल पहुँचने वाले हैं हम
तदनन्तर बंगाल पहुँचने वाले हैं हम।
सुनकर जैसे पागलपन छा गया देश पर
जन-जन का उत्तेजन था अब चरम शिखर पर।[1]

इस तरह नेता जी का चरित्र अत्यन्त उज्ज्वल है। उनमें वीरता, धीरता, उत्साह, तीव्र बुद्धि, देश-प्रेम आदि गुण कूट-कूट कर भरे थे।

जवाहर लाल नेहरू

पं0 जवाहर लाल नेहरू महात्मा गाँधी के अनुयायी थे। उन्हें मानवता के पोषक, मजदूरों , किसानों, दलितों के परम हितैषी के रूप में जाना जाता है —

वह जो मोती के घर का उजियाला था,
वह जो भारत जननी की जयमाला था,
वह जिसके मन मे दलितों की ममता थी
वह जिसमें आश्रय पाती मानवता थी,
वह जो रक्षक था मजदूर किसानों का,
वह जो नायक था निर्भय अभियानों का,
वही जवाहर जो साहस था जनगण का।[2]

उनकी प्रार्थना थी कि मेरा वतन मुझे अपने प्राणों से भी अधिक प्यारा हो। उन्हीं के शब्दों में —

हे भारत माँ दे निज अचला भक्ति मुझे,
हे ईश्वर दे सत्य रूपिणी शक्ति मुझे,
जिससे यह कर्तव्य-भार हो सुमन मुझे,
प्राणों से प्यारा हो अपना वतन मुझे।[3]

1- सत्यमेव जयते, पृ0 298

2- वही, पृ0 158-159 3- वही, पृ0 159

वे जीवन में 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' सूत्र को लेकर अग्रसर हुए। उनका मत था कि कर्म करना हमारा कर्तव्य है, फल तो ईश्वर के हाथ है —

नहीं सफलता पर अधिकार हमारा है,
मानव का तो केवल कर्म सहारा है।
लेकिन देता हर इतिहास गवाही है
साहस ही हर विजयी का हमराही है।[1]

उनका स्थान गाँधी के बाद जाना जाता है —

गाँधी के अतिरिक्त काँग्रेस के सर्वोन्नत केतु वही थे,
गाँधीवाद औ' साम्यवाद के मध्य मिलन के सेतु वही थे।[2]

उनकी दूरदर्शिता एवं वाक्पटुता देखिए —

फिर लन्दन को सम्बोधित कर गरज उठे अध्यक्ष जवाहर-
"आप ब्रिटिशशासन तंत्री हैं बोल रहे जिस कल के स्वर में,
वह कल मृत हो समा चुका है जाने कब का काल-विवर में।
बीस वर्ष पहले की भाषा दे न सकेगी आज भुलावा,
कैसे हैं कह रहे आप है अनुचित कार्य समिति का दावा।
× × × × × ×
जिस पर संकट के उन्मूलन हित आप माँग सहयोग रहे हैं
वैसा ही संकट सदियों से हम भारत जन भोग रहे हैं।[3]

इस प्रकार नेहरू कर्मनिष्ठ, शान्ति प्रतीक, साहसी, दृढ़निश्चयी, बुद्धिमान्, दलितों, मजदूरों आदि के सहायक थे।

जिन्ना

जिन्ना की प्रवृत्ति, कर्जन, इर्विन, रालिन, एवं क्रूर डायर से कम नहीं थी। ये अत्यन्त स्वार्थी, कूटनीतिज्ञ, भ्रष्ट, निम्नप्रवृत्ति हिंसात्मक एवं विघटनात्मक प्रवृत्ति वाले थे। इनके कार्य न तो हिन्दुओं के हित में थे नही मुस्लिमों के। इन्हीं के स्वार्थ के कारण देश में विभाजन हुआ। लाखों व्यक्तियों की जानें गयीं। 'सत्यमेव जयते' में इनका

1- सत्यमेव जयते, पृ0 16।

2- वही, पृ0 224 3- वही, पृ0 24।

चरित्र अत्यन्त निम्नकोटि का प्रदर्शित किया गया है। यह किसी भाँति भी नृशंस डायर से कम नहीं था जिसने जलियाँ वाले बाग में हजारों हिन्दुओं मुसलमानों की जान ली। यह व्यक्ति अपने स्वार्थ के लिए कुछ भी कर सकता था और किया भी। वैसे जिन्ना का उदय इस प्रकार हुआ —

मुस्लिम लीग-सभापति मिस्टर जिन्ना जैसे नेता थे,
वे भी उन दिवसों में हिन्दू मुस्लिम ऐक्य प्रणेता थे।[1]

स्वार्थी भावना :—

जिन्ना अत्यन्त स्वार्थी था। इसीलिए जब गाँधी जी गरीबों के सहायक बने घूम रहे थे, सम्पूर्ण देश उनके प्रति कृतज्ञ था तो वह उनकी फैलती हुई ख्याति के सहन न कर पाया और उसका असली रूप सामने आया —

सूट-बूट में सज्जित तन मन नग्न सत्य कैसे गह पाता।
~~जीवन~~ अंगरेजों के रहन-सहन में राष्ट्र-धर्म कैसे रह पाता।
स्वार्थ-प्रेम को छुपा न पाया देश-प्रेम का वह आडम्बर।
ऊपर का आवरण हटा तो असली चेहरा हुआ उजागर।[2]

जब गोल-मेज सम्मेलन में अपनी चाल असफल देखी तो वह वहीं लंदन में बस गया किन्तु नव निर्मित संविधान से कुछ आशावान होकर पुनः भारत में प्रकट हुए —

मुस्लिम हेतु पृथक निर्वाचन से भारी आशाएँ लेकर
भारत का शासन हथियाने की अदम्य इच्छाएँ लेकर
कूद पड़े थे वे लंदन से आकर निर्वाचन-संगर में
हिन्दू-मुस्लिम फूट बीज वे बिखराते थे भारत भर में।[3]

और जब नेहरू ने ग्यारह लोगों की शासन-परिषद रची तो वे बिफर उठे —

उनके समुचित सत्कार बिना
मुस्लिम लीगी सहकार बिना-
नेहरू सरकार बना लेवें
खुद ही प्रधानमंत्री होवें

1- सत्यमेव जयते, पृ0 63

2- वही, पृ0 227

3- वही, पृ0 228

यह कैसे वे सह सकते थे।
चुप भी कैसे रह सकते थे।
वे फिर पहले सम उठे विफर
चहुँ ओर उगलने लगे जहर।
मुस्लिम जनता को भड़काया
गुण्डातत्वों को उकसाया।
× × × ×
प्रतिवाद-दिवस उद्घोष किया
हिन्दू विरोध-रण-घोष दिया।[1]

निम्न भावना :--

उसकी मति अत्यन्त निम्न थी। वे मानवता, सद्भाव, संगठन, सहृदयता को निर्ममता से कुचल रहे थे। उनका यह कथन उनकी अतिसंकीर्ण एवं अविवेकी स्वभाव का परिचायक है —

कांग्रेस है हिन्दू संस्था, गांधी उसका डिक्टेटर है,
दोनों में ही भरा देश की मुस्लिम जनता हेतु जहर है
दोनों का है लक्ष्य यहाँ से मुसलमान का नाम मिटाना
हिन्दु राज्य स्थापित करना औ' नामे इस्लाम मिटाना।
इस भाँति विषवमन कर रहे मिस्टर जिन्ना विचर रहे थे।
मानवता-सद्भाव-संगठन सहृदयता सब बिखर रहे थे।[2]

भ्रष्टनीतिपोषक :--

उसकी नीति अत्यन्त गर्हित थी। उसे केवल अपना स्वार्थ ही दिखायी देता था। उसके लिए चाहे भारत स्वतंत्र हो चाहे न हो मुसलमान मरें चाहे हिन्दू, कोई परवाह के विषय नहीं थे। उसे चिन्ता थी तो केवल अपने प्रधानमंत्री बनने की। इसीलिए जब वायसराय ने गाँधी एवं जिन्ना से परामर्श किया एवं बंटवारे की बात की तो युग-द्रष्टा गाँधी चिन्तित हो उठे —

1- सत्यमेव जयते, पृ0 329

2- वही, पृ0 234

लेकिन जिन्ना को तो जैसे था अभीष्ट संकेत मिल गया
ज्यों भूखे दिग्भ्रमित व्याध को ही सहसा आखेट मिल गया।
× × × ×

यह विचार कर जिन्ना साहब ने नूतन योजना बनाई
तदनुसार मुस्लिम जन-हित की एक पृथक् आवाज उठाई।
अल्प संख्यकों को भड़काना था अब उनका दर्शन प्यारा,
मूलमंत्र था कांग्रेस औ' गांधी के विरोध का नारा।
वे कहते फिरते थे – गांधी मिटा रहा है भारत देश को
हिन्दू जाति की कट्टर संस्था कहते थे वे कांगरेस को।[1]

हिंसात्मक प्रवृत्ति :— जिन्ना के ही शब्दों में –

मुस्लिम जनता को उससे भी दिलकश ख्वाब दिखाऊँगा मैं
शान्ति अहिंसा के सागर में शोणित ज्वार उठाऊँगा मैं।
गली-गली तलवार चलेगी, हिन्दू-जाति डरी जायेगी,
बारूदी जल जले उठेंगे धरती टुकड़े हो जायेगी।
देखूँगा फिर कौन अल्लाह यह गांधी ईजाद करेगा,
जिन्ना भी कोई हस्ती थी, विश्व हमेशा याद करेगा।[2]

इस प्रकार जिन्ना के चरित्र में कोई भी गुण दिखायी नहीं पड़ते वह प्रत्येक स्थान में भ्रष्ट विध्वंसात्मक विघटनकारी शक्ति के रूप में ही नजर आता है।

सीता

आलोच्य महाकाव्यों में सीता का चरित्र इतना उज्ज्वल, करुणामय चित्रित है कि सामान्य नारियों का चरित्र उसके सामने ठहर नहीं सकता। वह त्याग, बलिदान सेवा की मूर्ति थीं। राजेश्वरी अग्रवाल के शब्दों में —

"सीता ने सदैव सहा ही सहा और दिया ही दिया, आदि से अंत तक सुख में भी और दुख में भी, धरा पर प्रकट होकर और समाकर भी।"[3]

1- सत्यमेव जयते, पृ० 243

2- वही, पृ० 249

3- सीता समाधि, पूर्व प्रकाश पृ०।

कहीं वह लज्जाशील नारी, कहीं मृदुल एवं सुदृढ मति वाली, कहीं निर्भीक कहीं सती, आदर्श पत्नी और कहीं वात्सल्यमयी माँ के रूप में दिखाई पड़ती हैं। उनके चरित्र को हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत देख सकते हैं --

लज्जाशील नारी :--

यद्यपि सीता श्रीराम को पुष्पवाटिका में धनुर्भंग के पहले ही अपने पति के रूप में स्वीकार कर चुकी थीं किन्तु मण्डप में जब उन्हें विवाह के समय लाया जाता है तब उनकी स्त्री सुलभ ~~लत~~ लज्जा देखिए ---

ऋषि वसिष्ठ की आज्ञा से मिथलेश सुता
दिव्याभरण भूषिता सुषमा ज्योति प्लुता
लाई गई समक्ष वेदिका के सीता
बैठीं राघव अभिमुख नतमुख अभिनीता।[2]

मृदुल किन्तु दृढ़ :--

सीता शरीर एवं मन से जितनी नर्म हैं उतनी कठोर भी। जितनी उनके अन्दर स्त्री सुलभ लज्जा है, अनुराग है उतनी ही दृढ़ता एवं अनीति के प्रति घृणा थी --

मधुऋतु सी है कैसी मनहर पर कितनी अंगार बरसती
छवि न देती केश घटा है, बिजली जैसी तड़प कड़कती।
नयन सुधामय नीलोत्पल से लिपटे मधु में कठिन गरल से।[3]

आदर्श पत्नी :--

उत्तम चरित्र वाली श्री राम की पत्नी जानकी स्वयं स्वीकार करती हैं कि वे गिरा और अर्थ की तरह अपने प्रियतम से पृथक नहीं है। उनके लिए अन्य पुरुष क्या राक्षस पति क्या सुरपति भी त्याज्य है --

अधिगत कर सकता उन्हें न कोई पुरुष अन्य
राक्षसपति क्या? सुरपति भी उनके हित नगण्य।[4]

~~1- सीतासमाधि, पूर्वप्रकाश, पृ0 1~~

2- भगवान राम, पूर्व चरित, पृ0 153

3- सीता समाधि, पृ0 170, 4-- रामदूत, पृ0 39

वह अपने पति के साथ महलों के भोग विलास छोड़कर वन में सुखी है —

दूर नगर के दण्डक वन में, सुख से रहती साथ सजन के।
सर्दी गर्मी वर्षा आँधी दुख सताते उसे न वन के।
दी न कभी विधि को गाली रहे प्रेम में वह मतवाली।
वन के दुस्सह दुख पाकर भी कभी न मन मैला करती थी।[1]

सती नारी :-- आलोच्य महाकाव्यों में वह सती शिरोमणि के रूप में दिखाई पड़ती है। उन्हीं के शब्दों में —

सतीत्व मेरा दिनमान तेज, अभेद्य हूँ राघव सूर्य की प्रभा।[2]

और इसके बावजूद उन्हें अग्निपरीक्षा देनी पड़ी —

देना होगा मुझे सत्य का अब प्रमाण
जागा मेरे मन में स्वाभाविक स्वाभिमान
रघुकुल की मर्यादा पर ही तो आघात आज
× × × ×
पति इच्छा ही सर्वोपरि भार्या जीवन में
× × × ×
जग को पवित्रता सत्य जानना होगा ही।[3]

और — क्षण-क्षण युग सम बीत रहा था, असह्य पीड़ा उर को दलती।
सभी देखते व्याकुल होकर चिता सहित सीता को जलती।
जलती सीता जैसे कंचन, जलता दुख से जन-जन का मन।
× × × × ×
कठिन परीक्षा ले सीता की बुझी अग्नि की भीषण ज्वाला।
ध्यान मग्न अति दीप्त तेज से प्रगटी सीता हुआ उजाला।[4]

वात्सल्यमयी माँ :—

अन्य गुणों की तरह उनके हृदय में माँ की असाधारण वात्सल्य उमड़ती रहती थी। अपनी दयनीय दशा में भी पुत्र समान हनुमान को बिना खिलाए-पिलाए कैसे जाने देतीं —

1-सीतासमाधि, पृ0 119 2- भगवान राम, तपो0, पृ0 117
3- अरुणरामायण, लंकाकाण्ड, पृ0584-585
4- सीता समाधि, पृ0 213

ठहरो सुत कुछ क्षण और यहाँ विश्राम करो,

इस उपवन के फल खाकर अपनी क्षुधा हरो।[1]

स्वपुत्र लव एवं कुश के वात्सल्य युक्त प्रेम के सागर में कूदकर एक क्षण को वे अयोध्या नगरी क्या श्री राम तक को भूल जाती है। तभी तो सब कुछ भूल कर वे लोरियाँ सुनाने लगती थीं —

सुनाने को कभी सुकुमार सीता

सुनाती लोरियाँ कलकण्ठ से थीं,

यथा श्रृंगार की करुणा शिखा से

बहे वात्सल्य की अविराम धारा।[2]

अनीति विद्रोही :-

सीता जब रावण द्वारा हरी गयीं तो उन्होंने उसकी अनीति का डटकर विरोध किया, उसे डाटा, फटकारा भी। उससे क्षुभित हुईं, उसका ह्रास भी मनाया। इसी तरह जब राम द्वारा वे त्यागी गईं तो उस अनीति के लिए भी व्यग्र हो उठीं —

है रजक नारि जिस तरह उस तरह मैं हूँ,

× × × × ×

मेरे हैं शुभ संस्कार विदेह भवन के,

मैंने कब चाहे सुख विलास इस तन के?

बन बन में भटकी भूख प्यास दुख झेले,

हैं सहे नगर परिहास विनोद अकेले।[3]

लोकहित भावना :- व्यथित होते हुये भी वे लोकहित में रत रहना चाहती हैं —

मैं होऊँ वासदेव वंश की सेविका।

× × × ×

बीते जीवन शेष देश कल्याण में।[4]

इस प्रकार महाकाव्यों में वर्णित सीता चारित्रिक दृष्टि से सती, कुलीन, आदर्श पत्नी, लज्जाशील नारी, लोक हित चिंतक आदि रूपों में उषाकालीन स्वच्छ विभा की तरह विभासित होती हैं, किन्तु कहीं-कहीं नव जागरण से प्रेरित होकर उनके चरित्र में नया रूप ला दिया है, जो आधुनिकता का द्योतक है। जानकी जीवन में लक्ष्मण से सीता

1-रामदूत, पृ0 54 2-जानकीजीवन, पृ0 342, 3- उत्तरायण, पृ0 99,
4-

सीता ने बड़ा कठोर प्रश्न कर दिया। वे कहकर सँभली भी किन्तु जीत आधुनिकता की ही हुई --

न्यायकारी से कभी यों पूछना, साथ सीता के किया क्या न्याय है?
× × × ×
हाय प्राणाधार, हा हृद्देव वे, जो करें स्वीकार है स्वीकार है।[1]

और आधुनिकता से पोषित कवि का हृदय उनसे कहला दिया --

नारियों के निंदकों की दुर्दशा, जो यहाँ होगी उसे भी देखना
मान ले जाओ दिखाओ लोक को, बंधु की आदर्श आज्ञाकारिता।[2]

कैकेयी

कैकेयी का चरित्र मनोवैज्ञानिक है। जिसमें विभिन्न भावों का उत्थान-पतन दिखाई देता है। उसके चरित्र में स्त्रीहठ, सौतिया डाह, राष्ट्रहितैषिणी बुद्धि, दूर-दर्शिता आदि प्राप्त होते हैं। इनके अलावा उसे वीरता एवं साहस से सम्पन्न दिखाया गया है --

सुरासुर संग्राम में दण्डक अरण्य समीप
एक बार हुये शराहत अति अचेत महीप।
उस समय कैकेयजा ने बाजि शत्रु
था बचाया क्षीण निर्वाणस्थ प्राप्त प्रदीप
चण्डिका सी समर संगिनि रानि तज रण रास
ले गईं संज्ञा रहित पति को शिविर आवास।[3]

तभी तो दशरथ भी उन्हें दुर्गा की संज्ञा प्रदान करते हैं --

मृगपति स्कन्ध-स्थिता दुर्गा प्रचण्ड समान
प्राण रक्षा का हमारी कर अपूर्व विधान।[4]

कैकेई का पुत्रप्रेम प्रबल है। अपने पुत्र के लिए वह मान मर्यादाओं को त्याग सकती है। पति को मृत्यु अंक में देख सकती है, सीता जैसी कोमलांगी वधू को वन में तापसियों

1-जानकीजीवन, पृ0 ~~284 2~~ 2- वही पृ० 240

3- ~~वही~~ भगवानराम, पृ0 22

4- वही, पृ0 22

की भाँति यातनासहते देख सकती है, किन्तुपुत्र को दुखी नहीं देख सकती। इसीलिए भरत की अहित की बात सुनकर वह दहाड़ उठती है —

अहित भरत का कौन करेगा जब तक हैं ये प्राण,
तीन लोक में मिल न सकेगा भरत शत्रु को त्राण।
क्रुद्ध कुपित सिंहनी सदृश करूँगी शत्रु वर्ग का नाश,
धधक उठेगा जिस क्षण मेरा रोष प्रलय-सकाश।[1]

सौतिया डाह एवं पुत्र प्रेम में लिप्त होकर भरत का राज्य एवं राम को वनवास तो दे दिया, किन्तु भरत को दुखी देख वह चित्रकूट में राम के समक्ष कातर हो लौट चलने की भीख माँगने लगी —

तात सत्य यदि यह है तो अब लौटो घर को,
उठ रानी कैकेयी बोली ले दृढ स्वर को।
कहते हो यदि भरत तुम्हें प्राणों से प्यारा
तो फिर करो अभीप्सित इसके मन का सारा।[2]

उनका प्रेम राम के प्रति भरत से कम नहीं। राज्याभिषेक की बात जब मन्थरा उससे बताती है तो वह कह उठती है —

सत्य मन्थरे, सत्य कही है क्या तूने यह बात
राम प्राण सम पुत्र बनेंगे क्या वसुधाधिप प्रात।
करते हुये प्रश्न यह रानी उठी हर्ष की मूर्ति
मानो जीवन की अभीष्ट सब हुईं कामना पूर्ति।[3]

और राम के वन जाने के बाद जब भरत लौटते हैं एवं कैकेयी की बुद्धि पलटती है, तो वह कराह उठती है —

सोच रही थी कैकेयी भी कैसी है यह भूल
हुई ईश हे, मुझ से जो है बनी हृदय का शूल।
धूर्त मन्थरा के धोखे में आकर मैंने हाय
किया नाश है निज जीवन का और वंश का हाय।[4]

इस प्रकार कैकेयी ने वीरता, उदारता, हठीलापन, पुत्रप्रेम आदि गुणविद्यमान दिखाई देतेहैं।

1- भगवान राम, तपोवनविहार, पृ0 36
2- निषादराज, पृ0 137, 3-भगवानराम, तपो0, पृ0 33, 4-निषादराज, पृ0 116

कौशल्या

आलोच्य महाकाव्यों में इनको रामचरित मानस की कौशल्या कि --'जो पितु मातु कहेउ वन जाना, तौ कानन सत अवध समाना' के विपरीत एक सामन्य रानी के सोपान पर ला खड़ा किया गया है। उनके अन्दर सामान्य स्त्रियों की तरह सौतिया कष्ट विद्यमान रहता है, किन्तु कक उसमें अत्यन्त धैर्य है —

कैकेयी को अभिलषित था त्रास देना मुझे जो
तो क्यों निर्वासन पावे तुम्हें वत्स दुसहय मारा।
कारा की मैं सहन करती यातना कष्टदायी
पी लेती मैं मुदित विष का पेय भी प्राणहारी।[1]

उनकी यह मंगलकामना स्वपुत्र प्रेम को उजागर करती है —

रहो जहाँ वत्स सदा सुखी हो
न स्वप्न में भी तम दुख का हो।
त्रिदेव ब्रह्मा शिव विश्वभर्ता,
करें तुम्हारी दिन रात रक्षा।[2]

वे जितना पुत्रों से प्रेम रखती हैं उससे अधिक अपनी वधू जानकी से भी। जिससे वह उत्तम सास के रूप में दिखायी पड़ती हैं। भरत मिलाप के समय जब वे सीता को वन में देखती हैं तो अत्यन्त दुखित होती हैं —

हा कैसा है वदन रज से लिप्त है स्वर्ण मानों,
किं वा आच्छादित शशि हुआ श्यामला धूलिका से।
तेरे राकापति वदन की म्लानता देख ऐसी,
बेटी मेरा हृदय फटता दुख के वृज्र से है।[3]

उनका दुख और तीव्र हो जाता है जब सीता का निर्वासन होता है। वे दहाड़ मारकर रो उठती हैं --

---

1- भगवानराम, तपोवनविहार, पृ0 73

2- वही, पृ0 89

3- वही, पृ0 238

कहाँ हा अम्ब की अवलम्बदात्री
बुढापे की छड़ी बिछुड़ी कहाँ है?
रहे हा जानकी वनवासिनी हो,
क्यूँ मैं सौध में सुख भोग भोगूँ।[1]

इस प्रकार कौशल्या महाकाव्यों में उत्तम गृहिणी, धैर्यशीला नारी, पति अनुगामिनी, उत्तम सास एवं वात्सल्यमयी माँ के रूप में दिखाई पड़ती है।

सरमा

विभीषण की पत्नी सरमा उदात्त गुणों वाली धर्मवती, दयामयी नारी आदि गुणों में चित्रित की गयी है। वे सीता के दुख से इतना दुखी हैं कि विभीषण से प्रकृति के उदाहरण देकर कहती है जब जड़ जीव इतने दुखी हैं तो आप उनके दुख को क्यों नहीं देखते --

कोकिल की काकली भूल निज हूक कूक में भरकर
लूक सदृश अपने ही स्वर से फिर-फिर जल उठता है।
× × × × ×
और पपीहा द्विगुण व्यथा से हा पी हा रटता है।[2]

वे सीता के दुख को दूर करने के लिए विभीषण को अनेक प्रकार से प्रोत्साहित करती हैं --

सरमा बोली साथ अग्रजों के अपने हे स्वामी।
तुमने भी अपने तप से ब्रह्मा को तुष्ट किया था।
विधि ने होकर तुष्ट दिया था वर अमोघ यह तुमको
परमापत्ति प्राप्त होने पर भी मति विमल तुम्हारी
सदा धर्म से पूरित शापित और प्रमोदित होगी.
आज उसी की विषम परीक्षा की वेला आई है।[3]

उसे विश्वास है कि विभीषण के आग्रह को लंकेश रावण नहीं टाल सकता --

ऐसे ~~को~~ गर्वोद्धत लंकापति सुनकर विनय तुम्हारी,
सुपथ गहेंगे, लौटा देंगे सीता को स्वेच्छा से।[4]

1- जानकीजीवन, पृ0 295 2-- रामदूत, पृ0 28
3- रामदूत, पृ0 29 4- रामदूत, पृ0 3।

इस प्रकार सरमा, दयामूर्ति, विवेकमयी, विनयशील, सत्कर्मरत आदि रूपों में चित्रित की गयी है।

जाबाला

जाबाला सत्यकाम की माँ, साधारण जीवन यापन करने वाली, पतिविहीन सौम्य नारी थी। वह इतनी रूपवती भी थी कि यौवनावस्था में उसे देखकर ऋषियों मुनियों का ध्यान छूट जाता था —

शुभ्र पीत पुष्पों से चंपक तन की शोभा
जब सँवारकर मैं निकला करती थी वनपथ पर
ध्यान भंग हो जाता ऋषि मुनियों का सहसा।[1]

वह अत्यन्त सौम्य सुशील एवं बुढापे में भी कर्मपथ पर अग्रसारित थी —

मूर्तिमती स्मित शरद शरदचन्द्रिका शील विनत मुख
लता प्रताओं के मण्डप से वेष्टित वन में
स्वच्छ कुटज आँगन पर शरद सौम्य जाबाला
उपवन के नव गुल्म वीरुधों में जलदेवीसी[2]

सत्यकाम की तरह वह भी गुरु को पिता के रूप में स्वीकार करती थी —

अरे कौन ऋषिवर आये क्या
धन्य भाग हैं जो तुमने मेरी कुटिया को
चरणों की रज से पवित्र कर दिया यहाँ आ।
ओ जाबाल प्रणाम करो निज पूज्य पिता को
गुरु ही तो वास्तव में जीवनदाता होता।"[3]

इस प्रकार जाबाला भारतीय तपस्विनी नारी के रूप में प्रतीत होती है। भले ही वह यौवनावस्था में भूलवश पतित हो गई हो किन्तु अपनी साधना के द्वारा वह पुनः अपने स्त्रीत्व की वेदी में विस्थापित हो गयी है, तभी तो ऋषिवर के सामने ही बिना प्रयास के प्राणों का उत्सर्ग कर देती है —

1- सत्यकाम, पृ0 28 2- वही, पृ0 24 3- वही, पृ0 222

मेरा कार्य समाप्त हुआ अब मुझे विदा दो
इससे शुभ क्या हो सकता ऋषिवर के सम्मुख
आँख मूँदकर बोल सकूँ मैं अपर लोक में।
× × × ×
आँख मूँद ली उसने चिर निद्रा में जगकर।[1]

इससे जाबाला की उच्च साधना विदित होती है क्योंकि उसने इच्छा मृत्यु प्राप्त की। इस प्रकार जाबाला कर्मनिष्ठ, सुशील, सौम्य- लोकहितकारिणी, साधना मूर्ति गुरु भक्त आदि रूपों में दिखायी पड़ती है।

राधा

आलोच्य महाकाव्य 'कृष्णाम्बरी' में राधा कृष्ण की प्रेमिका के रूप में प्रस्तुत की गयी है किन्तु उसका प्रेम शारीरिक नहीं, सांसारिक नहीं, भौतिक नहीं, बल्कि इन सबसे ऊपर जन्म जन्मान्तर का है। यदि कृष्ण योगी हैं, तो राधा योग की विमोहनी शक्ति ज्योति। उसे केवल कृष्ण जानता है और वह ही कृष्ण को जानती है —

योग की विमोहनी शक्ति ज्योति ही,
वही तू- वही तू,
तू क्या है, इसे जन्म-योगी कृष्ण ही जानता
और कृष्ण क्या है, इसे तू ही जानती है?[2]

कृष्ण के मथुरा जाते समय --

दौड़ी आ रही राधा
× × × ×
अरी बावरी तू भी रोती है
इतनी अधिक रोती है?[3]

किन्तु उद्धव के कृष्ण का संदेश लेकर गोकुल आने पर राधा को देखिए --

राधा स्मृति मणि नहीं उगलेगी
उपालम्भ नहीं देगी
गोपियाँ चाहे जो कहें
मैं नहीं कहूँगी जैसी तैसी बात।

1- सत्यकाम, पृ0 237

2- कृष्णाम्बरी, पृ0 58 3- कृष्णाम्बरी, पृ0 100

प्रेम की मर्यादा मौन रहने में है

प्रेम गाम्भीर्य सब कुछ सहने में है।[1]

राधा कृष्ण में ही अपने को समझ रही है और अपने में कृष्ण को --

एकाकार ही रहने दो मुझे

स्वयं के अतिरिक्त कुछ नहीं कहने दो मुझे।

तुम्हारी बोली में मैं नहीं?

तुम्हें छोड़ मैं और कहीं?

जहाँ कृष्ण वहाँ राधा।[2]

राधा प्रेम की प्रतीक हैं अतः दुराचारियों को वह कहाँ सहन कर सकती है। अतः कृष्ण के लिए कामना करती है कि वह दुराचारियों को इस प्रकार नष्ट करें कि उनका नामोनिशान न रह जाये। उसके अन्दर दुराचारियों के संहार के अतिरिक्त लोक कल्याण की भावना भरी हुई है --

दुराचारियों ने सर्वोपरि मान लिया स्वयं को,

क्षीण संस्कृति सारस्वत पतन से

चुनौती दे रहा प्रकाश को असुरान्धकार

इसीलिए तो

त्यागा कृष्ण वृन्दावन तुमने

किया एक कंस का वध

छिपे हैं असंख्य कंस अभी,

मत करो संकोच

सानन्द अभियान करो कृष्ण

अभियान अपने लिए नहीं

मानवता कल्याण के लिए

सर्वोत्थान के लिए।[3]

इस प्रकार राधा सात्विक प्रेमिका, लोक कल्याण चाहने वाली के रूप में चित्रित की गयी हैं।

1- कृष्णाम्बरी, पृ० 126

2- वही, पृ० 126 3- वही, पृ० 132

यशोदा

यशोदा को केवल वात्सल्यमयी माँ के रूप में चित्रित किया गया है। वह कृष्ण के प्रेम में अनुरक्त है। पहले जब कृष्ण को पहले पहल देखती है तो कह उठती है —

> किसका शिशु यह?
> कौन ले गया मेरी बच्ची को?
> हे भगवान्!
> पालूँ पराए पुत्र को माता की तरह कैसे ?

किन्तु उसी क्षण -

> टुकुर-टुकुर देख रहा मुझे तू
> तेरी माँ हूँ मैं?
> पुत्रहीन यशोदा का
> क्या तू ही बनेगा पुत्र?
> तो लि, प्यार करती हूँ मैं।[1]

और यह प्यार इतना बढ गया कि कृष्ण जब कालीदह में कूद गये तो यशोदा स्वयं कूदने लगी। अक्रूर जब कृष्ण बलराम को मथुरा ले जाने लगे तो —

> कृष्ण बलराम ने
> स्पर्श किये मातृचरण
> कि हो गई वह मूर्छित।[2]

गाँधारी

नारी पात्रों में गांधारी का चरित्र अति उत्तम वर्णित किया गया है। उसके पति धृतराष्ट्र अन्धे हैं तो भला वह संसार को कैसे देख सकती है। वह पति अनुगामिनी नारी आँखों में श्वेत पट्टी धारण किये है। भले ही उसे दिव्यदृष्टि प्राप्त हुई हो। वह सच्ची माँ है । वात्सल्य उसके रग-रग में व्याप्त है, अपने बच्चों के प्रति मोह है —

> गाँधारी ने देख लिया ज्येष्ठ पुत्र को।
> पुकारा तत्क्षण पुत्र वधू को सुदूर से -

1- कृष्णाम्बरी, पृ0 38—39

2- वही, पृ0 99

कि उधर नहीं इधर यहाँ दुर्योधन।

एक ही वाक्य कहकर -

कटे केले सी धड़ाम से गिरी वह भूमि पर

× × × ×

कृष्ण हे।

मैंने तो फोड दी कलाइयों की चूड़ियाँ

ला दो कहीं से तुम इनके लिए थोड़ा सिन्दूर

इतना ही कह मूर्छित गांधारी फिर।[1]

गांधारी के अन्दर आध्यात्मिक निष्पक्षता है। वह अपने पुत्रों एवं अभिमन्यु लक्ष्मण आदि अल्पायु के बच्चों को मरा देखकर क्रोधित हो उठती है और युद्ध के उत्तरदायी कृष्ण को शाप दे देती है किन्तु जब उसका मोह दूर होता है एवं ज्ञान दृष्टि पुनः उत्पन्न हो जाती है तो वह पछताने लगती है और कहती है कि हे कृष्ण मेरे अंदर ज्ञान होते हुए मैं माँ हूँ। माँ में ऐसी दशा देखते हुए करुणा उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है —

नारी हूँ -- माँ हूँ, मैं —

पिघल गई महाकरुणा परिणाम को देखकर

मेरे कोमल हृदय से —

फूट पडी करुणा की अग्नि धारा

मेरे मृत पुत्रों ने पुकारा मुझे

कठोर संयम का किनारा ढह गया मेरा

भंग हो गई मेरी आध्यात्मिक निष्पक्षता।[2]

शाप देकर भी वह कृष्ण भक्ति में लीन है। वह उनको पूर्णावतार मानती है --

तुम्हीं रसेश्वर हो, तुम्हीं योगेश्वर हो

कर्मेश्वर, ज्ञानेश्वर और परमेश्वर तुम्हीं हो कृष्ण

आनन्द ही आनन्द व्याप्त है तुम्हारी लीला में।[3]

1- कृष्णाम्बरी, पृ० 230-231

2- वही, 235

3- वही, पृ० 237

वह विश्व शान्ति चाहतीहै। उसका मन युद्ध की विभीषिका देखकर भर गया है —

हे भारत कामना करो

कामना करो विश्व शान्ति की।[1]

और इसीलिए वह कृष्ण को प्रेरित करती है कि वे पुनः वृन्दावन जाकर विश्व में आमोद-प्रमोद की धारा को प्रवाहित करें —

स्वीकारा तुमने गांधारी का शाप-

स्वीकारो अब प्रणाम सहित शुभ का मंत्र

हे पूर्णावतार!

पूर्ण करो मेरी इच्छा एक बार वृन्दावन जाकर

सुन लूँगी मैं सुदूर से आती हुई मुरली की तान

पहचान लूँगी मैं

समीरानन्द की सुरभि-सी स्वर लहरी।[2]

इस प्रकार गांधारी पतिवृत्य युक्त, सौम्य, सुशील, वात्सल्यमयी माँ, आदि के रूप में चित्रित कि गयी है। उसके चरित्र में आध्यात्मिक निष्पक्षता एवं ज्ञान का अपार प्रवाह दिखाया गया है।

सरोजनी नायडू

देश के स्वतंत्र कराने में पुरुषों के अतिरिक्त नारियों ने भी बड़ा योगदान दिया जिनमें कस्तूरबा, एनीबिसेण्ट, कमला नेहरू तथा सरोजनी नायडू प्रमुख हैं। ये देश के प्रति समर्पित थी। इनमें कवि हृदय होते हुए भारत माँ की सुरक्षा की भावना इनमें कूट-कूट कर भरी थी। वह भारत की आजादी को ही अपना सब कुछ समझती थीं —

वह कवयित्री महिला मणि ही

सम्प्रति दल की अध्यक्षा थी,

उसके ही हाथों में इस पल

जननी की मान सुरक्षा थी।[3]

1- कृष्णाम्बरी, पृ0 238

2- वही, पृ0 237

3- ~~वही~~, पृ0सत्यमेव जयते, पृ0 123

वह वीर एवं साहसी थीं। नमक के धारासना-गोदाम में कब्जे के लिए वे ही दल का नेतृत्व कर रही थीं, जहाँ के अत्याचार को सुनकर भारत क्या सम्पूर्ण विश्व दहल गया था। गोरी पुलिस लाठियों की बौछार करती थी और निहत्थे लोग अपनी रक्षा के लिए सर में हाथ भी नहीं लगाते थे। ऐसा था सत्याग्रह और ऐसा था सरोजनी का प्रबल नेतृत्व —

नियत तिथि पर धावे से घिरा
नमक का धारासना- गोदाम।
आज था सत्याग्रह-नेतृत्व
नायडू सरोजनी के हाथ।
× × ×
जिसे सुन सिहर उठा संसार
जिसे लख दहल गये अंग्रेज
एक लघु जत्था बढ़ता शान्त
नमक के रक्षित बाड़ों ओर
पुलिस लाठी बरसाती उग्र
× × ×
किसी में था न क्रोध प्रतिकार
मुक्त करते सब शोणितदान।[1]

इस प्रकार इनका चरित्र त्याग, बलिदान, वीरता, साहस, दृढ़ निश्चय, सहिष्णुता, आदि गुणों से भरा पड़ा है।

एनीविसेण्ट

करुणा की प्रतिमूर्ति एनीविसेंट आयरलैण्ड से भारत आयीं। ह्यूम महोदय की तरह इनमें भीजनसेवा, दयालुता एवं मानवता के प्रति करुण प्रेम विद्यमान था। यह निस्वार्थभाव से जनकल्याण में लीन थी। तभी तो अपने सब सुखों को त्यागकर भारतवासियों में होम रूल का नारा बुलन्द करने लगी। वे विदेशी होकर भी स्वदेशी नारियों से आगे रहीं। उन्होंने भारत की सेवा का वृत लिया —

1- सत्यमेव जयते, पृ० 183

धर्म मार्ग तज भारत सेवा का शुभ वृत लेकर मन में
अब एनी विसेण्ट आ गयीं राजनीति के प्रांगण में,
छोड थियोसाफी का अपना राग पुराना वह प्यारा
ऊँचे स्वर से फूका उसने होमरूल का नव नारा।[1]

वह अत्यन्त साहसी थीं। उनके अन्दर त्याग तथा बलिदान की इतनी प्रबल भावना थी कि सम्पूर्ण देश भर में छा गयीं —

कांगरेस में यह महिला मणि यदपि अभी ही थी आई।
निखर उठीं पर शीघ्र दीप्त सी एक देश भर में छाई।
× × × × ×
अतः स्वयं निज शक्ति संजोकर मानव धर्म सहारा ले,
देश जागरण करने निकली होमरूल का नारा ले।[2]

इस प्रकार एनीविसेण्ट त्याग, दया, साहस, वीरता की मूर्ति रहीं। ~~स्वका~~ इनमें सबसे बड़ा गुण जन कल्याण एवं 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना थी।

1- सत्यमेव जयते, पृ0 61

2- वही, पृ0 62

षष्ठ अध्याय

आलोच्य महाकाव्यों में प्रकृति वर्णन

भूमिका - प्रातः, सन्ध्या आदि वर्णन

प्रकृति के दसरूप

आलोच्य महाकाव्यों में प्रकृति-वर्णन अत्यन्त कुशलता के साथ हुआ है। सम्पूर्ण महाकाव्यों में प्रकृति-वर्णन अपने दशों रूपकों के सहित विद्यमान है। कुछ महाकाव्य जैसे 'सत्यकाम' तो पूर्णतः प्रकृति की वीथियों से रमण करता हुआ अपने अभीष्ट की ओर उन्मुख हुआ है। महाकाव्य प्रणेताओं की दृष्टि प्रकृति के प्रत्येक अवयव पर पड़ी। उनका प्रकृति प्रेम में अनुरक्त मन कहीं षड्ऋतु वर्णन में लीन हो गया —

हेमन्त एवं शिशिर ऋतु ——

"हम हेमन्त शिशिर पृथ्वी पर
जुड़वा भाई गौर कलेवर।
हम झंझा रथ पर चढ़ आते
अग जग के मन प्राण कँपाते
शीत स्पर्श से पीले पड़कर
वृक्षों के दल पड़ते झरझर
परिवर्तन देता जग को सुख
बदल धरा का जाता प्रिय मुख
हम दिगंत को बना दिगंबर
नव कलि कुसमों से देते भर।

बसन्त ऋतु —

"मैं बसन्त ऋतु राज कहाता
फूलवाण कर में धर आता
मेरा मार्ग बनाता पतझर
स्वागत करते शुक पिक मधुकर
सौरभ से भूपथ पर सुरभित
रंगों से दिशि-मुखकर रंजित,
बीज शिशिर जो बोता रज में
मुझमें फलते मूर्त रूप धर

ग्रीष्म ऋतु :—

ग्रीष्म नाम से मैं नित परिचित
तपस्वियों की भू यह निश्चित
मैं मेघों को खींच सिन्धु से
आच्छादित करता भू अम्बर
तपना जीवन में आवश्यक
कुछ भी होता नहीं अचानक
बाट जोहता जग जब अपलक
दया द्रवित होता नभ अन्तर।

वर्षा ऋतु :—

"मैं वर्षा, घोषित करते घन
अभिसिंचित करती भू-प्रांगण
स्वाति बूँद बन प्यास बुझाती
जब पुकारता चातक कातर
मुक्तालड़ वेणी में बाँधे,
सुर धनु में शोभा सरसाये
मैं अनन्त में विचरण करती
विद्युत रथ पर चढ दिग्भास्वर।

शरद ऋतु :—

"चन्द्रमुखी मैं शरद मनोरम
हरती भूत निशा का तमभ्रम
व्योमवासिनी, उतर धरा पर
जन-जन के मन में करती घर।
दुग्ध स्नान लगता दिङ्मण्डल
स्वप्नों से भरती भू-अंचल,
मैं अदृश्य अस्पृश्य ज्योति हूँ
दिव्य प्रेरणा पाते स्त्री-नर।[1]"

1- सत्यकाम, पृ0सं0 230-231।

तो कहीं पर वह प्रकृति परिचय कराने लगा —

"यही है वह मयूर-मोहक यमुना तट
जहाँ पहली बार
किसी ने अपनी आनन्द बाँसुरी बजाकर
काल कमल पर बैठी
वीणा वादिनी सरस्वती को संगीत नमस्कार किया
कृष्णोज्वलित स्वर-लहरी सुन
कला-कैलास-वासिनी पार्वती ने
नृत्य अनुरोध किया नटराज से -
उसी दिन, उसी क्षण
झनन् - झन्।"
× × × × × ×
अज्ञात यौवना कालिन्दी की नील धारा
चन्द्र - कुहा का दुपट्टा ओढ़े -
प्रसन्न पावस-पवन सी युवती हिरन गति में
बिना किसी को देखे, भागती-भागती
हठात् रुकी क्षण भर -
वंशी की प्रीति-प्लावनी तान सुन,
और निहारने लगी अपने गीतगन्धी ज्योतिःपुलिन को वह
जहाँ केशर कुंकुमित कदम्ब कानन के नीचे
खड़ा विष्णु-सुन्दर एक कृष्ण किशोर"[1]

कहीं उनका रसोल्लसित मन प्रातः कालीन ऊषा की सुबेला में प्रमुदित हो उठा —

"ऋषियों के सुन्दर आश्रम में थी प्रातः की बेला
डोल रहा था मचल मचल कर पावन पवन अकेला
× × × × ×
विहग मनोहर लगे चहकने था प्रातः की बेला।
सुषमा का आया जैसे था एक अनूपम रेला।" [2]

1- कृष्णाम्बरी, पृ०सं० 1, 2
2- निषादराज, पृ०सं० 58

और इस सुन्दर वेला में ऊषा की कमनीय छटा सबको विमोहित करने लगी —

प्राची के प्रांगण सुन्दर में
नभ दुहिता ऊषा फिर आई
देव स्वसा की रूप माधुरी
की आभा जग भर में छाई।

रक्तवर्ण तुरगों से चालित
चामीकर स्यन्दन में भासित
थी वह अपने दिव्य रूप से
करती सब जग को आभासित।

सुवर्ण केश बिखरे कन्धों पर
चन्द्रमुकुट सिर पर था शोभित
सुधा बरसती मधुराधर से
करती आप्यायित जग शोभित।

अमर सुन्दरी दिनकर-योषा
अमर यौवना दिव्य विभा की
तन कंचन की पिंगल धारा
सिर सिन्दूर की स्वर्णिम लाली।

लज्जारक्त कपोलों की औ'
कर चरणों की सुन्दर लाली
रंगती दिग्वधुओं के मुख औ'
देती थी जगती को लाली।

छाई उसकी स्मित-रेखा वर
नभ में, भूपर, गिरिशिखरों पर
सरिता सर पर, तरु गुल्मों पर
तरल चपल गंगालहरों पर।[1]

1- निषादराज, पृ०सं० 38

जहाँ उनका मन ऊषा की आकर्षित सुषमा से रंग जाता है, वहीं दोपहर की चिलचिलाती धूप कष्टदायी बन जाती है —

"मध्य गगन से तब पश्चिम की
और लगे बढने रवि बाजी,
चण्डातप से तप्त दिवा के
मुरझाई दिखती तरुराजी।
× × × ×
खेल रही थीं सूर्य रश्मियाँ
भूतल पर औ नभ मण्डल में
झुलस रही थीं तन जीवों के
अपनी क्रीड़ा के मण्डल में।
खिल खिल करती अट्टहास थी,
इठलाती थीं झूम-झपकती,
झिलमिल करते मुकुट पहनकर
जगती भर को तुच्छ समझती
अत्याचारी शासक के सम
करती थी सबको पदमर्दित
निःसंकोच सभी को सहसा
करती तापित, पीड़ित धर्षित।[1]

शक्ति के मद में चूर दोपहरी को सन्ध्या का भी ध्यान नहीं जो अपने तम से उसे आवृत्त कर देगी[2]—

"सन्ध्या नभ से लगी उतरने
धीरे-धीरे डरती-डरती
शोणित रंजित भू पर रण के
अपने पग थी रखती डरती।

1- निषादराज, पृ०सं० 84

2- वही, पृ०सं० 84

मधुर गुलाबी पग थे उसके
तरू शिखरों पर ही मँड़राते।
मन को यन्त्रित करने पर भी
नहीं-नहीं थे भू पर आते।[1]

महाकाव्यों में रजनी की भी छटा कम कमनीय नहीं —

"नभ सप्रभ किये थीं तारकाली निराली
प्रति ग्रह चमकाये दीपमाला सु-बाला।
वर नगर निराला लोक आलोक का था
तम सघन समाया गह्वरों में बनों में।[2]

फिर अर्द्धरात्रि की स्तब्ध वेला का तम तो सम्पूर्ण जगती को विमोहित सा किये था —

"अर्धरात्रि जनपथ-शून्य, दिशा स्तब्ध है,
वृक्ष जैसे ऊँघते से छाँह में आकाश की।
दिग्भ्रमित जुगुनुओं के नन्हें से उर में
रह-रह दीखती हैं सिसकियाँ प्रकाश की।
अन्धकार जैसे अँगड़ाई ले फैल गया,
जैसे किसी लालची में लोभ का प्रसार हो
मार्ग अजगर जैसा लेट गया बीच में
झटका सा झोंका तीव्र उसका फूत्कार हो।[3]

आलोच्य महाकाव्यों में कवियों के मन को कभी प्रकृति की सुरम्य छटा विमोहित करती रही—

देखो कानन के केकी वे अपना नाच दिखलाते
देखो मस्त बने हैं कैसे?
पंखों को फैलाये कैसे?
देखा गगन में चलते फिरते
मेघ खण्ड को एक विचरते
नाच उठें ये बन मयूर हैं
प्रेयसियों के चित चोर हैं।

1- अश्वत्थामा, पृ०सं० 50

2- जानकी जीवन, पृ०सं० 59

3- उत्तरायण, पृ०सं० 38,39

देखो देखो बने मस्त ये कैसा नाच दिखाते
रंग-विरंगी चन्दाओं से दर्शक हृदय लुभाते।
× × × ×

छोड़ो इनको प्रियतम देखो
नील व्योम में वह उड़ती जो
कितनी सुन्दर क्रौन्च पंक्ति है
जैसे वन्दनवार लटकी है
अथवा जैसे नील व्योम हो मुक्तामाला पहने
या कोई हो जैसे नभ में उरग केंचुली पहने
× × × × ×

सच कहते हो आर्य पुत्र तुम देखो वह तरू कैसा।
पीले पुष्पों से भूषित है सुवर्ण सुमंडित जैसा।
और लता वह देखो प्रियवर,
सुन्दर कुसुमों से सजधजकर
लचक रही है इठलाती-सी
पहने हो ज्यों सुन्दर साड़ी।
लदा लाल फूलों से सुन्दर
लगता वह भी कैसा तरूवर?
क्या कहते हैं इसको प्रियवर, सुन्दर मनहर कैसा?
वस्त्र गेरूओं से भूषित हो इक सन्यासी जैसा।[1]

कभी केशरी की दहाड़ हृदय में कंपन भरती रही —

"रे भीषण यह कैसा गरजन काँप उठे सुन जिसके प्राण?
इसको ही सुन कर भागी हैं नील गायें वे बिना विधाण
गरजा वह वनराज केशरी" बोले लक्ष्मण वीर भाव से
× × × × × ×[2]

और साथ ही वन के दुर्गम स्थलों को निहारने में उनका चित्त संलग्न रहा —

शैलों की श्रेणियाँ स्वर्ग के सोपानों सी
बचपन में भातीं उसका मन चढ़कर उन पर

1- निषादराज, पृ0सं0 60-67

2- वही, पृ0सं0 64

घण्टों तक खोया रहता निर्वाक नील में

हिम श्रृंगों को देखा करता वह अपलक दृग

हलके रेशमिल वाष्पों के चल पंख खोलकर

विद्युत दीपित घन जिन पर मँडराया करते।

रत्नछायाओं से कल्पित दुहरे तिहरे

सुर धनुओं के सेतु जोड़ते स्वर्ग धरा को,

जिन पर मोहित पग धर उसकी बाल्य कल्पना

विचरण करती अंबर पथ पर स्वप्न यान में।[1]

इस प्रकार से उक्त महाकाव्यों में प्रकृति की कोई ऐसी वस्तु नहीं जो अछूती रह गयी हो। उसके कोमल से कोमल, कठोर से कठोर सभी रूपों का सम्पूर्ण चित्र खींचा गया है। काव्यशास्त्र के आधार पर प्रकृति-वर्णन के दस रूप होते हैं —

(1) आलम्बन रूप

(2) उद्दीपन रूप

(3) मानवीकरण रूप

(4) आध्यात्मिक रूप

(5) उपदेशात्मक रूप

(6) सहचरी रूप

(7) दूती रूप

(8) वातावरण निर्माण के रूप में

(9) आलंकारिक रूप

(10) संवेदनात्मक रूप

उपर्युक्त सम्पूर्ण रूपों का चित्रण आलोच्य महाकाव्यों में हुआ है, जो अत्यन्त संक्षेप में निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है —

महाकाव्यों में प्रकृति के दस रूप

प्राकृतिक दृश्यों के साहचर्य से ही मानव ने सौन्दर्य-बोध की उपलब्धि की है। उसके सम्पूर्ण दशों रूपों से तादात्म्य स्थापित किया। तभी तो काव्य में प्रकृति-चित्रण को अनिवार्य अंग माना गया। आलोच्य महाकाव्यों में प्रकृति के सभी रूपों के दर्शन हो जाते हैं—

1- सत्यकाम, पृ०सं० 217

(1) आलम्बन रूप — महाकाव्यों में बिम्बग्रहण एवं नाम परिगणन आलम्बन के दोनों रूपों का चित्रण हुआ है। यथा —

(1) तिन्दु रसाल शुचि बिल्व मधूक, जंबू कदम्ब पनसादि वदर्यमाला
संपन्न फूल फल से तरु मुक्त छाया, देते मनोज्ञ छवि हैं गिरि शृंखला को।[1]

(2) केकी कपोत पिक चातक कीर सारिका
चक्रांक हंस कलहंस चकोर क्रौंच थीं।[2]

(3) आने लगीं सुविहंगावलियाँ दिगन्त से
गाने लगीं रुचिर रागिनियाँ सुराग की।
सन्देश सा सुयश या ऋतुराज का सुना,
देने लगीं सुमन संकुल को प्रफुल्लता।[3]

(4) शीतातिरेक वश शीतल शीत काल में
सौन्दर्य राशि कलियाँ अलियाँ बिला गयीं
शोभा भरी तितलियाँ अब दीखती न थीं
सूनी सशंक उजड़ी गलियाँ निकुंज की।[4]

(5) कुसमित कर्णिकार किंशुक चम्पक उद्दालक पाटल
पारिजात मंदार, असन कुरबक शिरीष चंदन कल
कोविदार पिचुमंद सरल वट प्लक्ष बिल्व औदुम्बर
नारिकेल, खर्जूर, क्रमुक इंगुदी कपित्थ कुटजवर
कनक शिंशपा सप्तपर्ण अश्वत्थ निरन्तर चंचल
वर्णों के अर्पण से अर्जित ऊर्मि तरल थे प्रतिपल।[5]

(6) देवदारु शीशम लहराते, शाल विशाल उच्च शिखरों पर।
अमलतास गुल और मनोहर शोभित गिरिपादों पर सुन्दर
पीपल बरगद छाया शीतल हरती श्रम को प्रमुदित पल-पल।[6]

1- भगवान राम, चित्रकूट खण्ड, 1/8
2- जानकी जीवन, 7/45
3- वही, 6/31
4- वही, 6/5
5- रामदूत पृ0 33
6- सीतासमाधि, पृ0 115

(7) आगमन ब्रज बसन्त का

शुभारम्भ वृन्दावन में वसन्तोत्सव
पहना वृक्षों ने नव पल्लव-परिधान
ओढ़ ली सतरंगी चूनर लताओं ने
पलाश की लाल खिलखिलाहट पर
चूने लगी सूर्य ज्योतित हँसी
चहकने लगी चिड़ियों की उड़ती कविताएँ।[1]

प्रकृति के कोमल पक्ष का दर्शन प्रायः सभी कवियों ने किया है किन्तु उसके भयंकर रूप का अवलोकन नहीं के बराबर हुआ। जिन कवियों ने उसके भयंकर रूप का चित्रण किया, उन्होंने या तो प्रकृति के भीषण रूप के दर्शन कराये हैं या फिर उसके विराट् रूप का वर्णन किया है।

(1) घोर चारों ओर हाहाकार का रोर मानो रुद्र का आक्रोश था,
अन्धकाराछन्न हो आकाश भी आर्त शोकोच्छ्वास आहों से भरा।
धूलि धरा से दिशायें ध्वान्त हो वेदना पीड़ा व्यथा से रो रहीं।
क्रूर से भी क्रूर झोंका झोंक में सृष्टि नष्ट भ्रष्ट सी होने लगी।[2]

(2) भालू द्वीपी शार्दूल द्विप घूमते
चीते नाहर और हैं वृक दूमते
शाखी-शाखाओं से विषधर लटकते
उनको खा जाते वे जो हैं भटकते।[3]

(2) उद्दीपन रूप :— इसमें प्राकृतिक वातावरण के द्वारा हृदयस्थ भावों को उद्दीप्त किया जाता है। सीताहरण के उपरान्त सुखद प्रकृति राम के लिए कितनी दुःखद प्रतीत होती है —

(1) वन गज करिणी के संग आनन्द देखो
सित कुमुद सरों में मग्न है केलियों में
असि इव नग की है कान्ति युक्ताउद्दीप्ता
कुछ-कुछ दुखदायी वायु संचार होता।[4]

1- कृष्णाम्बरी, पृ०सं० 70
2- जानकी जीवन, 12/23
3- निषादराज, पृ० 48
4- भगवान राम, ऋष्यमूक खण्ड, पृ० 08।

(2) किंकिणी क्वणन कंकण झनन्झन सुधि में गुंजित,
चपला की चमक दमक से चंचल मन चिंतित।
आषाढ मास में आकुल बादल की पुकार,
मन से मन की टकराहट नित सैकड़ों बार।
निशि में शशि मुख को देख प्रिया की स्मृति का आवेश,
लहराता चारों ओर उसी का व्योम केश।[1]

सीता निर्वासन के बाद भी प्रकृति दुखदायी प्रतीत होती है —

(1) शशों के शान्त शंकित शावकों ने,
प्रिया की सी सशंकितता दिखाई।
मृगों के मंजु मोहक लोचनों ने,
दृगों की दीप्ति की स्मृति सी दिखाई।[2]

(2) काले आनन की कराल दन्तावली,
कौंधा-सी जब कौंध-कौंध जाती कभी।
कान्ता की कमनीय कोमल कं कान्ति में,
हो जाता भयभीत-भूरि रोमांच था।[3]

संयोग श्रृंगार में प्रकृति का उद्दीपन रूप देखिए —

(1) वलित कलित वह विपिन समुच्छ्वसित अपर गंध मादन सा।
गंध प्रवाह अनिल-सेवित था शोभित शत नन्दन सा।
कोकिल की काकली मयूरों की उन्मादक केका,
समुच्छ्वासित थी शुक चातक की कुंज-कुंज स्वर लेखा।
बरस रहे थे पक्षि पक्ष हत सुमनद्रुमों के घन से
सस्मित था धरती का आनन नभ के मधु चुम्बन से।[4]

1- अरुण रामायण, किष्किंधा काण्ड, पृ0सं0 417

2- जानकी जीवन, 16/132

3- वही, 15/7

4- रामदूत, पृ0सं0 34

प्रकृति नटी के वर्णन में संयोग की मधुर कल्पना देखिए —

(1) कुवलयन्दल के नील नयन में
छायी कुछ कुछ लाली
प्रेम विकल प्रेयसी नयनों में
भरी मदिर मद प्याली।
× × × ×
फड़के ओष्ठ युगल प्रेयसि के
पाने को प्रिय चुम्बन
सहसा थिरक उठे कुच दोनों
पाने प्रिय आलिंगन।[1]

(2) चारों ओर बसंत श्रृंगार चारों ओर
जोर-जोर से समीरण में सन सनाहट
बोलने लगी एक साथ सौ-सौ कोयल
मँह-मँह करने लगा वृन्दावन पुष्पपराग से,
डगमगाने लगे कामना-तरंग-चरण
चोंच में चोंच सटाने लगी चिड़ियाँ
अमलतास के पीले फूल पर
लोटने लगी गन्ध-मादिनी हिलोर
कि पंखुड़ियाँ उड़ने लगीं- झरने लगीं
सौरभ मदमाती झंझा -
नृत्य करने लगी जहाँ तहाँ,
कहाँ नहीं सुवास - चक्रवात- लास्य?[2]

भय की भावना को उद्दीप्त करने वाले प्रकृतिरूप को देखिए —

(1) कभी सूप के पंख खोल उड़ते विराट खग,
गरुणों श्येनों को विभीत कर चीत्कारों से।
घूकों की घूत्कारों का उत्तर देते पिक,
आर्द्र स्वरों से चीर गहन की अगम शान्ति को।[3]

1- निषादराज, पृ0सं0 9

2- कृष्णाम्बरी, पृ0 28

3- सत्यकाम, पृ0सं0 10

(2) इसके विकट हास को सुनकर,
काँप-काँप हैं उठते।
सागर तल में थी वीरूधगण,
धैर्य न मन में रखते।
रूद्रदेव सम ताण्डव रचती,
गर्जन तर्जन करती।
चलती है यह भीषण आँधी,
भय का सर्जन करती॥[1]

(3) कहीं अँधेरा गहन भरा है, सर्-सर सर्प विषैले जाते।
गर्जन करते भालू कुंजर, माँस चबाते केहरि आते।
अन्दर बन्दर दाँत बजाते, बाहर सूकर गुर्र गुर्राते।[2]

(4) उल्टे बड़े-बड़े पेड़
टूटीं मोटी-मोटी डालियाँ
उड़े झोपड़ियों के छप्पर भी
मचा हाहाकार-हाय,
× × × ×
व्याघ्र गर्जित बिजलियाँ
प्रलयंकर अंधकार
घना-घना-घना
पवन प्रभंजन साँय-साँय, सनन्-रणन्
फट्-फट, चट्-चट, फटाक-फटाक
धप्-धप, धपाधप, धाम-धाम-धाम
ओह सर्वनाशी समय आ गया
विकराल काल तिमिर छा गया, छा गया।[3]

1- अश्वत्थामा, पृ0सं0 41

2- सीता समाधि, पृ0सं0 113

3- कृष्णाम्बरी, पृ0सं0 41-42

(3) मानवीकरण रूप —

प्रकृति पर मानव व्यापारों के आरोप को मानवीकरण कहते हैं। इसमें प्रकृति के विभिन्न क्रियाओं, चेष्टाओं एवं लीलाओं का वर्णन मानव व्यापारों, क्रियाओं तथा चेष्टाओं की भाँति किया जाता है। आलोच्य महाकाव्यों में अनेक स्थल हैं जहाँ प्रकृति मनुष्यों की भाँति सुखी एवं दुखी होती है। राम-जन्म के समय सूर्य का राम दर्शन हेतु लालायित होना, अवधपुरी की पताकाओं का दण्डी सन्यासियों की तरह आचरण करना, दशरथ-मरण पर प्रकृति का बिलखना राम को दुखी देख आँसू बहाना तथा वानर भालू आदि को मानवीय व्यवहार युक्त दिखाना इत्यादि स्थल महत्वपूर्ण हैं —

(1) गंध-धूप परिव्याप्त चतुर्दिक मातिरश्व में
मुक्त नील के नीचे दुहरा नील सँजोते।
संध्या उतर रही धीरे गैरिक विगूवसना,
समाधिस्थ लगता अरण्य मुनि ध्यानावस्थित।[1]

(2) देखा उसने वधू उषा झीने तमिस्त्र का
अवगुंठन अब उठा रही अर्धस्मित मुख से
एक सुनहली श्लक्ष्ण रेखा पहले प्रकाश की
अंकित करती अंतरिक्ष में विजय ज्योति की।[2]

(3) हेमन्त ने शिशिर ने निज क्रूर कर्म से,
फेंका जिन्हें दुःखद दारुण दुःख अंक में।
देगा बसन्त प्रणवन्त अनन्त यत्न से
संजीवनी सदृश नूतन जीवनी उन्हें।[3]

(4) निर्बाध वीरुध लगे सुधि सी सम्हालने
पौधे नये विपुल बालक वृन्द से जगे
संज्ञा मिली सजग थीं बलहीन बल्लियाँ
बालानुरूप वर औषधियाँ सुधामयी।[4]

1- सत्यकाम, जिज्ञासा, पृ0 4
2- सत्यकाम, प्राणब्रह्म, पृ0 7।
3- जानकी जीवन, पृ0 6/2
4- जानकी जीवन, 6/28

(5) मीन-विलोल विस्त्रसित अम्बर कृशोदरी अभिरामा,
प्रस्थित थी क गिरि अंक छोड़ सरि मानवती सी वामा।[1]

पीतवर्ण मुख लिए उषा थी
निकली प्राची के आंगन में
करुणा की बन मूक मूर्ति वह
बरसाती करुणा कण-कण में।[2]

रजनी को बाला के रूप में चित्रित किया गया है जिसके तम रूप केश बिखर जाने से ही कालिमा छाने लगी है —

रजनि बाला केश खोले आ चली
कालिमा उसके तनू की छा चली।[3]

ऊँचे-ऊँचे वृक्ष चाँद के दाएँ- बाएँ,
जल प्रपात-धूम्र में घुली हुई चाँदनी
घाटियों से चन्द्रिका-चादर ओढ़कर
बिहार करती नवयुवती यामिनी।[4]

(4) आध्यात्मिक रूप —

इसमें प्रकृति में रहस्यमयी सत्ता का आभास होता है। यह विराट् ब्रह्माण्ड उस पुरुष की लीला भूमि है। वह अलक्ष्य इंगित गूढ़ रहस्यमयी एवं अज्ञात है। सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, वायु उसकी सत्ता के प्रतीक हैं। कवि अपने काव्य के माध्यम से उसकी सत्ता को उद्घाटित करने का प्रयास करते हैं। महाकाव्यों में राम को विराट् पुरुष का अवतार मानकर उसकी सत्ता का अनुभव कण-कण में किया गया है। जहाँ राम जाते हैं, वातावरण सुखद हो जाता है, वृक्ष फलदायी बन जाते हैं, नदियाँ सजल हो जाती हैं, विरोधी जीव जन्तु एक साथ विचरण करने लगते हैं, इसके अतिरिक्त राम कथा वाले महाकाव्यों के अतिरिक्त अन्य महाकाव्यों में भी प्रकृति के आध्यात्मिक रूप में दर्शन होते हैं —

1- रामदूत, पृ0सं0 34
2- अश्वत्थामा, पृ0 66
3- निषादराज, पृ0 27
4- कृष्णाम्बरी, पृ0 112

(1) रवि को गिरता देख पंख हत अग्नि विहग सा
धूम क्षितिज में सोचा करता विस्मय हत मन।
कौन किये धरती को धारण? किस पर अटका
वन प्रदेश? कैसे नेत्र देखते श्रुतियाँ सुनतीं?
कैसे वाणी शब्द उच्चरित करती सार्थक?
कौन इन्द्रियों को, मन को प्रेरित करता वह?
भेद नहीं मिलता कुछ भी। घने अंधकार के
अवगुंठन में ओझल होगा दृश्य जगत अब
नभ असंख्य दृग फाड़ और भी तब रहस्यमय
बन जायेगा।....... सचमुच कैसी विडम्बना है।[1]
× × × × × ×
निखिल वस्तु लगती रहस्यमय पर्वत सागर,
ऊषा संध्या, सूर्य चंद्र पावक, पीपल, वट
सब प्रतीक थे गुह्य असीम अदृश्य शक्ति के।[2]

(5) उपदेशात्मक रूप :—

प्रकृति में निहित तथ्यों के उद्घाटन से ~~मन~~ मानव को बल, साहस, नैतिकता एवं शिक्षा प्रदान की जाती है। सर्व साधारण के जीवन को उन्नत विशाल बनाने की चेष्टा के कारण कवि मानव के सन्निकट रहने वाली प्रकृति के माध्यम से उसे शिक्षा देने का प्रयास करता है।

(1) पुष्प उसे सुन्दरता से रहना सिखलाते
पशु-पक्षी प्रेरित करते वह संकेतों को
छोड़ मुखर वन शब्दों में वाणी दे मन को
शशि की रश्मि ऋचा प्रकाश की लिखा लहरों पर
लिपि संरक्षित भाषा के प्रति आग्रह करती।[3]

1- सत्यकाम, पृ0 5

2- वही, जाबाला, पृ0 23

3- सत्यकाम, पृ0 18

(2) है अन्धकार का ही प्रसार, डूबे तरुओं के हैं समूह
जैसे समस्त इस जीव जगत को, लीन किये हैं मोह व्यूह।[1]

(3) जैसे तटवर्ती तरुओं को नदी ढहा देती है,
उसी भाँति दुर्नीति नृपों का सर्वनाश करती है।[2]

(4) अपनी मूक गिरा से सबको
सूर्य-हृदय की व्यथा सुनाती,
जिसको जग की कष्ट कहानी
रह-रह थी बरबस उपजाती
कितने क्रूर कर्म है ~~का~~ मानव
अपने इस जग में करता
कहला प्रभु की श्रेष्ठ सृष्टि भी
पाप कर्म ही है वह करता।
दया नहीं वह तनिक जानता
सदा चाहता बदला लेना
कैसी बनी वृत्ति जन मन की
चाहे लेना और न देना।[3]

जिस प्रकार किसी वीर के मुँह फेरते कायर व्यक्ति निकल पड़ते हैं, वैसे ही सूर्य के छिप जाने पर एवं रात्रि होने पर तारे एवं निशिचर भ्रमण करने लगे हैं —

(1) शूर के मुँह फेरते ही समर से
जैसे कायर निकलते बन कुँवर से,
ईश, अद्भुत जगत का व्यवहार है,
कायरों का क्या यही बस सार है?
उडु निकर आ व्योम में खिलने लगे,
ध्वांत निशिचर भी पुनः फिरने लगे
रजनिबाला केश खोले आ चली
कालिमा उसके तनू की छा चली।[4]

1- उत्तरायण, पृ0 108
2- रामदूत, पृ0 26
3- अश्वत्थामा, पृ0 67
4- निषादराज, पृ0 27

कवि प्राची दिशि की आभा के द्वारा भारतवासियों को जागृति का संदेश दे रहा है —

जल थल अम्बर में लुटा रही,
प्राची जाग्रति संदेश हेम।
लूटो-लूटो इस लाली को,
जागा उर-उर में देश-प्रेम
जागी कलियाँ, भ्रमरावलियाँ,
जागे पक्षीगण शान्तिदूत।
यह सुनो प्रकृति का सत्यराग,
जागो भारत माँ के सपूत।[1]

(6)सहचरी रूप में :— कवियों ने प्रकृति को कहीं-कहीं मानव-जीवन के अनुकूल चलने का प्रयास किया है —

(1) प्यारा-प्यारा अमृत सम जो स्वामि संवाद पाया
सूखे-सूखे सुधर वपु वे हो गये तो हरे से।
जैसी होती सुखद जब है वारि की दृष्टि प्यारी
हो-हो जाती हरित विटपी बल्लरी शोभनीया।[2]

यही प्रकृति दुख में दुःखित प्रतीत होती है —

(2) डालियों में पक्षियों के पुंज वे, झाड़ियों में वे मृगों के वृंद भी।
प्राण पीड़ा चेतना खोये हुये, बोलते या वेदना से चीखते।[3]
× × × × ×
वंश की साध्वी स्नुषा की दुर्दशा अंशुमाली ताकता शोकार्त था
सामने कैसे कढे संताप से, धुंध में मानो इसी से था छिपा।[4]

(3) तारक समूह जैसे व्योम के मुकुर में
भूमि के करुण आँसुओं के प्रतिबिम्ब है।[5]

1- सत्यमेव जयते, पृ० 104
2- जानकी जीवन, 1/31
3- वही, 13/57
4- वही, 13/59
5- उत्तरायण, पृ० 38

(4) लख उनकी वेदना गगन थी भग्न हृदय लगता है,

धरती शत-शत प्रस्त्रवणों में विगलित हो रोती है।[1]

(5) बाहर की इस आँधी के साथ

चलती मेरे मनमें

कटु भावों की भीषण झंझा

रचती उलझन मन में।[2]

चित्रकूट में भरत मिलाप के समय लाखों का जन-समूह निर्णय सुनने को आतुर एवं स्तब्ध है तो प्रकृति उनसे कम नहीं —

(6) कलरव करते थे तरुओं पर नाना पक्षी

लगा चिड़ियों ने चटक-चटक की रट थी रखी

परन्तु कलरव पर विहगों के ध्यान न देकर

वृक्ष लताएँ मौन खड़े थे कान लगाकर

स्व राम-भरत संवाद चाहते थे वे सुनना

जान राम का निर्णय उस पर मनमें गुनना

मन्द पवन भी इसीलिए कुछ डोल रहा था

कर्ण कुहर के पर्दे अपने खोल रहा था।

उन्नत मस्तक चित्रकूट भी शिश उठाए

देख रहा था भरत संग जो जो आये

रामचन्द्र को पुनः अवध को ले जाने को

दशरथ-सुत सिंहासन वर को अपनाने को।[3]

सीता दण्डकारण्य में मुदित मन मधुर-मधुर गाती फिरती हैं एवं अत्यन्त प्रसन्न हैं तो प्रकृति कब पीछे रह सकती है —

(7) बन बाला सा साज सजाकर साड़ी रंग विरंगी पहिरे

घुस जलमग्न हुये खेतों में गाती बोती हर्षित लहरें।

घट सघन अबलोक मयूरी, नाचें झिलमिल रस में पूरी॥[4]

1- रामदूत, पृ० 27

2- अश्वत्थामा, पृ० 42

3- निषादराज, पृ० 135

4- सीता समाधि, पृ० 121

कृष्ण के जन्मोत्सव पर प्रकृति कितनी प्रफुल्लित है —

(8) उस दिन, विशालस्तना गायों ने
बिना दुहे ही
टपका दीं अमृत-निर्झरिणी,
बिना तोड़े ही रसाल-वृक्षों ने गिराये फल
उस दिन पवन ने भी अनुमानी कुशलता दिखाई—
झकोर करों से जामुन-फल तोड़ने में।[1]

भारत की स्वतंत्रता के लिए प्रकृति कितनी उत्सुक है देखिए —

(9) अम्बर पट बहुरंगा था,
या उड़ रहा तिरंगा था।
मेघों ने मंडप छाया
पपिहों ने स्वागत ~~गया~~ गाया।
दिशि-दिशि ने अगवानी की,
आजादी की रानी की।
अचल उठे आसन देने
सागर बढ़ा चरण धोने
नदियों ने माला डाली
गगन हुआ दीपक थाली।[2]

(7) दूती रूप में :—

इस रूप में नायक या नायिका प्रकृति को संदेश वाहक के रूप में प्रयोग करते हैं। रावण सीता को हरण कर लिये जा रहा है। वे अत्यन्त व्याकुल हैं, कोई रामचन्द्र जी से यह दशा बताने वाला नहीं मिलता। सीता प्रकृति से कहती है कि तू मेरी सहेली के समान है अतः उनका ध्यान रखना —

1- कृष्णाम्बरी, पृ0 4।

2- सत्यमेव जयते, पृ0 368

प्रकृति सहेली मेरी बन की, ध्यान पिया का करती रहना।
कथा पुरानी उन्हें सुनाना, दुःख हृदय निज गोकर कहना।
गोदावरि के तट अति सुन्दर डूब न जाना जल के अन्दर।[1]
× × × × ×
खिंचती जाती शून्य गगन में जाती दूर कहीं अपनों से।
पंचवटी की धरा रम्य तुम कहना भेद झुके नयनों से।[2]

(8) वातावरण निर्माण के रूप में —

वर्तमान समय में प्रकृति का प्रयोग वातावरण निर्माण के रूप में पर्याप्त मात्रा में किया जाता है। इससे काव्य में वर्णित आगामी प्रफुल्लता एवं प्रसन्नता तथा शोक एवं विषाद से पाठक पहले ही परिचित होने लगता है और फिर उसे केन्द्रीय भाव को समझने में विशेष कठिनाई नहीं होती। जानकी-जीवन में शोक एवं विषाद का वातावरण निर्माण करने हेतु कवि ने लिखा है —

(1) उड़ी जो धूलि थी रथचक्र द्वारा दिशाएँ उन्मना विमना मलीना।
किये थीं धूल धूसर पादपों को, लताएँ छिन्न हो महि लुण्ठिता थीं
× × × × ×
खड़ी छूटी मृगी मृग मालिका सी, बड़ी आँखें झड़ी दुःख की लगाए
अकेली सारसी अकुला रही थी, बुलाती बोलती इनको बुलाती।[3]

इसी तरह लवकुश के जन्म के समय प्रकृति को देखिए —

(2) लजीली फुल्लिता फलिता लताएँ, सजीली बेलि बल्लरियाँ रंगीली
सलोने पादपों तरू वीरूधों के गले में डालती वर बाँह मानो।
× × × × × ×
उमंगों की तरंगित वायु द्वारा महा आमोद मोदित नाचती थी
प्रसूनों पल्लवों कलियों फलों में अनोखी भाव व्यंजन की क्रियाएँ।[4]

(3) उसकी कुंकुम केसर किरणें
लगी फैलने जग के नभ में
उसकी पीड़ा कम करने को
बाँट रही ज्यों उसको जग में।

1- सीता समाधि, पृ0 166
2- वही, पृ0 140
3- जानकी जीवन, पृ0 16/3, 4
4- वही, 18/8, 9

ऊषा के पीछे चिन्तातुर,

दिनकर भी आ पहुँचे तब ही।

रक्त वदन पर पीली किरणों,

की छाया छायी थी कब की।

रवि चिन्ता का दिग्दर्शन थी,

रवि की किरणें उड़ कर आतीं।

ऊपर नभ में सम्मुख भूपर,

निम्न लोक में उड़ती जाती।[1]

यहाँ पर सूर्य एवं ऊषा युद्ध की विभीषिका से चिन्तित तो है ही साथ ही भीम के द्वारा होने वाले कुकृत्यों से भी जो कि भानुमती आदि को उत्पीड़ित करता है।

श्री रामचन्द्र के आगमन से वनप्रान्त, ऋषि मुनि सभी सुखी हो जायेंगे किन्तु अयोध्यावासी रूपी चकोर दुखी हो जायेंगे –

मुस्काता था अरूण प्रभात,

चली गयी थी काली रात।

कुमुद बन्धु थे पश्चिम पथ पर,

लगे विहँसने देव दिवाकर।

चक्रवाक युग मिलते फिर से,

कि पर चकोर दुःखित थे लखते।

विहग मनोहर लगे चहकने पा प्रातः की वेला।

सुषमा का आया जैसे था एक अनूपम रेला।[2]

देवकी-वसुदेव को कष्ट पाना है जिसके लिए यह वातावरण द्रष्टव्य है —

रात ने अपना चन्द्र-मुख छिपा लिया,

साँवरी हो गई क्षण में ही सम्पूर्ण प्रकृति

कारे-कारे बादरों के बीच

कहीं कहीं टिमटिमाते तारे

जैसे कोई याद दिला रहा हो भूली बिसरी बातों को।[3]

1- अश्वत्थामा, पृ0 66

2- निषादराज, पृ0 58 3- कृष्णाम्बरी, पृ0 4

(9) आलंकारिक रूप :-

इसमें सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए प्राकृतिक उपादानों को ग्रहण किया जाता है। प्रायः सभी कवि वस्तुवर्णन, सौन्दर्य चित्रण के लिए प्राकृतिक उपमानों को खोजते हैं। अंगों की सुकुमारता, सजलता, मसृणता, कठोरता, अथवा सौन्दर्य, माधुर्य एवं औदार्य का चित्रण प्राकृतिक उपमानों द्वारा महाकाव्यों में प्राप्त होता है। इसके लिए कवियों को अलंकारों का आश्रय लेना पड़ता है। इन अलंकारों में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा और रूपकातिशयोक्ति एवं प्रतीप का बाहुल्य है।

(1) नीलकमल, मृगचितवन, कोमल रक्तिम किसलय
कंपित तनु लतिकायें, रसों की गति गरिमा--
निखिल प्रकृति उपकरणों की श्री सुषमा को जो
समाविष्ट कर मूर्त हो उठे रूप मुकुर में।[1]

(2) तीखे शिलीमुख शिलीमुख से मनोज के,
काले महाविषम के विषमें बुझे हुये।
गुंजारते गहन से फुसकारते चले,
पाये अचेत जिसको उसको डसे।[2]

(3) परम उच्च हिमालय श्रृंग सा अमल मानस सा ऋषिराज सा
कल कलेवर विस्तृत वास्तु का धवल धाम सुशोभित राम का[3]

(4) मेरू सदृश उन महाद्रुमों की शान्त कुंज सी छाया
पाकर सजती थी धरती की मणि कंचन सी काया।[4]

प्रातःकालीन प्रकृति नटी के हृदय पर झूलने वाली कमल माल सरोवरों में उत्फुल्लित होने वाले कमलों को लिया गया है --

उन्नत वक्षोजों पर पंकज
माला झूम उठी औ'
बलखाती कटि को छूने को
मानों भूल उठी हो।[5]

1- सत्यकाम, पृ0 97, 98 2- जानकी जीवन, 6/67
3- जानकी जीवन, 8/69 4- रामदूत, पृ033 5-निषादराज, पृ0 10

(10)संवेदनात्मक रूप में —

मानव कृत्यों को देख या उनके ऊपर सुख दुख से जब प्रकृति संवेदनशील दिखाई पड़ने लगे तब उसका यह रूप होता है। यथा —

घृणित दृश्य यह देख वहाँ का,
चली न संध्या नील गगन से।
खड़ी रही वह चिंतित मन में,
कैसा है यह मानव मन से।[1]

यहाँ पर महाभारत के युद्ध में मरे वीरों एवं अन्य जीवों (घोड़े, हाथी) आदि के ~~शब्दों~~ शवों को देखकर सन्ध्या अत्यन्त दुखित है। संध्या पृथ्वी पर न उतर कर केवल पेड़ों की पत्तियों पर ही अपने गुलाबी पैर रखे हुए है।[2]

सीता हरण के समय प्रकृति की संवेदनशीलता द्रष्टव्य है —

शीश झुकाए खड़ी लता थी, सुमन विलखते पंख नोचकर।
छोड़ उसांसें रही हवा खड़े वृक्ष थे उर मसोस कर।
बहती गोदावरी डरी सी, शब्द विहीन मूक बहरी सी
नहीं चहकते प्रमुदित पक्षी नहीं झूलती मग्न डालियाँ
घिरी उदासी सभी जगह पर शीश झुकाए खड़ी शालियाँ
ढूढ रहे थे सारे व्याकुल, बालवृद्ध सब थे चिन्ताकुल।[3]

1- अश्वत्थामा, पृ0 52

2- वही, पृ0 50

3- सीता समाधि, पृ0 152

सप्तम अध्याय

आलोच्य महाकाव्यों में वर्णित उदात्त संदेश

एवं

उनका योगदान

'भगवान राम' महाकाव्य का उदात्त संदेश

मनबोधन लाल श्रीवास्तव ने यद्यपि श्रद्धा एवं भक्ति की पीठिका पर स्थित भावों एवं विचारों को 'भगवान राम' महाकाव्य के रूप में परिणित किया, किन्तु वह श्रद्धा एवं भक्ति के साथ, मर्यादा, सत्य, त्याग, निष्ठा, परोपकार आदि गुणों से स्वयं ओतप्रोत हो गया। यह महाकाव्य अन्धकार के ऊपर प्रकाश की, असत्य पर सत्य की, निर्दयता पर दयालुता की विजय का प्रतीक है।

इन्होंने मर्यादा का ध्यान प्रत्येक स्थल पर रखा है। तभी तो अहल्या जैसी पतिता के चरित्र में मर्यादा के सत्यानुभव का समावेश करके नारिवर्ग को पतिव्रत धर्म का संदेश दिया। अहर्निश व्यक्ति स्वान्तः सुखाय, वैभव, विलास आदि में लिप्त रहता है जिसके विरोध में कवि ने राम एवं भरत जैसे पात्रों के माध्यम से भौतिकता को तिलांजलि दी है। पतिव्रता सीता, अनुज लक्ष्मण, सेवक हनुमान मित्र विभीषण एवं सहयोगी सुग्रीव, माँ तथा सास के रूप में कौशल्या, सुमित्रा आदि को लेकर उन्होंने एक मर्यादित धर्मानुचरित जग की कल्पना की है। उनके आधार पर श्रेय कर्तव्य पालन, निष्ठा नैतिकता एवं त्याग से बढ़कर संसार में कुछ नहीं है। वे इस धरा को सुख समृद्धिमय, क्लेशहीन, एवं दुष्ट व्यक्तियों से रहित देखना चाहते हैं। इस प्रकार से कवि के हृदय में 'वसुधैव-कुटुम्बकम्' की भावना छलक रही है, जो इस महाकाव्य का प्रमुख संदेश है।

योगदान :--

प्रस्तुत महाकाव्य भारतीय वाङ्मय एवं भारतीय जन-जीवन के लिए प्रेरणास्रोत है। सत्कर्तव्यों, उदात्त विचारों, गम्भीर भावों से ओत-प्रोत यह महाकाव्य जन साधारण से लेकर राजनेताओं तक का मार्ग दर्शन करता है। इसमें पिता, माता, भाई मित्र, सेवक, सभी के कर्तव्य निर्धारित किये गये हैं। जिनके आधार पर एक आदर्श सभ्य समाज का निर्माण हो सकता है।

'जानकीजीवन' का उदात्त संदेश

आधुनिक काल के मानव को श्रेष्ठ कर्मपथ की ओर यह महाकाव्य अग्रसर कर रहा है। इसमें आद्यन्त लोक सेवा, लोकहित एवं प्राणिमात्र के प्रेम का स्वर निनादित होता है। यह भारतीय उन्नत विचारों एवं नैतिकता तथा धार्मिक विश्वास से परिपूर्ण है।

इसमें उन्हीं विचारों भावों एवं अनुभूतियों तथा प्रेरणाओं को समाहित किया गया है, जिनकी भारतीय संस्कृति में नितान्त आवश्यकता है। इसमें बताया गया है कि मात्र त्याग एवं सात्विक का कार्यों से ही जन जीवन का कल्याण सम्भव है। श्री राम को सीता के प्रति अगाध स्नेह होने पर भी अपनी प्रजा के लिए उन्हें त्यागना पड़ा।[1] यह प्रसंग प्रेरित करता है कि स्वार्थी न बनें दूसरों का भी ध्यान रखो। संसार में भोग विलास ही सब कुछ नहीं है। जो विचार भाव, धारणाएँ, सिद्धान्त, मान्यताएँ, इसमें सम्प्राप्त हैं, उनसे मानव जीवन में परस्पर सौहार्दता, सहानुभूति, सौजन्य एवं सहृदयता तथा सामंजस्य प्रस्थापित हो सकता है। कवि अपनी कृति के माध्यम से मानव जीवन के अभ्युदय में सहायक होना चाहता है। इसीलिए वह संकेत करता है कि मानवता की सेवा, त्याग आदि से ही सच्ची एवं आनन्द प्रद हो सकती है। कवि मानव धरा को ही सुख शान्ति सौहार्द एवं आनन्द से परिपूर्ण बनाकर उसी में स्वर्ग के दर्शन करना चाहता है। अतः इसमें सर्वकल्याण, जग-बन्धुत्व आदि की भावनाएँ उद्घाटित होती हैं। यही जानकीजीवन' का संदेश है।

योगदान :—

प्रस्तुत महाकाव्य भारतीय नारी के प्रति हो रहे अत्याचार के प्रति विरोध का आधार है। नारी के ऊपर समाज द्वारा सदियों से अत्याचार होते चले आ रहे हैं जिसकी ओर कवि का ध्यान आकृष्ट हुआ है। उसने बताया है कि नारी का समाज में वही स्थान है जो पुरुष का। निर्वासन के समय सीता से राम के प्रति कटु शब्द कहलाकर कवि ने नारी जगत को अन्याय के विरोध में आगे आने के लिए प्रोत्साहित किया है।

'उत्तरायण' का उदात्त संदेश

डा० वर्मा ने हिन्दू धर्म के प्रमुख प्रतिनिधि श्री राम के चरित्र में सीता निर्वासन जैसे कांटे को निकलकर प्रेम, सौहार्द, निष्ठा एवं मानव विश्वास को सुदृढ़ बनाया है। औचित्य को ध्यान में रखते हुए तुलसीदास जी द्वारा मात्र हास परिहास में गृह त्याग करवाकर मर्यादा एवं शील की रक्षा करते हुए उन्होंने उदात्त भक्ति का संदेश

दिया है। शरीर मात्र भोग विलास के लिए नहीं, पत्नी एवं परिवार भर के लिए नहीं। यह तो संसार की वस्तु है, अतः इसे विश्व के काम आना चाहिए, इसको मरने के समय तक ईश्वर का हो जाना चाहिए। तुलसी का अर्द्धरात्रि में गृहत्याग दिखाकर उन्होंने संसार के समक्ष यह रखने का प्रयास किया है कि श्रेष्ठ कार्य में विलम्ब हितकारी नहीं। सदाचरण में समय का प्रतिबन्ध नहीं वह तो किसी समय प्रारम्भ किया जा सकता है।

माता-पिता एवं समाज से तिरस्कृत तुलसी को नायक बनाकर उन्होंने सबके समक्ष यह प्रस्तुत करने का प्रयास किया है कि व्यक्ति साधनहीन होते हुए भी वह कार्य कर सकता है। वह सच्चे कर्तव्य की पराकाष्ठा तक पहुँच सकता है एवं अपने नाम को अमर बनाकर जन-जन का प्रेरणा स्रोत बन सकता है। यही 'उत्तरायण' महाकाव्य का प्रमुख संदेश है।

योगदान :—

उत्तरायण' महाकाव्य को प्रणीत करके डा० वर्मा ने दो महत्वपूर्ण कार्य किये। प्रथम यह कि जनश्रुति पर आधारित तुलसी को दीवानेपन से अलगकर सत्य एवं प्रेम की वेदिका पर आसीन किया। वे भाद्रमास की अर्द्धरात्रि में उफनती यमुना को पार करें सर्प के सहारे पत्नी के समीप पहुँचकर अपमानित नहीं होते। हास-परिहास में अपनी प्रिय पत्नी रत्ना के मात्र इस परिहास से कि 'मेरे नश्वर तन से आप जितनी प्रीति करते हैं उतनी यदि भगवान के प्रति हो तो विश्व भीति विनष्ट हो जाय'।'[1] तुलसी का विरागी मन जाग्रत हो उठता है और वे तुरन्त घर से बिदा हो सन्यास धारण कर लेते हैं।

दूसरे वाल्मीकि के मुख से तुलसी के अन्तर्मन के सीता-निर्वासन सम्बन्धी विकट द्वन्द्व का समाधान करके उन्होंने केवल राम भक्तों का ही नहीं, समस्त मानवता का उपकार किया है। यह प्रसंग राम के चरित्र में काँटे के समान चुभा था।

इन दोनों प्रसंगों को लेकर उन्होंने बताया कि वे धर्मेतर बौद्ध आदि के कार्य हैं जिन्होंने बाद में सीता निर्वासन जैसे प्रसंगों को गढ़ा क्योंकि यदि हिन्दू धर्म

1- उत्तरायण, पृ0 32

दूषित न होगा तो बौद्ध धर्म आदि धर्म को कौन स्वीकार करेगा? अतः उन्होंने हिन्दू धर्म के प्रमुख प्रतिनिधि पात्र को चुनकर उनके चरित्र में सीता-निर्वासन प्रसंग जोड़कर उसे गर्हित करना चाहा। इसे डा0 वर्मा ने सत्य की कसौटी में कसकर झूठा बतलाया और सिद्ध किया कि ये दोनों प्रसंग – तुलसी का गृह त्याग एवं सीता निर्वासन – कल्पित हैं। इससे 'उत्तरायण' को पढ़ने पर सैकड़ों, करोड़ों रामभक्तों एवं ईश्वर पर आस्था रखने वाले आस्तिकों के मन से युगों से व्याप्त संदिग्ध व्यथा का कुहासा सदैव के लिए समाप्त हो जायेगा एवं राम सीता तथा तुलसी का चरित्र सदैव के लिए उज्ज्वल, महिमामय एवं अपनी अक्षय आलोक रेखाओं में उद्भासित प्रतीत होने लगेगा।[1]

'अरुण रामायण' का उदात्त संदेश

'भगवान राम' की तरह 'अरुण रामायण' में राम के समग्र जीवन को आधार मानकर कवि ने जन जीवन को प्रेम, बन्धुत्व, निष्ठा, कर्तव्य, शिष्टाचार का सन्देश दिया है। इसमें भी विश्व बन्धुत्व को सर्वोपरि बताया गया है। अब आज जहाँ थोड़ी सी सम्पत्ति के लिए भाई-भाई निर्ममता से एक दूसरे की हत्या कर देते हैं वहीं राम एवं भरत अयोध्या के राज्य को एक दूसरे की तरफ कन्दुक की तरह उछालते हैं। साधन सम्पन्न रावण अनीति के पथ पर अग्रसर होने के कारण राम से पराभव पाता है। हनुमान अकेले सम्पूर्ण लंका को तहस-नहस करते हैं। इसे यदि मानवीयता का आधार लेकर सोचा जाय तो स्पष्ट होगा कि सफलता की कुंजी मात्र लगन कर्तव्य के प्रति निष्ठा एवं सत्या – चरण से ही सम्भव हो है। यही उत महाकाव्य का संदेश है।

योगदान :–

मानवीयसम्बन्धों को सुदृढ बनाने, परस्पर सद्भाव एवं परोपकारी भावना को उद्बुद्ध करने, श्रेय कर्मों की ओर प्रेरित करने में 'अरुण रामायण' का बहुत बड़ा योग है। इसे पढ़ने से मानव के हृदय में श्रेय कर्मों की तरफ बढ़ने को प्रोत्साहन मिलता है।

1- उत्तरायण, पृ0 दो शब्द

'सत्यकाम' महाकाव्य में कवि ने औपनिषदिक दृष्टि को आधुनिक युग की पीठिका पर प्रतिष्ठित कर युगीन समस्याओं का गंभीर समाधान प्रस्तुत किया है। उनके आधार पर सच्चे अध्यात्म की परणति धरती के जीवन की सम्पन्नता एवं परिपूर्णता ही में होनी चाहिए। इसीलिए 'सत्यकाम' को गुरुदीक्षा के उपरान्त सौ गायों सहित कर्म के अध्ययन के लिए गहन विपिन में भेजा जाता है, जहाँ वह वृष, हंस, अग्नि और मुद्ग चार देवों से दीक्षा लेते हुये ऋचा से उदात्त प्रेम को सीखता है। संपूर्ण संसार उस विराट का ही अंग है। आकाश चन्द्रमा, सूरज, वायु, सम्पूर्ण जीव, वनस्पतियाँ उसी के अलग अलग रूप हैं। इनमें विभेद करना मात्र भ्रम है। मानव मात्र वही है। कर्मों के आधार पर वर्णों की संरचना हुई, किन्तु सभी समान हैं एवं सभी विद्या शौर्य, विभव, सेवाश्रम के लिए अर्पित हैं।[1] मनुष्य लोभ, काम मेंइतना अनुरक्त हैं कि पशुओं से भी गया गुजरा है। वह अति अल्प स्वार्थ के लिए हिंस्र पशुओं के समान कार्य करने लगता है। इस महाकाव्य के माध्यम से पंत जी ने अध्यात्म के सत्य स्वरूप को सबके समक्ष प्रस्तुत किया है एवं मानव मात्र को सत् प्रेरणा प्रदान की है।

योगदान :–

प्रस्तुत महाकाव्य में विश्व को ईश्वर के विभिन्न अंगों के रूप में सिद्ध करके कवि ने चेतन एवं अचेतन में एकात्म की स्थापना की है। सम्पूर्ण जगत् एक ही परमेश्वर के अंग होते हुए समान हैं। साथ ही उन्होंने जाबाल को महाकाव्य का नायक बना कर यह प्रेरणा प्रदान की है कि जिज्ञासु पुरुष सत्कर्म में अग्रसर होकर सब कुछ प्राप्त कर सकता है। इन्होंने माँ को संसार में सबसे बड़ा स्थान दिया। उसे ईश्वर का प्रतिरूप माना। गुरु को उन्होंने पिता के रूप में स्वीकार किया। इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य का भारतीय वाङ्मय में बहुत बड़ा स्थान है। इसके अध्ययन से मानव को बहुत बड़ी प्रेरणा मिल सकती है।

1- सत्यकाम, पृ0 194

'निषादराज' का उदात्त संदेश

'निषादराज' में अन्य घटनाओं के साथ दो घटनाएँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। प्रथम राम चन्द्र जी निषाद गुह जो एक साधारण जीवन जीने वाला व्यक्ति है, उससे अपने सगे बन्धु बान्धव की तरह मिलते हैं। इससे मानव जगत् को कवि ने समानता का संदेश दिया है।

द्वितीय यह कि भरत के चित्रकूट जाते समय गुह भरत से लड़ने के लिए तैयार दिखायी देता है। अपने प्राण भी राम की रक्षा के लिए उत्सर्ग करना चाहता है। वे इससे ये दो बातें सबके समक्ष रखना चाहते हैं कि यदि परोपकार में प्राण भी जायें तो प्रेम से दे देना चाहिए और बुराई का डटकर विरोध करना चाहिए।

समानता, परोपकार एवं हेय कर्म के विरोध के अतिरिक्त उन्होंने पावन कृत्य के लिए बल दिया है। उनके अनुसार ईश्वर को वह व्यक्ति कभी भी प्रिय नहीं होता जिसे मानव से प्यार नहीं, जो जनहित का विरोधी, वासना का भृत्य, छद्मवेशी धूर्त, देशद्रोही, अपने सुख स्वनाम, स्व परिवार हेतु नीच कर्म करता हो, पद के लिए धर्म जाति के नाम पर जो अनेकों युद्ध रचता हो, जो हिंसा के लिए तत्पर रहता हो वह मनुजता के लिए रौतिम स्वरूप एवं उसके अपमान स्वरूप है।[1]

योगदान :-

प्रस्तुत महाकाव्य में जनसाधारण से लेकर राजा, नेताओं तक के सत्कर्मों के विषय में विवेचन किया गया है। इसमें राजनेताओं के नीच कार्यों की कटु निंदा की गयी है। इस प्रकार से प्रस्तुत महाकाव्य के अध्ययन से जनसाधारण से नेताओं तक के लिए सन्मार्ग प्रशस्त होता है। अतः यह महाकाव्य जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

'रामदूत' का उदात्त संदेश

'रामदूत महाकाव्य में कवि सेवा, त्याग, पतिव्रत धर्म का संदेश मानव मात्र को दिया है। हनुमान समर्पित व्यक्ति हैं जो अपने लिए कुछ नहीं चाहते। कर्तव्य के

1- निषादराज, पृ0 119

लिए सजग एवं कर्तव्य की निष्ठा उनमें विद्यमान है। सरमा एवं विभीषण के माध्यम से कवि ने दुष्कर्मों के परिणाम को सबके समक्ष प्रस्तुत किया है। काम पिपासु, लोभी, अनाचारी, व्यक्ति की क्या दुदर्शा होती है, इस महाकाव्य में देखा जा सकता है। लगनशील व्यक्ति सदा अपने गन्तव्य की ओर बढ़ता जाता है। उसे कोई भी बाधा अवरुद्ध नहीं कर सकती है। हनुमान समुद्र जैसी बाधा को लाँघते हैं एवं अपरिचित गुप्त स्थान में भी सीता का अन्वेषण कर लेते हैं। इतना ही नहीं वे अकेले न जाने कितनों का संहार करके लंका भी जला देते हैं। इसे यदि मानवीय आधार लेकर विचार करें तो कर्मनिष्ठा, लगन सत्संकल्प साहस, धैर्य आदि का परिणाम ही प्रतीत होता है।

इस प्रकार से प्रस्तुत महाकाव्य मानव जीवन को त्याग, सेवा, कर्तव्यनिष्ठा धैर्य, सत्संकल्प साहस आदि का संदेश देता है। इसमें सीता के चरित्र के द्वारा भी कवि ने इन्हीं गुणों की दीक्षा दी है।

योगदान :-

प्रस्तुत महाकाव्य में वर्णित विषय मानव को सत्कार्य में संलग्न होने, मानवीय सेवा, परोपकार में तत्पर रहने, पतिव्रत धर्म अनुपालन, दुर्नीति से अलग रहने के लिए प्रेरणादायक है। विभीषण के लंका त्याग को दिखाकर कवि ने यह बताने की चेष्टा की है कि कि जहाँ मानव के प्रति द्वेष, ईर्ष्या, हो काम एवं लोभ का साम्राज्य हो उस स्थान को तुरन्त त्याग देना चाहिए चाहे वह कितना ही सुखद हो। इस प्रकार इसमें जीवन के भारतीय मूल्यों को बड़े अच्छे ढंग से उजागर किया गया है।

'सीता समाधि' का उदात्त संदेश

श्रीमती अग्रवाल जीने प्रस्तुत महाकाव्य में अन्धे अनुकरण को अस्वीकारते हुए मानव जगत् को सत्यमार्ग का सन्देश दिया है। इन्होंने कर्मकाण्ड, स्वर्ग नरक, मृतपितृ पूजन आदि को व्यर्थ बताया।[1] जैसे किसी व्यक्ति के भोजन करने से अन्य की भूख नहीं

1- सीतासमाधि, पृ0 93

मिट जाती, उसी प्रकार से दान आदि से पित्तरों की सन्तुष्टि असम्भव है।[1] मनुष्य शुभाशुभ कर्मों से आबद्ध है किन्तु द्वन्द्वों से मुक्ति सत्य आचरण के बिना असम्भव है।[2] जो सत्य से मण्डित होकर दीन याचना नहीं करते अपने धर्म में निडर होकर सन्नद्ध रहते हैं एवं सभी यातनाएँ सह लेते हैं उन्हें कष्टों की आँधी डिगा नहीं पाती। ज्वालाएँ जला नहीं सकतीं।[3] कार्यक्षेत्र में पुरुष एवं नारी के धर्मों का संघर्ष नहीं है। न कोई बड़ा है न कोई छोटा। सबके अधिकार समान हैं। उनमें परस्पर सहयोग से जीवन सुखी होता है।[4]

उन्होंने आधुनिकता का भी विरोध करते हुये रिश्वत, चोरी, आधुनिक नारी गुरु, शिष्य, माता-पिता, बालक, माँ- पत्नी आदि के व्यवहार एवं चलन में कड़ा प्रहार करके उन्हें सन्मार्ग पर चलने का संकेत किया है। उन्होंने हिन्दी भाषा की दुर्दशा को भी सबके समक्ष रखा है।

योगदान :--

'सीता समाधि' आधुनिक भारतीय के लिए अत्यन्त प्रेरणादायक है। उनका आधुनिकता के प्रति विरोध एक सुष्ठु सौम्य, समाज के निर्माण की ओर भारत को अग्रसर करता है।

'अश्वत्थामा' का उदात्त संदेश

प्रस्तुत महाकाव्य में विजयोपरान्त भीम के अमानवीय कार्यों की चर्चा करके कवि ने मानव जगत को यह बताने का प्रयास किया है कि अति लाभ अथवा जीवन के अत्यन्त सुखमय क्षण में घमण्ड नहीं करना चाहिए। उसे मानवीयता का ध्यान रखना चाहिए एवं हेय कर्मों का विचार तक मन में नहीं लाना चाहिए।

1- सीतासमाधि, पृ0 94

2- वही, पृ0 96

3- वही, पृ0 179

4- वही, पृ0 180

अश्वत्थामा[1] द्वारा पाण्डव-पुत्रों की हत्या दिखाकर उन्होंने दुखमय अवस्था में भी धैर्य, विवेक एवं सहनशक्ति रखने का संदेश दिया है। अश्वत्थामा भीष्म द्रोण, अर्जुन, भीम कर्ण आदि की तरह महावीर था। वह चरित्रवान् भी था किन्तु उसने सुसुप्त पाण्डव पुत्रों की हत्या कर दी। अतः इसी एक कार्य से उसका सम्पूर्ण चरित्र धूमिल हो गया।

आधुनिक मानव की ओर संकेत करते हुये उन्होंने कहा कि मानव पापकर्म में रत है। उसके हृदय में तनिक भी दया नहीं है। क्रूर कर्म में निरन्तर लगा रहता है।[1] शासक, विप्र, व्यापारी, क्षत्रिय सभी अपनेकर्मों से विरत हेय कर्मों की ओर लगे हुए हैं। स्वार्थ परायणता, धूर्तनीति, सुरा-सुन्दरी, प्रीति, लोलुपता सबको जकड़े हुए है अतः मानव को चाहिए कि इनसे अलग हो सत्कर्मों को अपनाये।

योगदान :—

अन्य महाकाव्यों की तरह सन्मार्ग की प्रेरणा इस महाकाव्य से मिलती है। यह संसार को शान्तिपूर्वक रहने के लिए प्रेरित करता है।

'सत्यमेव जयते' का उदात्त संदेश

प्रस्तुत महाकाव्य में गाँधी के सत्य, प्रेम, अहिंसा, त्रिगुणात्मक संदेश को साकार रूप में प्रस्तुत किया गया है। गाँधी जी का उदात्त संदेश था कि शत्रु का भी सत्कार करना चाहिए। यदि कोई घृणा करता है तो बदले में उसे प्यार करें। बुराई का बदला भलाई से दें। यदि कोई प्रताड़ित करे तो उसके लिए प्रार्थना करनी चाहिए, कोई कोसे तो उसे शुभाशीष देनी चाहिए। इसतरह से शत्रु का शिर स्वयमेव झुक जायेगा।[2]

प्राणी अपने कृत्यों द्वारा ही कठोर बन्धन का अनुताप सकता है। इसमें कवि ने जिन्ना को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया। देश को स्वतंत्रता और पहले मिला हि होती यदि जिन्ना की स्वार्थनीति सम्मिलित न होती। उसकी स्वार्थपरता के कारण आपस

1- अश्वत्थामा, पृ0 67

2- सत्यमेव जयते, पृ0 344

में हिन्दू, मुस्लिम लड़ मरे एवं भारत देश का बँटवारा हुआ। आपस में एक दूसरे के कटु शत्रु बने। अंग्रेज दोनों के परस्पर कलह से बहुत दिनों तक लाभान्वित होते रहे। इस प्रकार से कवि ने स्वार्थ को गर्हित करते हुए सत्य प्रेम अहिंसा का संदेश जो बापू के परम प्रिय शब्द थे अपने महाकाव्य के माध्यम से देने का प्रयास किया है।

योगदान :—

'सत्यमेव जयते' देश प्रेम को जाग्रत करता है। प्रत्येक देश वासी के हृदय में इसके अध्ययन से एक बार देश के प्रति निष्ठा की भावना निश्चित रूपसे जाग्रत हो उठती है। यह महाकाव्य भारत पाक सम्बन्धों को सुधारने और आपस में वैमनस्य को दूर करने में योग दे सकता है, क्योंकि इसकी मूल धारणा है कि दोनों देशवासी एक माँ की संतान हैं। दोनों भाई-भाई हैं। अतः संकट के समय दोनों देश भाई चारे का निर्वाह कर सकते हैं।

अहिंसा, सत्य, प्रेम के द्वारा मानव वह कार्य कर सकता है जो बड़े से बड़े विनाशक यंत्र भी नहीं कर सकते। गाँधी जी को लेकर उन्होंने इस बात को सिद्ध किया है। अतः मानव यदि इन तीन गुणों को लेकर चले तो उसका देश सब प्रकार से सम्पन्न हो सकता है। इस प्रकार मानव कल्याण में यह महाकाव्य बहुत बड़ा योगदान दे सकता है।

'कृष्णाम्बरी' का उदात्त संदेश

प्रस्तुत महाकाव्य के नायक कृष्ण प्रेमोन्मत्त गोपिकाओं की भुजाओं के आलिंगन में निबद्ध रहने वाले नहीं, अपितु भूपालों एवं सामन्तों के बीच रहकर लोक मर्यादा तथा विधि व्यवस्था की रक्षा करने वाले दुष्टदलन युद्धवीर कला पुरुष हैं। उनकी यौवन लीला या काम केलि मूलतः उनके अलौकिक पुरुषत्व या कला-वैचक्षण्य को ही द्योतित करती है, जिसमें उनके मानव जीवन की अनेकरूपता प्रतिबिम्बित है।[1]

1- कृष्णाम्बरी, पृ० 'ट' कृति और कृतिकार

इस प्रकार इसमें भारतीय संस्कृति की चेतना का स्फुरण उपलब्ध है। सीमा-मुक्त नवीन, सहज उदार तथा परिष्कृत भावनाओं से ओतप्रोत मानव संस्कृति का विवेचन करके मानव जाति को नई दिशा प्रदान की है। 'कृष्णाम्बरी के माध्यम से उन्होंने यह सन्देश दिया है कि संघर्ष जीवी भयमुक्त मनुष्य ही मृत्युंजय होता है। उसे कोई भी शक्ति उसके मार्ग से विचलित नहीं कर सकती।

योगदान :—

प्रस्तुत महाकाव्य तम के प्रति ज्योति की विजय का प्रतीक है, जिसमें मानव की राष्ट्रीय और सामाजिक अभ्युदय की भावनाओं को अनवरत अनुप्राणित करने वालीअपूर्व क्षमता का वाग्विनियोग हुआ है। इसमें भारतीय संस्कृति का अभ अभ्युदय व्याप्त है। परा-क्रमशील, गुणी बुद्धिमान् एवं चरित्रवान व्यक्ति भी पराभव को प्राप्त करते हैं यदि वे अनीति का साथ देते हैं। इसे वे दुर्योधन के सहयोगी, द्रोण, कर्ण, भीष्म को लेकर सिद्ध किया है। इस प्रकार से भारतीय वाङ्मय में प्रस्तुत महाकाव्य का बहुत बड़ा योगदान माना जा सकता है।

उपसंहार

आदिकालीन महाकाव्य 'पृथ्वीराज रासो' से लेकर आज तक 100 से भी अधिक महाकाव्यों का प्रणयन हुआ, जिनमें तत्कालीन युगीन परिस्थितियों का प्रभाव पूर्ण रूप से पड़ा। आधुनिककाल के अष्टम एवं नवम दशक को यद्यपि हम अत्याधुनिककाल की संज्ञा दे सकते हैं किन्तु इस युग की कोई एक विशेष प्रवृत्ति नहीं है। इस दशक के महाकाव्यों के अध्ययन से पता चलता है कि यह युग मिश्रित युग है, क्योंकि पंत जी द्वारा प्रणीत महाकाव्य में जहाँ छायावाद की झलक मिलती है वहीं 'सत्यमेव जयते' प्रगतिवाद से प्रभावित महाकाव्य कहा जा सकता है।

सप्तम दशकोत्तर महाकाव्यों के इतिवृत्त विधान के स्रोत मुख्यतः वाल्मीकि रामायण और महाभारत हैं। महाकाव्यों का कलेवर विस्तार युगीन परिस्थितियों के आधार पर प्रेरणा प्रदायक प्रसंगों की कल्पना से सम्भव हुआ है। कल्पना की सूझबूझ की दृष्टि से उत्तरायण, सत्यकाम, जानकीजीवन' महत्वपूर्ण महाकाव्य हैं। आंशिक जीवनवृत्त से सम्बन्धित महाकाव्यों (निषादराज, जानकीजीवन, रामदूत, अश्वत्थामा) में अपूर्णता कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होती। उनका कथानक इस ढंग से सुसज्जित किया गया है कि अपूर्णता का नाम तक नहीं है, साथ ही कथावस्तु की नाटकीयता (अवस्थाओं, सन्धियों, अर्थप्रकृतियों) का पूर्ण परिपालन हुआ है और सांस्कृतिक तत्वों की अभिव्यक्ति प्रत्येक महाकाव्य में हुई है।

सप्तम दशकोत्तर महाकाव्यों में से कुछ में परम्परित रचनाशैली, सर्ग-संख्या, मंगलाचरण, धीरोदात्त नायक, सर्गान्त छन्द परिवर्तन, छन्दबद्धता, छन्द वैविध्य वर्णन-वैशिष्ट्य, भावात्मक अलंकृति आदि का पूर्ण परिपालन हुआ है और कुछ में इनका बहिष्कार कर नवीन शैल्पिक प्रतिमानों का अभिग्रहण किया गया है। इसे मुक्त छन्द-प्रयोग समकालीन पात्रों के चरित्र की परिकल्पना, कथा-प्रस्तुति, भावात्मक संयोजन, नायक परिकल्पना, प्रकृति चित्रण आदि में देखा जा सकता है। वैसे समग्र रूप से अधिकांश महाकाव्यों में सम्पूर्ण काव्यशास्त्रीय तत्वों का समावेश हुआ है। महाकाव्य भावपक्ष एवं कलापक्ष दोनों की दृष्टि से समृद्ध हैं। हास्य एवं अद्भुत रसों के अतिरिक्त सम्पूर्ण रसों का वर्णन बहुत ही विस्तार से उपलब्ध है। कुछ महाकाव्यों में रस परिपाक इतना सफल है कि पाठक यह निश्चित नहीं कर पाता कि इसमें कौन सा रस प्रधान है। यथा —

'कृष्णाम्बरी' में श्रृंगार, करुण, एवं वीर रसों के वर्णन में कवि चरम सीमा तक पहुँच गया है जिससे उसमें ये तीनों रस एक से एक बढ़कर प्रतीत होते हैं। सभी में तत्सम प्रधान खड़ी बोली का प्रयोग है किन्तु कुछ महाकाव्यों (सत्यमेव जयते, आदि) में विदेशी शब्दों की भरमार है फिर भी वे अस्वाभाविक नहीं लगते हैं। महाकाव्य अलंकार गुण एवं शैली समृद्धता में बहुत महत्वपूर्ण हैं। छन्द प्रयोग की दृष्टि से भगवानराम, जानकीजीवन, निषादराज, अश्वत्थामा, रामदूत, प्रभावशाली हैं।

चरित्र चित्रण की दृष्टि से सम्पूर्ण महाकाव्य श्लाघनीय हैं। इनमें दैवी पात्रों के देवत्व का प्रकाशन तथा दानवीय पात्रों की दानवता का परिष्कार कर मानवीय पीठिका पर स्थापित किया गया है। 'सत्यकाम' 'अश्वत्थामा' एवं 'सत्यमेव जयते' आदि महाकाव्यों में ऐसे पात्रों का संयोजन हुआ है, जो धीरोदात्तता की श्रेणी में नहीं आते। इससे कवि की मानवतावादी प्रवृत्ति का पता चलता है। सीतासमाधि' एवं 'जानकीजीवन' नायिका प्रधान महाकाव्य है, जिनसे नारी जागरण की जीवन्त चेतना को मुखरित होने में सम्बल प्राप्त हुआ है। चरित्र चित्रण में मनोवैज्ञानिक संस्पर्श का प्रत्येक स्थल में ध्यान रखा गया है। इसी से सम्पूर्ण पात्रों का चरित्र स्वाभाविक प्रतीत होता है।

प्रकृति वर्णन में प्रकृति के अत्यन्त लघु तत्व से लेकर उसके दसों रूपों तक का चित्रण विस्तारपूर्वक हुआ है। कुछ महाकाव्यों (सत्यकाम, निषादराज) में प्रकृतिचित्रण बहुत विस्तार से हुआ है जबकि सत्यमेव जयते में प्रकृति चित्रण न के बराबर है, किन्तु सम्पूर्ण महाकाव्य में इसका अभाव कहीं भी नहीं प्रतीत होता।

सप्तमदशकोत्तर महाकाव्यों के प्रणयन में बलवती सृजन-प्रेरणा एवं महान उद्देश्य पूर्ति कीभावना कार्यरत रही है। उदाहरण के लिए युग पुरुषों एवं लोकनायकों के चरित्र चित्रण की अदम्य आकांक्षा, नारी जागरण-उद्बोध की दृढ़ भावना, चिरन्तन मानवीय जीवन मूल्यों, आदर्शों एवं समाज में सत्प्रवृत्तियों के प्रति स्थापना का आग्रह , मानव जगत के मांगलिक एवं सुखमय भविष्य की आकांक्षा, युगीन समस्याओं के समाधान की विराट् चेष्टा, वसुधैवकुटुम्बकम् की भावना एवं स्वान्तः सुख आदि इनकी संरचना के संप्रेरक तथा सर्जक तत्व कहे जा सकते हैं।

———

परिशिष्ट

उपजीव्य महाकाव्य

उपस्कारक ग्रन्थ

(1) उपजीव्य महाकाव्य

(1)	भगवानराम	मनबोधन लाल	हेमन्त प्रकाशन इलाहाबाद, सन् 1970
(2)	जानकीजीवन	राजाराम शुक्ल	ग्रन्थम रामबाग, कानपुर, 1971
(3)	उत्तरायण	डा0रामकुमार वर्मा	राजकमल एण्ड सन्स, कश्मीरीगेट दिल्ली, 72
(4)	अरुणरामायण	रामावतार पोद्दार (अरुण)	किरण कुंज प्रकाशन समस्तीपुर, बिहार 1973
(5)	सत्यकाम	सुमित्रानंदन पंत	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1975
(6)	निषादराज	रत्नचन्द्र शर्मा	सूर्यप्रकाशन, नई सड़क दिल्ली,-6, 1976
(7)	रामदूत	कुं0चन्द्र प्रकाश सिंह	गौरवग्रन्थ प्रकाशन लखनऊ, 1977
(8)	सीतासमाधि	राजेश्वरी अग्रवाल	नेशनलपब्लिशिंगहाउस, नईदिल्ली, 1978
(9)	अश्वत्थामा	डा0रत्नचन्द्र शर्मा	डा0रत्नचन्द्र शर्मा, 48 दयालसिंह कालोनी करनाल, 1981
(10)	सत्यमेव जयते	रविशंकर मिश्र	राजपाल एण्ड सन्ज, कश्मीरीगेट, दिल्ली, 1981
(11)	कृष्णाम्बरी	रामावतार पोद्दार 'अरुण'	अनुपम प्रकाशन पटना-4, 1982

(2) उपस्कारक ग्रन्थ

संस्कृत ग्रन्थ

(1)	अथर्ववेद		संस्कृत संस्थान बरेली
(2)	अग्निपुराण		भारतीय विद्याप्रकाशन वाराणसी
(3)	अमरुशतक		चौखम्बा प्रकाशन वाराणसी
(4)	अष्टाध्यायी	पाणिनि	चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी
(5)	अभिज्ञानशाकुन्तलम्	कालिदास	डा0सुरेन्द्रदेव शास्त्री, इलाहाबाद, प्र0सं0 1967
(6)	उत्तररामचरितम्	भवभूति	टीकाकार डा0रमाशंकर त्रिपाठी, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी
(7)	ऋग्वेद सायणभाष्य सहित		चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी
(8)	औचित्यविचार चर्चा	क्षेमेन्द्र	चौखम्भा, संस्कृत सीरीज, 1933

(9) काव्यालंकार — भामह — चौखम्भा विद्याभवन बनारस, सं0 1885

(10) काव्यादर्श — दण्डी — कलकत्ता, सं0 1882

(11) काव्यालंकार सूत्रवृत्ति — वामन — आचार्य विश्वेश्वर आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली, 1954

(12) काव्यालंकार — रूद्रट — चौखम्भाविद्याभवन वाराणसी सन् 1966

(13) काव्यमीमांसा — राजशेखर — चौखम्भा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी

(14) काव्यप्रकाश — मम्मट — हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला काशी, सन् 1926

(15) काव्यानुशासन — हेमचन्द्र — काव्यमाला, 1901

(16) कादम्बरी — बाणभट्ट — टीकाकार कृष्णमोहन शास्त्री, चौखम्भा सं0सि0

(17) चन्द्रलोक — जयदेव — चौखम्भा सं0सि0आफिस विद्यालय प्रेस बनारस, सं0 2007

(18) छान्दोग्य उपनिषद — गीताप्रेस, गोरखपुर

(19) दशरूपक — धनंजय — निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, शक सं0 1943

(20) ध्वन्यालोक लोचन — अभिनवगुप्त — अनु0 जगन्नाथ पाठक, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी, 1965

(21) ध्वन्यालोक — आनन्दवर्धन — अनु0 जगन्नाथ पाठक, चौखम्भा, वाराणसी

(22) नाट्यशास्त्र — भरत — निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, सं0 1943

(23) वाल्मीकिरामायण — पंडित पुस्तकालय, काशी 1959

(24) भागवत पुराण — गोरखपुर

(25) मनुस्मृति — कुल्लूक भट्टकृत टीकासहित, गुजराती प्रिंटिंग प्रेस सन् 1913

(26) महाभारत — हिन्दी अनुवादसहित द्वितीय संस्करण, गीताप्रेस गोरखपुर

(27) यजुर्वेद — संस्कृत संस्थान बरेली

(28) रसगंगाधर — जगन्नाथ — बम्बई सं0 1888

(29) रघुवंशमहाकाव्यम् — कालिदास — निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, सन् 1948

(30) विमर्शिणी — जयरथ — चौखम्भा वाराणसी

(31) वक्रोक्तिजीवित — कुंतक — अनु0 आचार्य विश्वेश्वर, आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली

(32) साहित्यदर्पण विश्वनाथ निर्णयसागर प्रेस बम्बई, 1915

(33) श्रीमद्भगवद्गीता गीताप्रेस, गोरखपुर, दसवाँ संस्करण

हिन्दी-ग्रन्थ

(34) अरस्तू का काव्यशास्त्र डा0नगेन्द्र भारतीय भण्डार इलाहाबाद

(35) आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्दयोजना -डा0पुत्तूलाल, लखनऊ विश्वविद्यालय

(36) आधुनिक हिन्दी महाकाव्य - डा0वीणा शर्मा, अनुपम प्रकाशन जयपुर

(37) आधुनिक महाकाव्य का शिल्पविधान- डा0श्याम नन्दन किशोर, सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा

(38) आधुनिक साहित्य - नन्ददुलारे वाजपेयी, भारतीय भण्डार इलाहाबाद

(39) काव्य के रूप बाबू गुलाबराय, दिल्ली प्रथम संस्करण

(40) काव्यदर्पण - रामदहिन मिश्र - लखनऊ प्रथम संस्करण

(41) कामायनी के अध्ययन की समस्यायें - आचार्य नगेन्द्र - नेशनल पब्लिशिंग हाउस नई दिल्ली।

(42) काव्यदर्पण -- रामदहिन मिश्र - पटना प्रथम संस्करण

(43) काव्यालोक - रामदहिन मिश्र - पटना प्रथम संस्करण

(44) काव्यशास्त्र की रूपरेखा - डा0रामदत्त भरद्वाज, सूर्य प्रकाशन, नई सड़क दिल्ली

(45) काव्यांग चन्द्रिका - अमरपाल सिंह - नवीन प्रकाशन मन्दिर इलाहाबाद

(46) काव्यशास्त्र - सम्पादक आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी - भारतीय साहित्य मन्दिर, फव्वारा- दिल्ली

(47) छायावादोत्तर हिन्दी प्रबन्धकाव्यों का सांस्कृतिक अनुशीलन - डा0विश्वम्भर दयालु अवस्थी,

(48) छन्द प्रभाकर जगन्नाथ प्रसाद भानु' जगन्नाथ प्रेस विलासपुर

(49) तुलसी परवर्ती रामकाव्यों का आलोचनात्मक अध्ययन - डा0वेदप्रकाश द्विवेदी

(50) पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त - डा0शान्तिस्वरूप गुप्त-अशोक प्रकाशन दिल्ली

(51) भारतीय संस्कृति की रूपरेखा -- बाबू गुलाबराय- साहित्य मन्दिर ग्वालियर

(52) भारतीय काव्यशास्त्र के प्रतिनिधि सिद्धान्त-प्रो0राजवंश सहाय' हीरा' चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी

(53) भारतीय साहित्यशास्त्र, बलदेव उपाध्याय, नन्दकिशोर एण्ड सन्स वाराणसी प्र0सं0

(54) भारतीय साहित्यशास्त्र, बलदेव उपाध्याय- प्रसाद परिषद काशी, दि्व0संस्करण

(55) मध्ययुगीन महाकाव्यों में नायक -- डा0कृष्णदत्तपालीवाल - साहित्यप्रकाशन दिल्ली

(56) रामचरित मानस तुलसीदास गीताप्रेस गोरखपुर

(57) रीतिकालीन काव्यसिद्धान्त- डा0सूर्यनारायण द्विवेदी-विश्वविद्यालय प्रकाशन वारा0

(58) रामचरित मानस का काव्यशास्त्रीय अनुशीलन - डा0राजकुमार पाण्डेय, अनुसंधान
प्रकाशन, आचार्य नगर, कानपुर

(59) राजाराम शुक्ल'राष्ट्रीय आत्मा'वर्चस्व एवं कृतित्व -- डा0पुष्पलतादास, दुर्गा प्रका0आगरा।

(60) रससिद्धान्त की दार्शनिक एवं नैतिक व्याख्या -डा0तारकनाथ विहारी- विनोद
पुस्तक मन्दिर आगरा।

(61) रससिद्धान्त और सौन्दर्यशास्त्र- निर्मला जैन-नेशनल पब्लि0हाउस, दिल्ली

(62) शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त-गोविन्द त्रिगुणायत- भारतीय साहित्य मन्दिर, दिल्ली

(63) सिद्धान्त और अध्ययन - बाबू गुलाबराय, आत्माराम एण्ड सन्स दिल्ली

(64) समीक्षित समीक्षालोक - भगीरथ मिश्र - लखनऊ प्रथम संस्करण।

(65) स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी महाकाव्य - डा0देवी प्रसाद- गड़ोदिया पुस्तक भण्डार बीकानेर

(66) हिन्दी छन्द प्रकाश - रघुनन्दन शास्त्री, राजपाल एण्ड सन्ज दिल्ली।

(67) हिन्दी महाकाव्य सिद्धान्त और मूल्यांकन -- देवी प्रसाद गुप्त, अपोलो पब्लिकेशन

(68) हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास - डा0गणपतिचन्द्र गुप्त, चण्डीगढ़ सन् 1965

(69) हिन्दी साहित्य युग एवं प्रवृत्तियाँ - डा0शिवकुमार शर्मा, अशोक प्रकाशन, तृ0सं0

(70) हिन्दी साहित्य का इतिहास- रामचन्द्र शुक्ल-सोलहवां संस्करण नागरी प्रचारणी सभा

(71) हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास-सं0राहुल सांस्कृत्यायन, नागरीप्रचारणी सभा काशी

(72) हिन्दी साहित्यानुशीलन, सत्यकाम वर्मा, भारतीय साहित्यमंदिर दिल्ली

(73) हिन्दी साहित्य प्रथमखण्ड - भारतीय हिन्दी परिषद्- प्रयाग

(74) हिन्दी महाकाव्य का स्वरूप विकास - डा0शम्भूनाथ सिंह, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय
वाराणसी

(75) हिन्दी साहित्य - बीसवीं शताब्दी- आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी, लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद

(76) हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास- डा0भगीरथ मिश्र, लखनऊ प्रथम संस्करण

ENGLISH BOOKS

77- Aristotles theory of Poetry and Fine Arts - S.H. Butcher.

78- Aristotles theory of poetry and Fine Arts - Edited by T.A.Maxan

79- Dictionary of World literature - Edited by J.T. Shipley

80- English Epic and Heroic poetry - W.M. Dixon

81- Essay on dramatic poisy - Dryden

82- Epic and Romance - W.P. Ker

83- From Vergil to Milton - C.M. Bawra.

84- Feeling and Form - S.K. Langer.

85- Introduction of Sublime and beautiful - Edmund Burk.

86- On the Sublime - Longinus.

87- Practical Criticism - Richards

88- Principles of Literary Criticism - Abercrombie.

89- The History of criticism - George Saintsbury

90- The Epic; an Essay - Laselles Abercrombie.

91- The India of Great Poetry - Abercrambie

92- The Making of Literature - R.A. Scott Jams

पत्र-पत्रिकाएँ

(1) पं०रविशंकिर मिश्र, कानपुर से लेखक को प्राप्त, दिनांक 26-8-83 का पत्र

(2) डा०रत्नचन्द्र शर्मा, करनाल से लेखक को,पप्त दिनांक 13-7-83 का पत्र